ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः

# सामवेदीया--

# छान्दग्योपनिषत्

## प्रथमोऽध्यायः

सामबेदके पाच भाग हैं-१ प्रस्ताव २ प्रतिहार ३ उद्गीथ ४ उपद्रव और ५ निधन। इन पांचोंमेंसे यहाँ उद्गीथ नामक भागकी उपासना अर्थात् भावना कहते हैं। सकल दुःखों से मुक्त होनेका उपाय आत्मज्ञान है और आत्मज्ञान का साधन मनको वशमें करना है और उपासनासे मन की वृत्ति एकाग्र होकर मनोजय होताहै इसकारण उपासनाके उपदेशका आरम्भ करतेहुए प्रथम ब्रह्मवाचक ॐकार की ही उपासना कहते हैं—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ॐइति एतत् ॐइस ( अक्षरम् ) वर्णरूप ( उद्गीथम् ) सामके अवयवको ( उपासीत ) भावना करै ( हि ) क्योंकि-( ॐइति ) ॐ इसप्रकार ( उद्गायति ) उच्चारण करताहै ( तस्य ) उसका ( उपव्याख्यानम् ) गुणकीर्त्तन [ उपासनम् ] उपासना है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-ॐ यह अक्षर उद्गीथ नामक सामका अवयव है, इसकी उपासना करै, यह परमात्माका प्रतीक अर्थात् प्रतिमूर्त्ति विशेष है, इस ॐकारकी उपासनासे परमात्मा प्रसन्न होतेहैं, ॐकारका उच्चारण विना किये जो कर्म कियाजाता है, वह कर्म निष्फल होताहै, इसका-

रण सब कर्मोंके आरम्भमें ही ॐकारका उच्चारण किया जाताहै, ॐकारसे आरम्भ करके ही मंत्र आदिका उच्चारण कियाजाताहै, इसीसे ॐकारको उद्गीथ कहते हैं, ॐकार की बिभूति और गुणोंका वर्णन ही उसकी उपासना है १

एषां भूतानां पृथिवी रसःपृथिव्या आपो
रसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो
रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः
साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ--( पृथिवी ) पृथिवी ( एषाम् ) इन (भूतानाम्) भूतोंमें ( रसः ) सार है ( आपः ) जल ( पृथिव्याः ) पृथिवीका ( रसः ) सार है ( ओषधयः ) औषधें ( अपाम् ) जलका ( रसः ) सार है (पुरुषः) पुरुष ( ओषधीनाम् ) औषधोंका ( रसः ) सार है ( वाक् ) वाणी ( पुरुषस्य ) पुरुषका ( रसः ) सार है ( ऋक् ) ऋचा ( वाचः ) वाणी का (रसः) सार है (साम) साम ( ऋचः ) ऋचाओंका ( रसः ) सार है ( उद्गीथः ) ॐकार ( साम्नः ) सामका ( रसः ) सार है ॥ २ ॥

( भावार्थ )--चर अचर सकल प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लयकी कारण पृथिवी, स्थावर जंगमस्रूप सकल जगत्का सार है, जल पृथिवीका सार है, क्योंकि पृथिवी जलमें ही ओतप्रोत है, जलका सार सकल औषधें हैं, क्योंकि--जलसे ही सकल औषधोंका परिणाम देखने में आता है, पुरुष सकल औषधोंका सार है, क्योंकि औषधोंका परिणाम ही जीवका शरीर है, पुरुषका सार वाणी है, क्योंकि--वाक् इन्द्रिय ही पुरुषकी सब इन्द्रियों में प्रधान है, वाणीका सार ऋचा है, ऋचाओंका सार साम है और सामका सार उद्गीथ है ॥ २ ॥

स एष रसानाᳫं रसतमः परमः

परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( एषः ) यह ( रसानाम् ) सारों का ( रसतमः ) परमसार ( परमः ) सबसे श्रेष्ठ ( परार्ध्यः ) परमात्मस्थानीय है ( यत् ) जो ( उद्गीथः ) ॐकार है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-अतएव यह उद्गीथ नामक ॐकार सारका सार और सबसे श्रेष्ठ है, परमात्मस्थानके योग्य और पृथिवी आदि सार वस्तुओंमें अन्तका आठवां परमसार है ॥ ३ ॥

कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( कतमा-कतमा ) कौन २ सी ( ऋक् ) ऋक् है ( कतमत्, कतमत् ) कौन २ सा ( साम ) साम है (कतमः कतमः ) कौन२ सा ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( इति ) यह ( विमृष्टम् ) विचारने योग्य ( भवति ) होता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-इसके अनन्तर ऋक् क्या है ? साम क्या है और उद्गीथ क्या है ? इन तीन प्रश्नोंका विचार कियाजाता है ॥५ ॥

वागेवर्क्प्राणःसामोमित्येतदक्षरमुद्गीथःतद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक् च प्राणश्चर्क् च साम च ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वाक्-एव ) वाणी ही ( ऋक् ) ऋक् है ( प्राणः ) प्राण ( साम ) साम है ( ॐ इत्येतत ) ॐ यह ( अक्षरम् ) अक्षर ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( तत् ) सो ( वा ) या ( एतत् ) यह ( मिथुनम ) जोडा है ( यत ) जो ( वाक्, च, प्राणः, च ) वाणी और प्राण ( ऋक्, च, साम, च ) ऋक् और साम है ॥५॥

( भावार्थ )-कारण और कार्यका अभेद होनेके कारण वाक् ही ऋक् है और प्राण ही साम है और ॐ यह

अक्षरही उद्गीथ है, ऋक् और साम इस मिथुनका कारण-भूत वाक् और प्राण यह दोका मिथुन है ॥ ६ ॥

**तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे स ँ-सृज्यते यदा वै मिथुनौ समागच्छत आप-यतो वै तावन्योन्यस्य कामम् ॥ ६ ॥**

अन्वय और पदार्थ--( तत् ) सो ( एतत् ) यह ( मिथुनम् ) जोडा ( ओमित्येतस्मिन् ) ॐ इस ( अक्षरे ) अक्षरमें ( संसृज्यते ) संसृष्ट है (यदा) जब ( वै ) निश्चय ( मिथुनौ ) दोनो ( समागच्छतः ) संयुक्त होते हैं ( वै ) निश्चय ( तौ ) वह दोनो ( अन्योन्यस्य) परस्पर के ( कामम् ) अभिलाषको ( आपयतः ) पूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—यह मिथुनरूप हुए वाक् और प्राण ॐ इस अक्षरमें मिलेहुए हैं यह वाक् और प्राणरूप मिथुन जब परस्पर मिलते हैं तब एक दूसरेकी कामनाको पूर्ण करतेहैं, इसप्रकार उनसे संयुक्त ॐकार सकल कामना की प्राप्तिरूप गुणसे परिपुष्ट होता है ॥ ६ ॥

**आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ७ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एवम् ) इसप्रकार (विद्वान्) जाननेवाला ( एतम् ) इस ( उद्गीथम् ) ॐकार ( अक्षरम् ) अक्षर को ( उपास्ते ) उपासना करताहै ( वै ह ) निश्चय ( कामानाम् ) अ-भिलाषोंका ( आपयिता ) प्राप्त करानेवाला ( भवति ) होताहै ॥ ७ ॥

( भावार्थ )— जो ऐसा जानकर इस उद्गीथ अक्षर की उपासना करता है वह यजमान के मनोरथोंको पूर्ण करता है ॥ ७ ॥

**तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किंचानुजाना-त्योमित्येव तदाह एषो एव समृद्धिर्यदनु-**

ज्ञा समर्द्धयिता ह वै कामानां भवाति य
एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ--( वा ) या ( तत ) वह ( एतत ) यह ( अनुज्ञाक्षरम् ) अनुमतिरूप अक्षर है ( हि ) क्योंकि-( यत, किञ्च ) जो कुछ ( अनुजानाति ) अनुमति देताहै ( ओम्, इत्येव ) ॐ इसको बोलकर ही ( तत ) सो ( आह ) कहताहै ( यत ) जो ( अनुज्ञा ) अनुमति है ( एषः एव ) यह ही ( समृद्धिः ) समृद्धि है ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( विद्वान् ) जाननेवाला ( एतत ) इस ( उद्गीथम्) ॐकार ( अक्षरम् ) अक्षरको ( उपास्ते ) उपासना करताहै ( वै,ह ) निश्चय ( कामानाम् ) मनोरथोंका ( समर्द्धयिता ) पूर्ण करनेवाला ( भवति ) होताहै ॥ ८ ॥

( भावार्थ )--इस ओंकारको अनुमति देनेका अक्षर कहते हैं, लोकमें भी इस अक्षरका उच्चारण करके सब विषयमें अनुमति देतेहैं ( ओम् का ही अपभ्रंश 'हां' है ) समृद्धिकी कारणभूत अनुज्ञा ( अनुमति ) ही समृद्धि है, इसकारण समृद्धिगुणवाला मानकर ओंकारका कीर्त्तन कियाजाताहै, जो ऐसा जानकर इस ॐकारकी उपासना करतेहैं वह यजमानकी कामनाओं को पूर्ण करसकते हैं ८

तेनेयं त्रयी विद्या वर्तते ओमित्याश्राव-
यत्योमिति श ँसत्योमित्युद्गायत्येतस्यै-
वाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ--( तेन ) उस ॐकार करकै ( इयम् ) यह ( त्रयी-विद्या ) तीनों वेदोंमेंकी कर्मविधि ( प्रवर्त्तते ) प्रवृत्त होती है ( ओम्, इति ) ॐ ऐसा कहकर ( आश्रावयति ) आश्रवण करता है ( ओम्, इति ) ओम् ऐसा कहकर ( शंसति ) शंसन करताहै ( ओम्, इति ) ओम् ऐसा कहकर ( उद्गायति ) उद्गान करता है

( एतस्य-एव ) इस ही ( अक्षरस्य ) अक्षरकी ( अपचित्यै ) पूजा के लिये ( महिम्ना ) महिमा करकै ( रसेन ) रस करकै [ निष्पद्यते ] निष्पन्न होताहै ॥ ९ ॥

( भावार्थ )—ओम् इस अक्षरका उच्चारण करकै सकल वेदविहित कर्मोंका आरम्भ कियाजाताहै, ओम् का उच्चारण करकै आश्रावण, शंसन और उद्गान आदि यज्ञके अङ्गरूप सकल कर्म होते हैं, वह सब कर्म परमात्माकी पूजाके लिये हैं, ॐकार परमात्माकी प्रतिमूर्त्ति है, अतएव इन सब कर्मोंके द्वारा ॐकारकी ही पूजा सिद्ध होती है और इस ॐकारकी महिमा तथा रसके द्वारा ही यज्ञ सिद्ध होताहै, यज्ञसिद्धिके मूलरूप ऋत्विज् और यजमान आदिके सकल प्राण ॐकारकी ही महिमा है और उनके मूलभूत हविष्यके व्रीहियव आदिका रस ॐकारका ही रस है, क्योंकि ओङ्कारका उच्चारण करकै किये हुए याग होम आदिके द्वारा आदित्यकी उपासना होनेसे ही वृष्टि आदिके क्रमसे प्राण और अन्नकी उत्पत्ति होती है ॥ ९ ॥ शीघ्र फल दायक॥

तिरो... तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—( यः, च ) जो ( एतत् ) इसको ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानताहै ( यः, च ) जो ( न ) नहीं ( वेद ) जानता है ( उभौ ) दोनो ( तेन ) तिससे ( कुरुतः ) करते हैं ( च ) और ( विद्या ) विद्या ( अविद्या, च ) अविद्या भी ( नाना ) भिन्न २ हैं ( तु ) किन्तु ( यत् ) जो ( विद्यया-एव ) ज्ञानपूर्वक ही ( श्रद्धया ) श्रद्धा करकै ( उपनिषदा ) उपनिषद् के योग करकै ( करोति ) करता

हैं ( तत्.एव ) वह ही ( वीर्यवत्तरम् ) शीघ्र फलदायक ( भवति ) होता है ( इति ) इससे ( खलु ) निश्चय ( एतस्य-एव ) इस ही ( अक्षरस्य ) अक्षरका ( उपव्याख्यानम् ) यथोचित व्याख्यान ( भवति ) होता है ॥ १० ॥

( भावार्थ )-जो ओंकार के ऐसे तत्त्वको जानते हैं और जो उसको नहीं जानते वह सब ही ओङ्कार के द्वारा कर्मानुष्ठान करते हैं, कर्मानुष्ठानके विना फलकी प्राप्ति नहीं होती, कर्मानुष्ठान करने से ही उसका फल मिलता है, उस कर्मको करनेमें ज्ञानी और अज्ञानी के किये कर्मफलमें न्यूनाधिकता अवश्य ही होती है, ज्ञान पूर्वक कियेहुए कर्मके फलसे अज्ञानसे कियेहुए कर्मका फल भिन्न होता है, जो कर्म ज्ञान, श्रद्धा और उपनिषद् में कहेहुए योगसे कियाजाता है वह कर्म ही अधिकतर शीघ्र फलदायक होताहै, शास्त्रमें अनेकों प्रकारसे ओंकार की उपासना कही है, उन सबको ही ओंकारकी शास्त्रानुसार व्याख्या जाने, क्योंकि-अविच्छिन्न वैदिक संप्रदाय के न रहनेसे वास्तविक व्याख्यान मिलना कठिन होगया है। ( यहांतक जो विषय कहा उसका संक्षेप में यह अभिप्राय है, कि-उद्गाता नामक पुरोहित यज्ञ में सामगानका उच्चारण करते हैं, पद्य और गद्यरूप मन्त्र को शास्त्रीय गानमें बाँधना ही साम है, उद्गीथ वा प्रणव इस सामगान के ही अंश हैं, स्वर वा वाक्यसे इस सामगान और स्तोत्रादिका उच्चारण होताहै, स्वर वा वाक्य प्राणशक्तिका ही प्रकट होना है, क्योंकि-प्राणवायु ही कण्ठादि स्थानमें आघात पाकर वर्णरूपसे प्रकट होता है, इसप्रकार यज्ञमें ओंकारके द्वारा प्राणशक्तिके दर्शनका उपदेश है और इस खण्डमें उसकी ही महिमा दिखाई है ॥ १० ॥

इति प्रथम अध्यायका प्रथम खण्ड समाप्त

देवासुरा ह वै यत्र संयतिरे उभये प्राजापत्यास्तद्ध-
देवा उद्गीथमाजहुरनेनैनानभिभविष्याम इति ॥१॥

**अन्वय और पदार्थ**—( ह ) प्रसिद्ध है ( वै ) निश्चय ( प्राजापत्याः ) प्रजापतिके पुत्र ( देवासुराः ) देवता और असुर ( उभये ) दोनों ( यत्र ) जिस विषयमें ( संयतिरे ) संग्राम करतेहुए । ( तत् ) तिस विषयमें ( ह ) प्रसिद्ध है ( देवाः ) देवता ( अनेन एव ) इस कर्मसे ही ( एनान् ) इन असुरोंको ( अभिभाविष्यामः ) तिरस्कृत करेंगे ( इति ) इसप्रकारयासे ( उद्गीथम् ) उद्गीथपूर्वक ज्योतिष्टोम आदिको ( आजह्रुः ) करतेहुए ॥ १ ॥

( **भावार्थ** )-सकल सात्त्विक इन्द्रियें और उनकी सकल वृत्तियोंके अधिष्ठात्री देवता और इनके विपरीत अर्थात् तमोरूप इन्द्रियवृत्तियोंके परिचालक असुर, दोनो ही वैदिक क्रियाके अधिकारी कश्यप प्रजापतिके पुत्र हैं, इस लोकमें जैसे भाई २ परस्पर विरोध करते हैं तैसे ही देवता और असुर भी परस्पर विरोध करते थे, वह परस्पर एक दूसरेका तिरस्कार करनेके लिये सदा संग्राम में तत्पर रहते थे, एकसमय देवताओंने अपने प्रतिपक्षी असुरोंका पराजय करनेकी इच्छासे ओंकारका उच्चारण करके ज्योतिष्टोम आदि कर्मका अनुष्ठान किया, उन्होने मनमें विचार किया कि-हम इस कर्मसे ही असुरोंका तिरस्कार करेंगे ॥ १ ॥

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तᳫं
हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति
सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः ॥ २ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( ह ) प्रसिद्ध है ( ते ) वह ( नासिक्यम् ) नासिकामेंके ( उद्गीथम् ) उद्गीथकर्त्ता ( प्राणम् ) प्राणको

( उपासाञ्चक्रिरे ) उपासना करतेहुए ( तम् ह ) उसको ( असुराः ) असुर ( पाप्मना ) पापसे ( विविधुः ) वेधतेहुए ( तस्मात् ) तिसकारण ( तेन ) तिस ( पाप्मना ) पापसे ( विद्धः ) विधाहुआ ( एषः ) यह ( हि ) निश्चय ( सुरभि, च ) सुगन्धिको भी ( दुर्गन्धि च ) दुर्गन्धिको भी ( जिघ्रति ) सूंघता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उद्गीथसे उपलक्षित यज्ञकर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होकर देवताओंने पहिले घ्राणेन्द्रियको ही अपनी मनोरथसिद्धिके अनुकूल समझकर उसकेसाथ एकत्वकी दृष्टिसे उद्गीथ नामक प्रणवका आश्रय करके उस इन्द्रियकी कल्याणकारिणी सकल वृत्तियोंका प्रकाश करनेकी चेष्टाकरी, यह देख असुरोंने मत्सरतामें भरकर अपने स्वभावसिद्ध अधर्मासङ्गरूप पापसे घ्राणेद्रियको विद्ध करके उसमे गन्धको ग्रहण करनेके अभिमानरूप दोषको उत्पन्न करदिया, अतएव तबसे घ्राणेंद्रियने उस पापसे विद्ध होकर सुगन्धिकी समान दुर्गन्धिको भी ग्रहण करना आरंभ करदिया ॥ २ ॥

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासांचक्रिरे ताᳬँहा-
सुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति
सत्यंचानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ह ) इसके अनन्तर ( वाचम् ) ( वाक्स्वरूप ) उद्गीथको उद्गीथको ( उपासांचक्रिरे ) उपासना करते हुए ( असुराः, ह ) असुर ( ताम् ) उसको ( पाप्मना ) पापसे ( विविधुः ) वेधतेहुए ( तस्मात् ) तबसे ( तया ) तिस करकै ( सत्यम्, च ) सत्यको ( अनृतम्, च ) असत्यको भी ( उभयम् ) दोनोको ( वदति ) कहताहै ( हि ) क्योंकि-( एषा ) यह ( पाप्मना ) पापसे ( विद्धा ) विद्ध है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-इसके उपरान्त देवताओंने वाक्इन्द्रिय के साथ ऐक्यदृष्टिसे उद्गीथ नामक प्रणवका आश्रय करके उस इन्द्रियकी कल्याणकारिणी सकलवृत्तियोंको प्रकाशित करनेकी चेष्टा की, असुरोंने उस वाक् इन्द्रिय को पापसे विद्ध करके उसमें भी दोष उत्पन्न करदिये, अतएव तबसे वाक् इन्द्रियने उस पापसे विद्ध होकर सत्यकी समान मिथ्याको भी ग्रहण करना आरम्भ करदिया ॥ ३ ॥

अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं चादर्शनीयं च पाप्मनाह्येतद् विद्धम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ह ) अनन्तर ( चक्षुः ) चक्षुसे उपलक्षित ( उद्गीथम् ) ओंकारको ( उपासाञ्चक्रिरे ) उपासना करतेहुए ( असुराः ) असुर ( तत, ह ) उसको भी ( पाप्मना ) पापसे ( विविधुः ) वेधतेहुए ( तस्मात ) जिससे ( तेन ) उसके द्वारा ( दर्शनीयम्, च ) देखनेयोग्यको भी ( अदर्शनीयम्,च ) न देखनेयोग्यको भी ( उभयम् ) दोनो को ( पश्यति ) देखता है ( हि ) क्योंकि ( एतत् ) यह (पाप्मना) पापसे ( विद्धम् ) विद्ध है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर देवताओंने चक्षु इन्द्रियके साथ एकत्वदृष्टिसे प्रणवका आश्रय करके उस इंद्रियकी कल्याण कारिणी सकल वृत्तियोंको प्रकाशित करनेकी चेष्टा की, असुरोंने इस चक्षु इन्द्रियको भी पापसे विद्धकरके इस में दोषोंको उत्पन्न करदिया, अतएव तबसे चक्षु उस पापसे संयुक्त होकर देखनेयोग्य पदार्थकी समान न देखने योग्य विषयको भी ग्रहण करनेलगा ॥ ४ ॥

अथ श्रोत्रमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना

विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ शृणोति श्रवणीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद् विद्धम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ, ह ) इसके अनन्तर ( श्रोत्रम् ) श्रोत्रोपलक्षित ( उद्गीयम् ) प्रणवको ( उपासाञ्चक्रिरे ) उपासना करते हुए ( असुराः ) असुर ( तत्, ह ) उसको भी ( पाप्मना ) पापसे ( विविधुः ) वेधतेहुए ( तस्मात् ) तिससे ( तेन ) उसके द्वारा ( श्रवणीयम् च ) सुनने योग्यको भी ( अश्रवणीयम्, च ) न सुननेयोग्यको भी ( उभयम् ) दोनोको ( शृणोति ) सुनता है ( हि ) क्योंकि ( एतत् ) यह ( पाप्मना ) पापसे ( विद्धम् ) विद्ध है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )–तदनन्तर देवताओंने श्रवणेन्द्रियके साथ एकत्वदृष्टिसे प्रणवका आश्रय करके उस इन्द्रियकी कल्याणकारिणी सकल वृत्तियोंको प्रकाशित करनेकी चेष्टा की, तब असुरोंने इस श्रवणेन्द्रिय को भी पापसे विद्ध किया अतएव तबसे श्रवणेन्द्रिय उस पापसे विद्ध होकर सुननेयोग्य विषयकी समान न सुननेयोग्य विषय को भी सुननेलगा ॥ ५ ॥

अथ ह मन उद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धा हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ संकल्पयते संकल्पनीयं चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥६॥

अन्वय और पदार्थ–( अथ, ह ) अनन्तर ( मनः ) मन उपलक्षित ( उद्गीथम् ) प्रणवको ( उपासांचक्रिरे ) उपासना करतेहुए ( असुराः ) असुर ( तत, ह ) उसको भी ( पाप्मना ) पापसे ( विविधुः ) वेधते हुए ( तस्मात् ) तिससे ( तेन ) उसके द्वारा ( सङ्कल्पनीयम् च ) सङ्कल्प करनेयोग्यको ( असङ्कल्पनीयम्, च ) सङ्कल्प न करनेयोग्यको भी ( उभयम् ) दोनोको ( सङ्कल्पयते ) आलोचना करताहै ( हि ) क्योंकि ( एतत् ) यह ( पाप्मना ) पापसे ( विद्धम् ) विधाहुआ है ६

( भावार्थ )-तदनन्तर देवताओंने मनके साथ एकत्वदृष्टि करके प्रणवके आश्रयसे उस इन्द्रियकी कल्याणकारिणी सकल वृत्तियोंको प्रकाशित करनेकी चेष्टाकी, असुरोंने इस मनको भी पापसे विद्ध करके इसमें दोष उत्पन्न करदिये, अतएव तबसे मन इसप्रकार पापसे विद्ध होकर सङ्कल्प करने योग्य विषयकी समान संकल्प न करनेयोग्य विषयकी भी आलोचना करनेलगा। ६।

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तꣳ हासुरा ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसेत ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ह ) अनन्तर ( यः ) जो ( मुख्यः ) मुख्य ( एव ) ही ( प्राणः ) प्राण है ( तम् ) उस ( उद्गीथम् ) उद्गीथको ( उपासाञ्चक्रिरे ) उपासना करतेहुए ( असुराः ) असुर ( तम्, ह ) उसको भी ( ऋत्वा ) प्राप्त होकर (यथा) जैसे ( आखणम् ) खनने करनेके अयोग्य ( अश्मानम् ) पाषाण को ( ऋत्वा ) प्राप्त होकर ( विध्वंसते ) विदीर्ण होता है [ तथा ] तैसे ( विदध्वंसुः ) विनष्ट होगए ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-अन्तमें देवताओंने इन्द्रियसमूहरूप सकल गौण प्राणोंको त्यागकर, इन्द्रियसमूहरूप और वायु विकाररूप प्राण जिसकी जडशक्ति हैं और क्रियाशक्तिरूप प्राण जिसकी चित्शक्ति हैं उस परमात्मा नामक मुख्य प्रणवका ही प्रतिरूप मानकर उद्गीथ नामक प्रणव का आश्रय लिया, असुरोंने इस मुख्य प्राणको भी पाप संयुक्त करनेके लिये इच्छाकी किन्तु उसको पापयुक्त करनेमें असमर्थ होकर जैसे न खुदसकनेवाले कठिन पत्थरको खोदने में उद्यत काठ अपने आप ही नष्ट हो-

जाताहै तैसे ही इच्छामात्रसे ही अपने आप ही नष्ट होगए ॥ ७ ॥

एवं यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसत एवꣳ हैव स विध्वꣳसते य एवं विदि पापं कामयते यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—( एवम् ) इसप्रकार ( यथा ) जैसे ( आखणम् ) खननके अयोग्य ( अश्मानम् ) पाषाणको ( ऋत्वा ) प्राप्त होकर ( विध्वंसते ) नष्ट होताहै ( एवम्, एव ) ऐसे ही ( सः ) वह ( विध्वंसते ) नष्ट होताहै ( यः ) जो ( एवंविदि ) ऐसा जाननेवाले में ( पापम् ) पापको ( कामयते ) चाहताहै ( च ) और ( यः ) जो ( एनम् ) इसको ( अभिदासति ) हिंसा करताहै ( सः ) वह ( एषः ) यह ( आखणः ) अखननीय ( अश्मा ) पाषाणवत् है ॥ ८ ॥

( भावार्थ )—मुख्यप्राणको जो ऐसे गुणवाला जानताहै, उसमें पापसंयोग करनेके लिये जो अभिलाषा करताहै वह खननके अयोग्य पत्थरकी रगडसे बिनष्टहुए काष्ठ आदिकी समान आप ही विनष्ट होजाताहै और जो उस प्राणके ज्ञाताकी हिंसा करताहै वह भी विनष्ट होजाताहै, क्योंकि-प्राणज्ञ और खननके अयोग्य पत्थर दोनो एकसमान हैं ॥ ८ ॥

नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान्प्राणानवति एवमु एवान्ततोऽवित्त्वोत्क्रामति व्याददात्येवान्ततइति

अन्वय और पदार्थ-( एतेन ) इसके द्वारा ( सुरभि ) सुगंधिका ( नैव ) नहीं ( दुर्गन्धि ) दुर्गन्धिको ( न ) नहीं ( विजानाति ) जानताहै ( हि ) क्योंकि ( एषः ) यह ( अपहतपाप्मा ) पापके स्पर्श से रहितहै ( तेन ) तिसके द्वारा ( यत् ) जो ( अश्नाति ) खाता है ( यत् ) जो

( पिबति ) पीताहै ( तेन ) तिससे ( इतरान् ) और ( प्राणान् ) प्राणों का ( अवति ) पालता है ( एवम्, उ ) इसप्रकार ही ( अन्ततः ) अन्त-समय ( अवित्वा-एव ) न पाकर ही ( उत्क्रामति ) प्राण त्यागता है ( इति ) इसकारण ( अन्ततः ) अन्तकाल में (व्याददाति-एव ) अवश्य मुखको फैलाता है ॥ ९ ॥

( भावार्थ )-यह मुख्य प्राण पापके स्पर्शसे रहित है, अतएव विशुद्ध है, विशुद्ध मुख्य प्राणके द्वारा सुगन्धि वा दुर्गन्धि कुछ नहीं जानीजाती, विशुद्ध मुख्य प्राण सुगन्धि और दुर्गन्धिको सूंघनेवाले घ्राणेन्द्रियका प्रेरक होकर भी उसके दोषसे लिप्त नहीं होता, वह अन्य प्राणों ( इन्द्रियों ) की समान आत्मम्भरी नहीं है, किंतु विश्वम्भर है, वह भोजन पान आदिके द्वारा सब इन्द्रियोंका पोषण करता है, भोजन पान आदि मुख्य प्राणकी वृत्ति है, यदि मुख्य प्राण भोजन पान आदि न करै तो प्राणीका अन्तकाल होजाता है, उस समय मुख्य प्राण-वृत्तिके भोजन पान आदि न पानेसे ही अन्य सकल इन्द्रियें शरीरको छोडदेती हैं, प्राणको शरीरत्यागसे पहिले भोजनकी इच्छा देखीजाती है, इसकारण ही उससमय प्राणीका मुखफैलजाना प्रसिद्धहै ९

तँ ह हाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्र एत मु एवाऽऽङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः ॥१०॥

अन्वय और पदार्थ-( अङ्गिरा ) अङ्गिरा ऋषि ( तम्, ह ) उस ही ( उद्गीथ ) उद्गीथको ( उपासाञ्चक्रे ) उपासना करता हुआ ( एतम्, उ ) इसको ही ( आङ्गिरसम् ) अङ्गिरासम्बन्धी ( मन्यन्ते ) मानते हैं ( यत ) क्योंकि ( अङ्गानाम् ) अङ्गोंका ( रसः ) सार है ॥ १० ॥

( भावार्थ )--अङ्गिरा नामक ऋषिने इसप्रकार मुख्य प्राणको उद्गीथ मानकर ओङ्कारकी उपासनाकी थी, अंगिरा

आदि ऋषियोंने इसप्रकार मुख्य प्राणके साथ अभेदबुद्धिसे ॐकारकी उपासना की थी, इसीसे उनके नामसे मुख्य प्राणका नाम सुनाजाता है, श्रुतिमें मुख्य प्राणका एक नाम 'आङ्गिरस, भी कहा है, आङ्गिरस शब्दका व्युत्पत्ति से यह अर्थ होताहै कि 'अङ्गोंका रस'। प्राणही अङ्गोंका रस अर्थात् सार है, अतएव आङ्गिरस शब्दका अर्थ 'प्राण'है

तेन तꣳह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासांचक्र एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-( बृहस्पतिः ) बृहस्पति ऋषि ( तम् ह ) उस ही ( उद्गीथम् ) प्रणवको ( उपासाञ्चक्रे ) उपासना करताहुआ ( तेन ) तिससे ( एतम्, उ, एव ) इसको ही ( बृहस्पतिम् ) बृहस्पति ( मन्यन्ते ) मानते हैं ( हि ) क्योंकि ( वाक् ) वाणी ( बृहती ) बृहती है ( तस्याः ) उसका ( एषः ) यह ( पतिः ) पति है ॥ ११ ॥

( भावार्थ )-इसीप्रकार बृहस्पतिने मुख्य प्राणदृष्टिसे ओङ्कारकी उपासनाकी थी, उसीके अनुसार मुख्य प्राण को भी बृहस्पति शब्दसे कहाहै, वाक् ही बृहती है और प्राण उसका पति है ॥ ११ ॥ आयास्य ऋषि॥

तेन तꣳहाऽऽयास्य उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवाऽऽयास्यं मन्यन्त आस्याद्यदयते ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अयास्यः ) अयास्य ऋषि ( तम्, ह ) उस ही ( उद्गीथम् ) प्रणवको ( उपासाञ्चक्रे ) उपासना करताहुआ ( तेन ) तिससे ( एतम्, उ, एव ) इसको ही ( अयास्यम् ) अयास्य ( मन्यन्ते ) मानते हैं ( यत् ) क्योंकि ( आस्यात् ) मुखसे ( अयते ) निकलता है ॥ १२ ॥

मनोरथ सिद्धिके लिये॥



( भावार्थ )--इसीप्रकार अयास्य ऋषिने मुख्य प्राण दृष्टिसे प्रणवकी उपासनाकी, उसके ही अनुसार मुख्य प्राण को भी आयास्य शब्दसे कहाजाता है, आस्य अर्थात् मुखसे निकलताहै इसकारणही मुख्य प्राणको अयास्य कहते हैं ॥ १२ ॥

तेनत ँ ह बको दाल्भ्यो विदांचकार स ह नैमिशीयानामुद्गाता बभूव सहस्मै-भ्यः कामानागायति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दाल्भ्यः) दलभका पुत्र ( बकः ) बक ऋषि ( तम्, ह ) उसका ( विदाञ्चकार ) जानताहुआ (तेन) तिससे ( सः ) वह ( नैमिशीयानाम् ) नैमिषारण्यवासियोंका (उद्गाता) उद्गान कर्म करनेवाला ( बभूव ह ) हुआ ( सः ) वह ( एभ्यः ) इनके अर्थ ( कामान् ) मनोरथोंको (आगायति, स्म, ह ) गान करताहुआ १३

( भावार्थ )--इसीप्रकार दलभके पुत्र बकने प्रणवको प्राण रूपसे जाना था, इसकारण वह नैमिषारण्यवासी यज्ञकर्त्ताओंका उद्गाता हुआ और उसने उनकी मनोरथ सिद्धिके लिये उद्गान नामक कर्म किया ॥ १३ ॥

पूर्ण करने वाला

आगाताह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥१४॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एतत ) इसको ( एवम् ) ऐसे ( विद्वान् ) जाननेवाला ( उद्गीथम् ) प्रणव ( अक्षरम् ) अ-क्षरको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( वै ) निश्चय ( कामानाम् ) मनोरथोंका ( आगाता ) गान करनेवाला ( भवति, ह ) अवश्य होता है ॥ १४ ॥

( भावार्थ )-जो इसप्रकार जानकर इसओंकार अक्षर की उपासना करता है वह उद्गानके द्वारा यजमानके

मनोरथोंको पूर्ण करसकताहै यह अध्यात्म अर्थात् आत्मविषयक ओङ्कारकी उपासना कही ॥ १४ ॥

इति प्रथमाध्यायका द्वितीय खण्ड समाप्त.

अथाधिदैवतम्। य एवासौ तपति तमुद्गीथ मुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति उद्य ँ स्तमोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥१॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब ( अधिदैवतम् ) अधिदैवत कहते हैं ( यः ) जो (असौ) यह ( तपति ) तपता है ( तम् एव ) उसही ( उद्गीथम् ) प्रणवको ( उपासीत ) उपासना करै ( एषः ) यह ( उद्यन्, वा ) उदय होताहुआ ही ( प्रजाभ्यः ) प्रजाओंके अर्थ (उद्गायति ) उद्गान करताहै ( तमोभयम् ) अन्धकारभय को ( अपहन्ति ) दूर करताहै ( यः ) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानताहै ( वै ) निश्चय ( भयस्य ) भयका ( तमसः ) तमका ( अपहन्ता ) नाशक ( भवति ह ) होताहै ॥ १ ॥

( भावार्थ )-अब अधिदैवदृष्टिसे प्रणवकी उपासना कहते हैं, यह जो आदित्य पृथिवीको ताप देताहै, यह ही उद्गीथ है, आदित्यदृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करनी चाहिये, यह आदित्य उदित होकर सब प्रजाओंको अन्नप्राप्तिके लिये उद्गान कर्मको सम्पन्न करताहै, यदि आदित्यका उदय न हो तो सस्य आदि न पकैं, इसीकारण उनका उदय उद्गाताकी समान है, आदित्य उदित होकर प्रजाओंके भय और अन्धकारको दूर करते हैं, जो ऐसे गुणोंवाले आदित्य को जानताहै वह सबके अन्धकार और भयका नाश करताहै ॥ १ ॥

समान उ एवायं चासौ चोष्णो यमुष्णोसौ स्वर इतीम-

स्वर इस नामसे



**मिमाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमुं तस्माद्वा एतमिममसुं चोद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥**

**अन्वय और पदार्थ**-( समानः, उ, एव ) समान ही है ( अयम् च ) यह सूर्य और ( असौ, च ) यह प्राण भी ( अयम् ) यह ( उष्णः ) उष्ण है ( असौ ) यह ( उष्णः ) उष्ण है ( स्वरः,इति ) ताप देताहै इसकारण ( इमम् ) इसको ( स्वरः, इति ) स्वर इस नामसे ( आचक्षते ) कहतेहैं ( अमुम् ) इसको ( प्रत्यास्वर इति ) प्रत्यास्वर इस नामसे कहते हैं ( तस्मात ) तिससे ( एतम्, अमुम् ) इसको ( उद्गीथम् ) प्रणवको ( उपासीत ) उपासना करै ॥ २ ॥

( **भावार्थ** )-यह आदित्य और यह प्राण दोनो गुण में समान ही हैं, ताप देताहै इसकारण प्राणको स्वर कहते हैं और ताप देताहै इसकारण ही आदित्यको प्रत्यास्वर कहते हैं अतएव प्राणदृष्टिसे और आदित्यदृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करै ॥ २ ॥ मुख नासिकासे वायु छोडता है

**अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोऽपानः अथ यः प्राणापानयोःसन्धिः स व्यानो यो व्यानः सा वाक् तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति ॥ ३ ॥**

**अन्वय और पदार्थ**-( अथ ) अनन्तर ( खलु ) निश्चय ( व्यानम्, एव ) व्यानको ही ( उद्गीथम् ) प्रणवरूपसे ( उपासीत ) उपासनाकरै ( यत् ) जो ( वै ) निश्चय ( प्राणिति ) मुख नासिकासे वायु छोडताहै ( सः ) वह ( प्राणः ) प्राण है ( यत् ) जो ( अपानिति ) वायुको ग्रहण करताहै ( सः ) वह ( अपानः ) अपान है ( अथ ) और ( यः ) जो ( प्राणापानयोः ) प्राण और अपानका ( सन्धिः ) मेल है ( सः ) वह ( व्यानः ) व्यान है ( यः ) जो ( व्यानः ) व्यान है ( सा ) वह ( वाक् ) वाणी है ( तस्मात् ) तिससे ( अप्रा-

णान् ) प्राणका व्यापार न करताहुआ ( अनपानन् ) अपानका व्यापार न करताहुआ ( वाचम् ) वाणीको ( अभिव्याहरति ) उच्चारण करता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर व्यानदृष्टिसे प्रणवकी उपासना करै, जीव मुख और नासिकाके द्वारा जिस वायु को छोडताहै उसका नाम प्राण और जिस वायुको ग्रहण करताहै उसका नाम अपान है, तथा जिसमें प्राण और अपानका मेल होताहै उसको व्यान कहते हैं और जिस को व्यान कहते हैं उसी को वाक् कहतेहैं, अतएव सब लोग प्राण और अपानका व्यापार न करके ही वाक्य का उच्चारण करते हैं ॥ ३ ॥ ऋचाको

या वाक् सर्क् तस्मादप्राणन्ननपानन्नृचमभिव्याहरति यर्क् तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन् साम गायति यत्साम स उद्गीथः तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति ॥ ४ ॥ ऊंचे स्वरसे गान करता है

**अन्वय और पदार्थ**-( या ) जो ( वाक् ) वाणी है ( सा ) वह ( ऋक् ) ऋक् है ( तस्मात् ) तिससे ( अप्राणन् ) प्राणव्यापार न करताहुआ ( अनपानन् ) अपान व्यापार न करताहुआ ( ऋचम् ) ऋचाको ( अभिव्याहरति ) उच्चारण करताहै ( या ) जो ( ऋक् ) ऋचाहै ( तत् ) वह ( साम ) साम है ( तस्मात् ) तिससे ( अप्राणन् ) प्राणव्यापार न करताहुआ ( अनपानन् ) अपानव्यापार न करताहुआ ( साम ) सामको ( गायति ) गाता है ( यत् ) जो ( साम ) सामहै ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( तस्मात् ) तिससे ( अप्राणन् ) प्राणव्यापार न करताहुआ ( अनपानन् ) अपानव्यापार न करताहुआ ( उद्गायति ) उद्गान करताहै ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जो वाक् है वही ऋचा है, अतएव सब लोग प्राणव्यापार और अपानव्यापार न करके ही ऋ-

चाका उच्चारण करतेहैं, जो ऋचा है वह ही साम है, अतएव सब लोग प्राण और अपानका व्यापार न करके ही सामका गान करते हैं, जो साम है वह ही उद्गीथ है, अतएव सब लोग प्राणका और अपानका व्यापार न करके ऊँचे स्वरसे गान करते हैं ॥ ४ ॥

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाग्नेर्मथनमाजेः सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपान ँ स्तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अतः ) इससे ( अन्यानि ) और ( यानि ) जो ( वीर्यवन्ति ) परिश्रमसाध्य ( कर्माणि ) कर्म हैं ( यथा ) जैसे ( अग्नेः ) अग्निका ( मन्थनम् ) मथना ( आजेः ) सीमाका ( सरणम् ) लांघना ( दृढस्य ) दृढ ( धनुषः ) धनुषका ( आयमनम् ) खेंचना ( अप्राणन् ) प्राणव्यापार न करता हुआ ( अनपानन् ) अपानव्यापार न करताहुआ ( करोति ) करता है ( एतस्य, हेतोः ) इस कारण से ( व्यानम, एव ) व्यानको ही ( उद्गीथम् ) प्रणवदृष्टिसे ( उपासीत ) उपासना करै ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-अतएव और जो सब अधिक परिश्रमसाध्य कार्य हैं, जैसे अग्निको मथना, सीमाको लांघना और दृढ धनुषको खेंचना आदि, इनको सब लोग प्राण व्यापार और अपानव्यापारको न करके ही करते हैं, अतएव व्यानदृष्टिसे ही प्रणवकी उपासना करै ॥ ५ ॥

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचोह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्नेहीद ँ सर्व ँ स्थितम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( उद्गीथाक्षराणि,

एव ) उद्गीथके अक्षरोंको ही ( उद्गीथ इति ) प्रणवदृष्टिसे ( उपासीत ) उपासना करै ( प्राणः,एव ) प्राण ही ( उत ) उत है ( हि ) क्योंकि ( प्राणेन, एव ) प्राण करकै ही ( उत्तिष्ठति ) उठता है ( वाक् ) वाणी ( गीः ) गी है ( वाचः, ह ) वाणियोंको ( गिरः, इति ) गी शब्दसे ( आचक्षते ) कहते हैं ( अन्नम् ) अन्न ( थम् ) थ है ( हि ) क्योंकि ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( अन्ने ) अन्नमें ( स्थितम् ) स्थित है ॥ ६ ॥

**( भावार्थ )-तदनन्तर उद्गीथके सब अक्षरोंको उद्गीथ दृष्टिसे उपासना करै, प्राण उत् है, क्योंकि-पुरुष प्राण के द्वारा उठता है, वाक् ही गी है क्योंकि वाणीको सब ही गीः शब्दसे बोलते हैं और अन्न ही थ है, क्योंकि अन्नमें ही यह सब विश्व स्थित है ॥ ६ ॥**

**द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवोद्वायुर्गीरग्निस्थं सामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेस्मै वाग्दोहं यो वाचोदोहोन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति॥७॥**

**अन्वय और पदार्थ**-( द्यौः, एव ) स्वर्ग ही ( उत ) उत है (अन्तरिक्षम् अन्तरिक्ष ) ( गीः ) गी है ( पृथिवी ) पृथिवी ( थम् ) थ है ( आदित्यः, एव ) आदित्य ही ( उत् ) उत् है ( वायुः ) वायु ( गीः ) गी है ( अग्निः ) अग्नि ( थम् ) थ है (सामवेद ,एव ) सामवेद ही ( उत् ) उत है ( यजुर्वेदः ) यजुर्वेद ( गीः ) गी है ( ऋग्वेदः ) ऋग्वेद ( थम् ) थ है ( एतानि ) इनको ( एवम् ) ऐसा ( विद्वान् ) जानने वाला ( यः ) जो ( उद्गीथाक्षराणि ) उद्गीथके अक्षरोंको ( उद्गीथः इति ) उद्गीथ इस दृष्टिसे ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अस्मै ) इसके अर्थ ( वाग्दोहम् ) वेदाध्ययनके फलको (दुग्ध) दुहता है ( वाचोदोहः ) वाग्दोह के फल वाला ( अन्नवान् ) अन्नवाला ( अन्नादः ) अन्नका भोक्ता ( भवति ) होता है ॥ ७ ॥

( भावार्थ )—स्वर्ग ही उत्, अन्तरिक्ष गी और पृथिवी थ है, सामवेद ही उत् यजुर्वेद गी और ऋग्वेद थ है। जो इसप्रकार जानकर इन सब उद्गीथके अक्षरोंकी प्रणवदृष्टिसे उपासना करता है वाणी उस साधकके लिये ऋग्वेदादि शब्दसाध्य फलको देती है वह अन्नवान् और अन्नभोक्ता भी होता है ॥ ७ ॥

अथ खल्वाशीःसमृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत येन साम्ना स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( खलु ) निश्चय ( आशीःसमृद्धिः ) फलसम्पत्ति कहीजातीहै ( उपसरणानि ) ध्यानयोग्यों का ( इति ) प्रणव है ऐसा ( उपासीत ) उपासना करै ( येन ) जिस ( साम्ना ) साम करकै ( स्तोष्यन् ) स्तुति करनेवाला हो ( तत् ) उस ( साम ) सामको ( उपधावेत् ) चिन्तवन करै ॥ ८ ॥

( भावार्थ )—अब फलसम्पत्ति कहते हैं कि ध्यान करने योग्य समझकर उद्गीथकी उपासना करै, पहिले जिस सामसे स्तुति करनी होगी, उद्गाता उस सामका ध्यान करै ॥ ८ ॥

यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ--( यस्याम् ) जिस ( ऋचि ) ऋचामें हो ( ताम्, ऋचम् ) उस ऋचाको ( यत्, आर्षेयम् ) जिस ऋषिवाला हो ( तम्, ऋषिम् ) उस ऋषिको ( याम्, देवताम् ) जिस देवताको ( अभिस्टोष्यन्, स्यात् ) स्तुतिकरना हो ( ताम्, देवताम् ) उस देवताको ( उपधावेत् ) चिन्तवन करै ॥ ९ ॥

( भावार्थ )--तदनन्तर वह साम जिस ऋचाके अन्तर्गत हो उस ऋचाको उस सामका जो ऋषि हो उस

ऋषिको और जिस देवताकी स्तुति करनी हो उस देवताको चिन्तवन करै ॥ ९ ॥

येनच्छन्दसा स्तोष्यन्स्यात्तच्छंद उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्त ँ स्तोममुपधावेत् ।१०।

**अन्वय और पदार्थ**-( येन ) जिस ( छन्दसा ) छन्द करकै ( स्तोष्यन् स्यात् ) स्तुति करनेवाला हो ( तत, छन्दः ) उस छन्दको ( उपधावेत् ) चिन्तवन करै ( येन ) जिस ( स्तोमेन ) स्तोमसे ( स्तोष्यमाणः, स्यात् ) स्तुति करनेवाला हो ( तम् ) उस ( स्तोमम् ) स्तोमको ( उपधावेत् ) चिन्तवन करै ॥ १० ॥

( **भावार्थ** )---गायत्री आदि जिस छन्दसे स्तुति करना हो उस छन्दका ध्यान करै और जिस स्तोमके द्वारा स्तव करना हो उस स्तोमका ध्यान करै ॥ १० ॥

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत् ॥११॥

**अन्वय और पदार्थ**—( याम् ) जिस ( दिशम् ) दिशाको ( अभिष्टोष्यन् ) स्तुति करनेवाला ( स्यात् ) हो ( ताम् ) उस (दिशम्) दिशाको ( उपधावेत् ) चिन्तवन करै ॥ ११ ॥

( **भावार्थ** )—जिस दिशाकी स्तुति करनी हो उस दिशाका ध्यान करै ॥ ११ ॥

आत्मानमंतत उपसृत्यस्तुवीत कामं ध्यायन्नप्रमत्तोऽभ्याशो ह यदस्मै स कामः समृध्येत यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ॥ १२ ॥

**अन्वय और पदार्थ**--(अन्त ) अन्तमें ( आत्मानम् ) अपनेको ( उपसृत्य ) चिन्तवन करकै ( कामम् ) अभिलाषित को ( ध्यायन् ) ध्यान करताहुआ (अप्रमत्तः) स्वर आदिमें प्रमाद न करताहुआ (अभ्याशः) शीघ्र ( स्तुवीत ) स्तुति करै ( यत् ) जिससे ( सः ) वह ( कामः ) अभिलाषित ( अस्मै ) इसके अर्थ ( समृद्धयेत ) समृद्धिको प्राप्त हो

( यत्कामः ) जिसकामनावाला (स्तुवीत) स्तुति करै ( इति ) इसप्रकार ॥

( भावार्थं )—अन्तम अपनेको चिन्तवन करके अपेक्षित फलका स्मरण और अनुसन्धान करते करते सावधानतासे स्तुति करै, यह उद्गाता जिस कर्ममें जिस फलकी कामना करके स्तुति करै उस कर्ममें शीघ्र उस ही फलको पावेगा ॥ १२ ॥

प्रथमाध्यायका तृतीय खण्ड समाप्त.

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ -( ओमितिएतत ) ओम् इस ( अक्षरम् अक्षर ( उद्गीथम् ) उद्गीथको ( उपासीत ) उपासना करै ( हि) क्योंकि ( ओमिति ) ओम् ऐसा ( उद्गायति ) उद्गान करताहै ( तस्य ) उसका ( उपव्याख्यानम् ) वर्णन है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—ओम् इस अक्षरकी उद्गीथ दृष्टिसे उपासना करै, ओङ्कारका उच्चारण करके विभूतिवर्णन ही उसकी उपासना है ॥ १ ॥

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशꣳस्तेच्छंदोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादय ꣳ स्तच्छंदसां छंदस्त्वम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ--( देवाः ) देवता ( मृत्योः ) मृत्युसे ( बिभ्यतः ) डरतेहुए ( त्रयीम्, विद्याम् ) त्रयीविद्यामें के कर्मको (प्राविशन ) प्रारंभ करतेहुए ( ते ) वह ( छन्दोभिः ) छन्दोंसे ( अच्छादयन् ) आच्छादन करतेहुए ( यत् ) जो (एभिः) इनसे ( अच्छादयन् ) आच्छादन करतेहुए ( तत् ) वह (छन्दसाम् ) छन्दोंका ( छन्दस्त्वम् ) छन्दपना है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-देवताओंने मृत्युसे भयभीत होकर

तीनो वेदोंमें कहेहुए कर्मका आरंभ किया, उन्होने छन्द अर्थात् कर्ममें विनियोगरहित मंत्रोंके द्वारा अपनेको आच्छादित किया, उन्होने ऐसा किया था इसकारण ही सब मंत्रोंका छन्द नाम हुआ है ॥ २ ॥

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि ते नु वित्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यथा ) जैसे [ घातकः ] घातक ( उदके ) जलमें ( मत्स्यम् ) मत्स्यको ( परिपश्येत् ) देखै ( एवम्, उ ) ऐसे ही ( मृत्युः ) मृत्यु ( तत्र ) तहां ( ऋचि ) ऋक्में (साम्नि) साममें ( यजुषि ) यजुमें ( तान् ) उन देवताओंको ( पर्यपश्यत् ) देखताहुआ ( ते, नु ) वह देवता ( विदित्वा ) जानकर ( ऋचः ) ऋक्से ( साम्नः ) सामसे ( यजुः ) यजुसे ( उर्द्धाः ) उठेहुए ( स्वरम्, एव ) अक्षरको ही ( प्राविशन् ) प्रवेश करतेहुए ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—जैसे संसारमें मच्छियें मारनेवाला जलमें मच्छियोंको मारनेयोग्य देखता है, तैसे ही मृत्यु ने ऋक्, यजु और सामवेदसे विधान कियेहुए कर्ममें, इन कर्मपरायण देवताओंको वधकेयोग्य देखा, उस समय देवताओंने मृत्युके अभिप्रायको जानकर उस ऋक्,साम और यजुके कर्मको छोडकर स्वर नामक अक्षरकी उपासना की ॥ ३ ॥

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येव ✿ सामैवं यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभूवन् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यदा, वा ) जब ( ऋचम् ) ऋक्को ( आप्नोति ) प्राप्त होताहै ( ओम्–इति–एव ) ओं ऐसा ही ( अतिस्वरति ) उच्चारण करताहै ( एवम् ) ऐसे ही ( साम ) सामको

( एवम् ) ऐसेही ( यजुः ) यजुको ( एषः, उ ) यह ही ( स्वरः ) स्वर ( यत् ) क्योंकि ( एतत् ) यह ( अक्षरम् ) अक्षर है ( एतत् ) यह ( अमृतम् ) अमृत है ( अभयम् ) अभय है ( तत् ) उसको ( प्रविश्य ) प्रविष्ट होकर ( देवाः ) देवता ( अमृताः ) अमर ( अभयाः ) निर्भय ( अभूवन् ) हुए ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जब ऋक्का आश्रय करताहै तब ॐकार का उच्चारण करताहै, ऐसे ही सामका और यजुका आश्रय करकै भी ॐकारका उच्चारण करताहै, क्योंकि यह ओंकाररूप स्वर नामक अक्षर ही अमृत है अभय है इस कारण ही देवता इस ॐकार अक्षरकी उपासना करकै अमर और अभय हुए ॥ ४ ॥

**स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरꣳ स्वरममृतमभयं विशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ ५ ॥**

**अन्वय और पदार्थ**-( एतत् ) इस ( अक्षरम् ) अक्षरको ( एवम् ) ऐसा ( विद्वान् ) जानने वाला ( यः ) जो ( प्रणौति ) प्रणाम करताहै ( सः ) वह ( एतत्-एव ) इस ही ( अक्षरम् ) अक्षर ( स्वरम् ) स्वररूप ( अमृतम् ) अमृतको ( अभयम् ) अभयको ( विशति ) प्रवेश करताहै ( तत् ) उसको ( प्रविश्य ) प्रविष्ट होकर ( यत् ) जो ( देवाः ) देवता ( अमृताः ) अमर हुए ( तत् ) तिससे ( अमृतः ) अमर ( भवति ) होता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-जो इस ओङ्कार नामक अक्षरको इस प्रकार अमृत और अभयगुणशाली जानकर प्रणाम करताहै और इस अक्षर को ही अमृत और अभय जानकर आश्रय करताहै वह, जैसे इसके आश्रयसे देवता अमृत और अभयहुए थे तैसे ही अमृत और अभय होता है ॥ ५ ॥

इति प्रथम अध्यायका चतुर्थखण्ड समाप्त.

इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ



अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( खलु ) निश्चय ( यः ) जो ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( सः ) वह ( प्रणवः ) प्रणव है ( यः ) जो ( प्रणवः ) प्रणव है ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( एषः ) यह ( आदित्यः, इति ) आदित्य ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( एषः ) यह ( ओम्-इति ) ओम्-ऐसा ( स्वरन् ) उच्चारण करता हुआ ( एति ) जाताहै ॥ १ ॥

( भावार्थ ) जो उद्गीथ है वह ही प्रणव है और जो प्रणव है वह ही उद्गीथ है, यह आदित्य ही उद्गीथ और प्रणव है, क्योंकि--ओम् इस अक्षरका उच्चारण करते २ ही गमन करता है ॥ १ ॥

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मी ँ स्त्वं पर्यावर्त्तयाद्बहवो वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ--( कौषीतकिः ) कुषीतकका पुत्र ( पुत्रम् ) पुत्रको ( उवाच ) बोला ( अहम् ) मैं ( एतम्, उ, एव ) इसका ही ( अभ्यगासिषम् ) अभिमुख गान करताहुआ ( तस्मात् ) तिससे (मम) मेरे ( त्वम् ) तू ( एकः ) एक ( असि ) है, ( इति, ह ) इसप्रकार ( त्वम् ) तू ( रश्मीन् ) किरणों को ( पर्यावर्त्तयात् ) उपासनाकर ( वै ) निश्चय ( ते ) तेरे ( बहवः ) बहुतसे ( भविष्यन्ति ) होंगे ( इति ) इसप्रकार ( अधिदैवतम् ) अधिदैवत हुआ ॥ २ ॥

( भावार्थ )—कुषीतकके पुत्र कौषीतकिने अपने पुत्रसे कहाथा कि--मैंने इस आदित्यकी इसी बुद्धि से उपासना की थी तब तुम मेरे एकमात्र पुत्र हुए थे, अतएव तुम बहुत पुत्र पानेके लिये इस आदित्यकी सकल किरणोंकी उपासना करो अर्थात् आदित्य और ओंकार

को बहुत्वयुक्त समझकर उपासना करो, तब तुम्हारे अनेक पुत्र होंगे, यह अधिदैवत कहा ॥ २ ॥

अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ ३ ॥

**अन्वय और पदार्थ**—( अथ ) अब ( अध्यात्मम् ) अध्यात्म कहाजाताहै (यः) जो ( अयम् ) यह ( मुख्यः ) मुख्य ( प्राणः ) प्राण है ( तम्-एव ) उसको ही ( उद्गीथम् ) उद्गीथदृष्टिसे उपासीत उपासना करै ( एषः ) यह ( हि ) क्योंकि ( ओमिति ) ओम् इस प्रकार ( स्वरन् ) उच्चारण करताहुआ ( एति ) जाताहै ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—अब अध्यात्म कहते हैं, कि--यह जो मुख्य प्राण है, इसकी दृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करै, क्योंकि--मुख्य प्राण ओंकारका उच्चारण करते २ ही गमन करताहै ॥ ३ ॥

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच प्राणाᳬंस्त्वं भूमानमभिगायताद् बहवो वै ते भविष्यन्तीति ॥४॥

**अन्वय और पदार्थ**--( कौषीतकिः ) कौषीतकि ( पुत्रम् ) पुत्र को ( उवाच ) बोला ( एतम्, उ, एव ) उसको ही ( अहम् ) मैं ( अभ्यगासिषम् ) गान करताहुआ ( तस्मात ) तिससे ( मम ) मेरे ( त्वम् ) तू ( एकः ) एक (असि) है ( इति-ह ) इसप्रकार ( त्वम् ) तू ( भूमानम् ) भूमा (प्राणान् ) प्राणोंको (अभिगायतात्) गानकर (वै) निश्चय (ते) तेरे (बहवः) बहुतसे (भविष्यन्ति) होंगे (इति) इसप्रकार ४

( भावार्थ )--कौषीतकिने अपने पुत्रसे कहा कि--मैंने इसकी ही उपासनाकी थी, उस उपासना से ही तुझ एकमात्र पुत्रको पाया है, तू बहुत पुत्रोंकी कामना करके भूमा कहिये बहुत्वबुद्धिसे इसकी उपासना कर ॥ ४ ॥

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीथमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीति ॥ ५ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( अथ ) और ( खलु ) निश्चय ( यः ) जो ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( सः ) वह ( प्रणवः ) प्रणव है ( यः ) जो ( प्रणवः ) प्रणव है ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( इति ) इस कारण ( होतृषदनात् ) होताके स्थानसे ( एव ) ही ( अपि, ह ) निश्चय (दुरुद्गीथम्) दुष्ट उद्गीथ को (अनुसमाहरति) अनुसन्धान करता है ५

**( भावार्थ )—जो उद्गीथ है वह ही प्रणव है और जो प्रणव है वह ही उद्गीथ है प्रणव और उद्गीथके अभेददर्शीने होतृस्थानसे दुष्ट उद्गीथका अनुसन्धान किया अर्थात् सम्यक्प्रकार प्रणवोच्चारणके द्वारा, प्रमादवश स्वरादिहीन उद्गानकर्मको ठीक किया इन दोनों में भेद देखनेवाला ऐसा नहीं करसकता ॥ ५ ॥**

प्रथम अध्यायका पंचम खण्ड समाप्त

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयत इयमेव साग्निरमस्तत्साम ॥ १ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( इयम्--एव ) यह ही ( ऋक् ) ऋक् है ( अग्निः ) अग्नि ( साम ) साम है ( तत ) सो ( एतत् ) यह ( ऋचि--साम ) ऋक्में सामकी समान ( एतस्याम् ) इसमें ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिस से ( ऋचि ) ऋक् में ( अध्यूढम् ) स्थित ( साम ) साम ( गीयते ) गाया जाता है ( इयमेव ) यह ही ( सा ) सा है ( अग्निः ) अग्नि ( अमः ) अम है ( तत ) सो ( साम ) साम है १

**( भावार्थ )—यह पृथिवी ऋक् है, अग्नि साम है, यह अग्नि पृथिवीमें, ऋचामें सामकी समान स्थित है,**

इसकारण ही पृथिवी नामक ऋक्में स्थित अग्नि नामक सामका गान किया जाता है। यह पृथिवी सा है और अग्नि अम है, अतएव पृथिवी और अग्नि दोनो मिलकर साम है

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते ऽन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष ( एव ) ही ( ऋक् ) ऋक् है ( वायुः ) वायु ( साम ) साम है ( तत् ) सो ( एतत् ) यह ( साम ) साम ( एतस्याम् ) इस ( ऋचि ) ऋक्में ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिससे ( ऋचि ) ऋक्में ( अध्यूढम् ) स्थित ( साम ) साम ( गीयते ) गाया जाता है ( अन्तरिक्षम्-एव ) अन्तरिक्ष ही ( सा ) सा है ( वायुः ) वायु ( अमः ) अम है ( तत् ) सो ( साम ) है ॥२॥

( भावार्थ )-यह अन्तरिक्ष ऋक् है, वायु साम है। यह वायु अन्तरिक्षमें ऋक्में, सामकी समान स्थित है इसकारण ही अन्तरिक्ष नामक ऋक्में स्थित वायु नामक सामका गान किया जाता है। यह अन्तरिक्ष सा है और वायु अम है, अतएव अन्तरिक्ष और वायु दोनो मिलकर साम है ॥ २ ॥

द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते द्यौरेव सादित्योमस्तत्साम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( द्यौः-एव ) स्वर्ग ही ( ऋक् ) ऋक् है ( आदित्यः ) आदित्य ( साम ) साम है ( तत ) सो ( एतत ) यह ( एतस्याम् ) इसमें ( ऋचि ) ऋक्में ( साम ) साम ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिससे ( ऋचि ) ऋक्में ( अध्यूढम् ) स्थित ( साम ) साम ( गीयते ) गाया जाता है ( द्यौः-एव ) स्वर्ग ही

( सा ) सा है ( आदित्यः ) आदित्य ( अमः ) अम है ( तत् ) सो ( साम ) साम है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-स्वर्ग ऋक् है, आदित्य साम है, यह आदित्य स्वर्गमें, ऋक् में सामकी समान स्थित है, इस-कारण ही स्वर्ग नामक ऋक्में स्थित आदित्य नामक साम गायाजाता है। स्वर्ग सा है, आदित्य अम है इस कारण स्वर्ग और आदित्य दोनोंको मिलाकर साम है ॥ ३ ॥

नक्षत्राण्येवर्क् चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्या-मृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गी-यते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तत्साम ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--( नक्षत्राणि--एव ) तारागण ही ( ऋक् ) ऋक् है ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा ( साम ) साम है ( तत ) सो ( एतत् ) यह ( एतस्याम् ) इसमें ( ऋचि ) ऋक्में ( साम ) साम ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिससे ( ऋचि ) ऋक्में ( अध्यूढम् ) स्थित ( साम ) साम ( गीयते ) गायाजाताहै ( नक्षत्राणि--एव ) नक्षत्र ही ( सा ) सा है ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा ( अमः ) अम है ( तत् ) सो ( साम ) साम है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-सब नक्षत्र ही ऋक् है, चन्द्रमा साम है, यह चन्द्रमा नक्षत्रसमूहरूप ऋक्में सामकी समान स्थित रहताहै, इसकारण ही नक्षत्र नामक ऋक्में स्थित चन्द्रमा नामक साम का गान कियाजाताहै, यह नक्षत्र समूह ही सा है, चन्द्रमा अम है, अतएव सकल नक्षत्र और चन्द्रमा दोनोको मिलकर साम है ॥ ४ ॥

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ य-न्नीलं परःकृष्णं तत्साम तदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत् ) जो ( एतत् ) यह ( आदित्यस्य ) आदित्यकी ( शुक्लम् ) स्वेत ( भाः ) दीप्ति है ( सा-एव ) वह ही ( ऋक् ) ऋक् है ( अथ ) और ( यत् ) जो ( नीलम् ) नील ( परः ) अत्यन्त ( कृष्णम् ) कृष्ण है ( तत् ) वह ( साम ) साम है ( तत् ) सो ( एतत् ) यह ( एतस्याम् ) इसमें (ऋचि) ऋक्में (साम) साम ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गायाजाताहै ।५।

( भावार्थ )—यह जो आदित्यकी शुक्ल दीप्ति है यह ही ऋक् है और जो नील वा अत्यन्त कृष्णवर्ण आभा है,वह ही साम है, इस शुक्लवर्ण आभारूप ऋक्में कृष्ण वर्ण आभारूप साम स्थित रहताहै, इसकारण ही ऋक् में स्थित साम का गान कियाजाता है ॥ ५ ॥

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाथ य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत्-एव ) जो ( एतत् ) यह ( आदित्यस्य ) आदित्यकी ( शुक्लम् ) शुक्ल ( भाः ) दीप्ति है ( सा-एव ) वह ही ( सा ) सा है ( अथ ) और ( यत् ) जो ( नीलम् ) नील ( परः ) अत्यन्त ( कृष्णम् ) कृष्ण है ( तत् ) वह ( अमः ) अम है ( तत् ) सो ( साम ) साम है ( अथ ) और ( एषः ) यह ( अन्तरादित्ये ) आदित्यके भीतर ( हिरण्मयः ) हिरण्मय (पुरुषः) पुरुष ( दृश्यते ) दीखताहै ( हिरण्यश्मश्रुः ) हिरण्यमय श्मश्रुवाला ( हिरण्यकेशः ) हिरण्यमयकेशवाला ( आप्रणखात् ) नखपर्यन्त ( सर्वः-एव ) सब ही ( सुवर्णः ) सुवर्ण है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-यह जो आदित्यकी शुक्ल दीप्ति है यही सा है, और जो इसकी अतिनील आभा है वह ही अम

है। दोनो मिलकर ही साम है, इस आदित्यमण्डलके भीतर जो हिरण्मय पुरुष दीखताहै, उसके श्मश्रु हिरण्मय हैं, उसके केश हिरण्मय हैं, अधिक क्या कहैं उसके नखाग्रसे केशपर्यन्त सब ही सुवर्ण है ॥ ६ ॥

तस्य यथा कप्यासंपुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्य ) उसके ( अक्षिणी ) नेत्र ( कप्यासम्-यथा ) वानरकी पीठके अधोभागकी समान ( पुण्डरीकम् ) अत्यन्ततेजस्वी लाल हैं ( एवम् ) ऐसे ही ( तस्य ) उसका ( उत इति ) उत यह ( नाम ) नाम है ( सः ) वह ( एषः ) यह ( सर्वेभ्यः ) सब ( पाप्मभ्यः ) पापोंसे ( उदितः ) उठाहुआ ( उदेति ) उदित होताहै ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानताहै ( वै-ह ) निश्चय ( सर्वेभ्यः ) सब ( पाप्मभ्यः ) पापोंसे [ उदेति ] उठताहै ॥ ७ ॥

( भावार्थ )—उसके पुण्डरीक की समान तेजस्वी दोनो नेत्र वानरकी पीठके अधोभागकी समान लाल २ हैं, उनका 'उत्' यह नाम है, क्योंकि--वह सब पापोंसे उठेहुए ( अलग ) हैं, जो ऐसा जानता है वह भी सकल पापोंसे अलग रहता है ॥ ७ ॥

तस्यर्क् च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष येचामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानाञ्चेत्यधिदैवतम् ८

अन्वय और पदार्थ—( तस्य ) उसके ( ऋक् ) ऋक् (च) और ( साम-च ) साम भी ( गेष्णौ ) अंगुलियोंके पोरुए वा गायकहैं ( तस्मात ) तिससे ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( तस्मात्-एव-तु ) तिस कारण ही ( एतस्य ) इसका ( गाता ) गानेवाला ( उद्गाता ) उद्गाता

है ( सः ) वह ( एषः ) यह ( ये-च ) जो ( अमुष्मात् ) इससे ( पराञ्चः ) ऊपरके ( लोकाः ) लोक हैं ( तेषाम् ) तिनका ( च ) और ( देवकामानाम्-च ) देवताओंके मनोरथोंका भी ( ईष्टे ) ईश्वर होताहै ॥ ८॥

( भावार्थ )—ऋक् और साम उसकी अंगुलियों के दो पोरुए वा गायक हैं, इसकारण ही इनको उद्गीथ कहते हैं और इसकारण ही जो इनका गान करते हैं उनको उद्गाता कहतेहैं, यही उत् नामक देवता इस आदित्य के ऊपरके जो लोकहैं उनपर प्रभुता करते हैं और वही देवताओंकी सकल कामनाओंको पूर्ण करते हैं। यह अधिदैवत कहा ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायका छठा खण्ड समाप्तः

अथाध्यात्मं वागेवर्क् प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते वागेव सा प्राणोमस्तत्साम ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अब ( अध्यात्मम् ) अध्यात्म कहते हैं ( वाक्-एव ) वाणी ही ( ऋक् ) ऋक् है ( प्राणः ) प्राण ( साम ) साम है ( तत् ) सो ( एतत् ) यह ( एतस्याम् ) इस में ( ऋचि ) ऋक्में ( साम ) साम ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिससे ( ऋचि ) ऋक्में ( अध्यूढम् ) स्थित ( साम ) साम ( गीयते ) गायाजाताहै ( वाक्-एव ) वाणी ही ( सा ) सा है ( प्राणः ) प्राण ( अमः ) अम है ( तत् ) सो ( साम ) साम है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-अब अध्यात्म कहते हैं कि-वाणी ही ऋक् है, प्राण ही साम है, प्राणनामक साम वाणी नामक ऋक्में स्थित है, अतएव ऋक्में स्थित सामका गान कियाजाताहै, वाक् सा है, प्राण अम है और वाणी प्राण दोनो मिलकर ही साम है ॥ १ ॥

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते चक्षुरेव सात्मामस्तत्साम

अन्वय और पदार्थ--( चक्षुः एव ) चक्षु ही ( ऋक् ) ऋक् है ( आत्मा ) आत्मा (साम) साम है ( तत् ) सो ( एतत् ) यह ( एतस्याम् ) इसमें ( ऋचि ) ऋक्में ( साम ) साम ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिससे ( ऋचि ) ऋक्में ( अध्यूढम् ) स्थित ( साम ) साम ( गीयते ) गायाजाताहै ( चक्षुः--एव ) चक्षु ही (सा) सा है ( आत्मा ) आत्मा ( अमः ) अमहै ( तत् ) सो ( साम ) साम है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—चक्षु ही ऋक् है, छायात्मा साम है, छायात्मा साम चक्षुःस्वरूप ऋक्में स्थित है, इसकारण ऋक्में स्थित सामका गान कियाजाता है, चक्षु ही सा है, छायात्मा अम है, अतः चक्षु और छायात्मा दोनो मिलकर ही साम है ॥ २ ॥

श्रोत्रमेवर्ङ्मनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते श्रोत्रमेव साम मनोमस्तत्साम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--( श्रोत्रम्-एव ) श्रोत्र ही ( ऋक् ) ऋक् है (मनः) मन (साम) साम है ( तत् ) सो ( एतत ) यह ( एतस्याम् ) इस ( ऋचि ) ऋक्में (साम) साम ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिससे ( ऋचि ) ऋक्में ( अध्यूढम् ) स्थित ( साम ) साम ( गीयते ) गायाजाताहै ( श्रोत्रम् एव ) श्रोत्र ही (सा) सा है (मनः) मन (अमः) अम है ( तत् ) सो ( साम ) साम है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—श्रोत्र ही ऋक है, मन साम है, मनोरूप साम श्रोत्ररूप ऋक्में स्थित है, अतएव ऋक्में स्थित सामका गान कियाजाताहै, श्रोत्र ही सा है मन अम है अतएव श्रोत्र और मन दोनो मिलकर साम है ॥ ३ ॥

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ।४।

**अन्वय और पदार्थ**—(अथ) और ( यत् ) जो ( एतत् ) यह (अक्ष्णः) नेत्रकी ( शुक्लम् ) स्वेत ( भाः ) दीप्ति है ( सा--एव ) वह ही (ऋक्) ऋक् है ( अथ ) और (यत्) जो ( नीलम् ) नील ( परः ) अत्यन्त ( कृष्णम् ) कृष्ण है ( तत् ) वह ( साम ) साम है ( तत् ) सो ( एतत् ) यह (एतस्याम्) इसमें ( ऋचि ) ऋक्में (साम ) साम ( अध्यूढम् ) स्थित है ( तस्मात् ) तिससे ( ऋचि ) ऋक्में ( अध्यूढम् ) स्थित ( साम ) साम ( गीयते ) गायाजाताहै ( अथ ) और ( यत्--एव ) जो (एतत्) यह ( अक्ष्णः ) नेत्रकी ( शुक्लम् ) शुक्ल (भाः) दीप्ति है ( सा--एव ) वह ही (सा ) सा है (अथ ) और (यत्) जो ( नीलम् ) नील (परः) अत्यन्त ( कृष्णम् ) कृष्ण हे ( तत् ) सो ( अमः ) अम है ( तत् ) वह ( साम ) साम है ॥ ४ ॥

**( भावार्थ )**---**जो यह चक्षुकी शुक्ल दीप्ति है वह ही ऋक् है, और जो नील अर्थात् अत्यन्त कृष्णवर्ण आभा है वही साम है, इस शुक्लवर्ण आभारूप ऋक्में यह कृष्णवर्ण आभारूप साम स्थित है, इसकारण ही ऋक्में स्थित सामका गान कियाजाताहै, यह चक्षुकी शुक्ल आभा ही सा है और इसकी अतिकृष्ण आभा अम है तथा दोनो मिलकर साम है ॥ ४ ॥**

अथ य एषोन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क् तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य-रूपं यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ।५।

**अन्वय और पदार्थ** ( अथ ) और ( यः ) जो ( एषः ) यह

( अन्तरक्षिणि ) चक्षुके भीतर ( पुरुषः ) पुरुष ( दृश्यते ) दीखता है ( सा-एव ) वह ही ( ऋक् ) ऋक है ( तत् ) वह ( साम ) साम है ( तत् ) वह ( उक्थम् ) उक्थ है ( तत् ) वह ( यजुः ) यजु है ( तत् ) वह ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( यत् ) जो ( अमुष्य ) इसका ( रूपम् ) रूप है, तत्-एव ) वह ही ( तस्य ) तिस ( एतस्य ) इसका ( रूपम् ) रूप है ( अमुष्य ) इसके ( यौ ) जो ( गेष्णौ ) गायक हैं ( तौ ) वह ( गेष्णौ ) गायक हैं ( यत् ) जो ( नाम ) नाम है ( तत ) वह ( नाम ) नामहै ५

( भावार्थ )—इस चक्षुके भीतर जो पुरुष दीखता है वह ही ऋक् है, वह ही साम है, वह ही उक्थ है, वह ही यजु है, वह ही ब्रह्म है, उस आदित्यमें स्थित पुरुषका जो रूप है इस चक्षुमें स्थित पुरुषका भी वही रूप है, उसके जो दो गायक हैं इसके भी वही दो गायक हैं, उसका जो नाम है इस का भी वही नाम है ॥ ५ ॥

**स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्यकामानाञ्चेति तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः ॥ ६ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( एषः ) यह ( ये,च ) जो ( अस्मात् ) इससे ( अर्वाञ्चः ) नीचेके ( लोकाः ) लोकहैं ( तेषाम् ) उनका ( च ) और ( मनुष्यकामानाञ्च ) मनुष्यकी कामनाओंका भी ( ईष्टे ) ईश्वरहै ( ये ) जो ( वीणायाम् ) वीणामें ( गायन्ति ) गातेहैं ( ते ) वह ( तत् ) उस ( एतम् ) इसको ( गायन्ति ) गातेहैं ( तस्मात् ) तिससे ( ते ) वह ( धनसनयः ) धनवान् होते हैं ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—यह चाक्षुष पुरुष ही इस लोकसे नीचे के सकल लोकोंका और मनुष्योंकी सकल कामनाओंका प्रभु है, अतएव जो वीणाके साथ गान करते हैं वह इस का ही गान करते हैं और धनवान् होते हैं ॥ ६ ॥

अथ य एतदेवं विद्वान्साम गायत्युभौ स गायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताᳬँश्चा- प्नोति देवकामाᳬँश्च ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (एतत्) इसको (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जाननेवाला (यः) जो (साम) सामको (गायति) गाताहै (सः) वह (उभौ) दोनो को (गायति) गाताहै (सः) वह (अमुना--एव) इसके द्वारा ही (सः) वह (एषः) यह (ये, च) जो (अस्मात्) इससे (पराञ्चः) ऊपरके (लोकाः) लोक हैं (तान्) उनको (च) और (देवकामानाम्, च) देवताओंके भोग्य- विषयोंको भी (आप्नोति) प्राप्त होताहै ॥७॥

(भावार्थ)—जो ऐसा जानकर इस सामका गान करताहै वह चाक्षुष और आदित्यमें स्थित दोनो पुरु- षोंका गान करताहै वह इस आदित्यके द्वारा तिससे ऊपरके सकल लोक और देवताओंके भोगनेयोग्य सकल विषयोंको पाता है ॥

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ताᳬँश्चा- प्नोति मनुष्यकामाᳬँश्च तस्मादुहैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ८

अन्वय और पदार्थ--(अथ) और (अनेन--एव) इसके द्वारा ही (ये,च) जो (एतस्मात्) इससे (अर्वाञ्चः) नीचे के (लोकाः) लोक हैं (तान्) उनको (च) और (मनुष्यकामांश्च) मनुष्योंके अभिलाषोंको भी (आप्नोति) प्राप्त होताहै (तस्मात्, उ) तिससे ही (एवंवित्) ऐसा जाननेवाला (उद्गाता) उद्गाता (ब्रूयात्) कहै ८

(भावार्थ)--और वह इस चाक्षुष पुरुषके द्वारा इस लोकसे नीचेके सकल लोक और मनुष्योंके भोगनेयोग्य सकल विषयोंको पाताहै, अतएव इस सबका तत्त्व जाननेवाला उद्गाता यजमानको कहै ॥ ८ ॥

कन्ते कामगागायानीत्येष ह्येव कामागानस्येष्टे य एवं विद्वान्साम गायति साम गायति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ते ) तेरे ( कम् ) किस ( कामम् ) अभीष्टको ( आगायानि ) गानसे प्रार्थना करूँ ( इति ) ऐसा ( एषः-एव हि ) यह उद्गाता ही ( कामागानस्य ) अभिलषित गानका ( ईष्टे ) प्रभु होताहै (यः) जो ( एवम् ) ऐसा ( विद्वान् ) जाननेवाला ( साम ) सामको ( गायति ) गाताहै ॥ ९ ॥

( भावार्थ )-तुम्हारे किस इच्छित विषयकी सामगानसे प्रार्थना करूँ ! ऐसा उद्गाता उसगानके द्वारा इच्छित पदार्थ प्राप्त करासकता है, ऐसा जानकर उद्गाता सामका गान करते हैं [ तृतीयखण्डसे इस सप्तमखण्ड पर्यन्तका यह तात्पर्य है, कि-सामगानमें पृथिवी आदि लोकदृष्टि और चक्षुरादिदृष्टि करै विश्वभरमें व्याप्त प्राणशक्तिसे सूर्य चन्द्रादि और चक्षुकर्ण आदि प्रकट हुए हैं, साम आदि गानमें भी उस प्राणशक्तिको ही प्रकट किया है इसकारण सामगानरूप स्तोत्रमें प्राणशक्तिकी क्रिया ही व्यक्त होती है ] ॥ ९ ॥

इति सप्तम खण्ड समाप्त

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति १

अन्वय और पदार्थ--(शालावत्यः) शलावतका पुत्र (शिलकः) शिलक ( दाल्भ्यः ) दल्भगोत्री (चैकितायनः) चैकितायन ( जैवलिः ) जीवलका पुत्र ( प्रवाहणः ) प्रवाहण ( इति ) इसप्रकार ( त्रयः ) तीन ( उद्गीथे ) उद्गीथमें ( कुशलाः ) प्रवीण ( बभूवुः, ह ) हुए (ते, ह ) वह ( उचुः ) बोले ( वै ) निश्चय ( उद्गीथे ) उद्गीथमें ( कुशलाः, स्मः ) प्रवीण हैं ( हन्त ) बूझते हैं कि-( उद्गीथे ) उद्गीथके

विषयमें ( कथाम् ) चर्चाको ( वदामः ) कहैं ( इति ) इस प्रकार ॥ १ ॥

( भावार्थ )--शलावतका पुत्र शिलक, दलभगोत्री चैकितायन और जीवलका पुत्र प्रवाहण यह तीनो उद्गीथ के विषयमें प्रवीण हुए, एक समय उन्होंने परस्पर विचार करतेहुए कहाकि--हम उद्गीथके विषय में प्रवीण होगए हैं अतः आपकी सम्मति हो तो इसविषयकी आलोचना करैं

**तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाच ७ श्रोष्यामीति ॥ २ ॥**

**अन्वय और पदार्थ**-( तथा--इति--ह ) ऐसा ही हो इसप्रकार कहकर ( समुपविविशुः ) बैठगए ( सः ) वह ( जैवलिः ) जीवलका पुत्र ( प्रवाहणः ) प्रवाहण ( उवाच, ह ) बोला ( भगवन्तौ ) आप दोनो ( अग्रे ) आगे ( वदताम् ) कहैं ( ब्राह्मणयोः ) ब्रह्मज्ञानियोंके (वदतोः) कहतेहुए ( श्रोष्यामि ) सुनूंगा ( इति ) इसप्रकार ॥ २ ॥

( भावार्थ )-ऐसा ही हो इसप्रकार कहकर वह सब बैठगए, तब जीवलकुमार प्रवाहणने कहाकि-आप दोनों पहिले कहैं मैं आप दोनो ब्रह्मज्ञानियों के आलापको सुनूंगा

**स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच हन्त त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच ॥ ३ ॥**

**अन्वय और पदार्थ**-( सः ) वह ( शालावत्यः ) शलावतका पुत्र ( शिलकः ) शिलक ( दाल्भ्यम् ) दलभगोत्री ( चैकितायनम् ) चैकितायनको ( उवाच ) बोला ( हन्त ) क्या ( त्वा ) तुमको ( पृच्छानि ) बूझूँ ( पृच्छ ) पूछ ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) बोला ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-फिर शलावतके पुत्र शिलकने दलभगोत्री चैकितायनसे कहा, कि-यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं प्रश्न करूँ ? चैकितायनके ऐसा कहने पर शिलक से कहाकि--प्रश्न करो ॥ ३ ॥

गतिराश्रय इशंकरः॥



का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच स्वरस्य का गतिरिति प्राण इति होवाच प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( साम्नः ) सामकी ( का ) क्या ( गतिः ) गति है ( इति ) इसप्रकार कहनेपर ( स्वरः ) स्वर है ( इति ) इसप्रकार ( उवाच ह ) बोला ( स्वरस्य ) स्वरकी ( का ) क्या ( गतिः ) गति है ( इति ) ऐसा कहनेपर ( प्राणः ) प्राण ( इति ) ऐसा ( उवाच--ह ) बोला ( प्राणस्य ) प्राणकी ( का ) क्या ( गतिः ) गति है ( इति ) ऐसा कहनेपर ( अन्नम् ) अन्न ( इति ) ऐसा ( उवाच--ह ) बोला ( अन्नस्य ) अन्नकी ( का, गतिः ) क्या गति है ( इति ) ऐसा कहनेपर ( आपः ) जल ( इति ) ऐसा ( उवाच--ह ) बोला ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—प्रश्न सामकी गति क्या है ? उत्तर-स्वर सामकी गति है, प्रश्न-स्वरकी गति क्या है ?, उत्तर-स्वर की गति प्राण है। प्रश्न--प्राणकी गति क्या है ?, उत्तर--अन्न प्राणकी गति है। प्रश्न-अन्नकी गति क्या है !, उत्तर-अन्नकी गति जल है ॥ ४ ॥ गतिराश्रय॥

वह स्वर्ग लोक

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच स्वर्गं वयं लोकꣳसामाभिसंस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳहि सामेति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अपाम् ) जलकी ( का, गतिः ) क्या गति है ( इति ) ऐसा कहनेपर ( असौ ) यह ( लोकः ) लोक ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) बोला ( अमुष्य ) उस ( लोकस्य ) लोक की ( का, गतिः ) क्या गति है ( इति ) ऐसा कहनेपर ( स्वर्गम् ) स्वर्ग

( लोकम् ) लोकको ( न ) नहीं ( अतिनयेत् ) अतिक्रमण करै (इति) एसा ( उवाच ह ) बोला ( वयम् ) हम ( साम ) सामको ( स्वर्गम् ) स्वर्ग ( लोकम् ) लोक ( अभिसंस्थापयामः ) निश्चय करतेहैं ( हि ) क्योंकि ( साम ) साम ( स्वर्गसंस्तावम् ) स्वर्गरूपसे स्तुति कियाजाता है ( इति ) इसप्रकार ॥ ५ ॥

( भावार्थ )--प्र०-जलकी क्या गति है ? उ०-यह लोक जलकी गति है। प्र०-उस लोककी गति क्या है ? उ०-साम स्वर्ग लोकको लांघकर नहीं लेजाता, अतएव हम साम को स्वर्गलोकप्रतिष्ठ मानते हैं अर्थात् साम मनुष्यको स्वर्गलोक पर्यन्त ही लेजाता है ऐसा हम जानते हैं क्योंकि सामकी स्तुति स्वर्गलोकरूपसे ही कीजाती है।

तꣳह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति ६

अन्वय और पदार्थ-( शालावत्यः ) शलावतका पुत्र ( शिलकः ) शिलक ( तम् ) उस ( दाल्भ्यम् ) दल्भगोत्री ( चैकितायनम् ) चैकितायनको ( उवाच-ह ) बोला ( दाल्भ्य ) हे दाल्भ्य ( वै, किल ) निश्चय ( ते ) तेरा ( साम ) साम ( अप्रतिष्ठितम् ) अप्रतिष्ठित है ( यः-तु ) जो ( एतर्हि ) इस समय ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( विपतिष्यति ) गिरजायगा ( इति ) ऐसा ( ब्रूयात् ) कहै ( ते ) तेरा (मूर्धा) मस्तक ( विपतेत् ) गिरजाय ( इति ) इसप्रकार ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-शलावतके पुत्र शिलकने दल्भगोत्री चैकितायनसे कहा, कि-हे दाल्भ्य ! तेरा साम अप्रतिष्ठित है, इस समय यादि कोई तुझसे कहै, कि-तेरा मस्तक गिरजायगा, तो तेरा मस्तक गिरजाय ॥ ६ ॥

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति हो-

वात्रामुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति हो-
वाचास्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोक-
मतिनयेदिति होवाच प्रतिष्ठां वयं लोकꣳ सामा-
भिसꣳस्थापयामः प्रतिष्ठासꣳस्तावꣳहि सामेति॥७॥

अन्वय और पदार्थ-( हन्त ) क्या ( अहम् ) हैं ( एतत् ) यह ( भगवतः ) आपसे ( वेदानि ) जानसकताहूँ ? ( इति ) ऐसा कहने पर ( विद्धि ) जान ( इति ) ऐसा ( उवाच-ह ) बोला ( अमुष्य ) उस ( लोकस्य ) लोककी ( का-गतिः ) क्या गति है (इति) ऐसा कहने पर ( अयम् ) यह ( लोकः ) लोक ( इति ) ऐसा ( उवाच-ह ) बोला ( अस्य ) इस ( लोकस्य ) लोककी ( का-गतिः ) क्या गति है ( इति ) ऐसा कहने पर ( प्रतिष्ठाम् ) प्रतिष्ठारूप ( लोकम् ) लोकको ( न ) नहीं ( अतिनयेत् ) अतिक्रमण करै (इति) ऐसा ( उवाच-ह ) बोला ( वयम् ) हम ( साम ) सामको ( प्रतिष्ठाम् ) प्रतिष्ठारूप ( लोकम् ) लोक ( अभिसंस्थापयामः ) निश्चय करते हैं ( हि ) क्योंकि ( साम ) साम ( प्रतिष्ठासंस्तावम् ) प्रतिष्ठारूप से स्तुति कियाजाताहै ( इति ) इसकारण ॥ ७ ॥

( भावार्थ )—उस समय दाल्भ्यने कहा, कि-मैं तुम से सामकी प्रतिष्ठा जानना चाहताहूँ, शालावत्यने कहा कि-जानलो। दाल्भ्यने प्रश्न किया कि--परलोककी क्या गति है? शालावत्यने कहा, कि--यह लोक, तब बूझा कि इस लोककी क्या गति है ? उत्तर मिला कि--प्रतिष्ठारूप लोकको लांघना ठीक नहीं है, हम सामको प्रतिष्ठारूप लोक जानतेहैं, क्योंकि--सामकी प्रतिष्ठारूपसे ही स्तुति कीजाती है ॥ ७॥

तꣳह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते
शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपति-

ष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-( जैवलिः ) जीवलका पुत्र ( प्रवाहणः ) प्रवाहण ( तम् ) उसको ( उवाच--ह ) बोला ( शालावत्य ) हे शालावत्य ( किल--वै ) निश्चय ( ते ) तेरा ( साम ) साम ( अन्तवत् ) अन्तवाला है ( यः--तु ) जो ( एतर्हि ) इससमय ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( विपतिष्यति ) गिरजायगा ( इति ) ऐसा ( ब्रूयात् ) कहै ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( विपतेत् ) गिरै ( इति ) इसप्रकार ( अहम् ) मैं ( एतत् ) यह ( भगवतः ) आपसे ( वेदानि ) जानू ( इति ) ऐसा कहने पर ( विद्धि ) जान ( इति ) ऐसा ( उवाच -ह ) बोला ॥ ८ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर जीवलतनय प्रवाहणने उन से कहा, कि-हे शालावत्य ! तुम्हारा साम निश्चय अन्त वाला है, इसकारण इस समय यदि कोई कहै कि तुम्हारा मस्तक गिरजायगा तो तुम्हारा मस्तक गिरजाय, इसपर शालावत्यने कहा कि-तो मैं यह विषय क्या आपसे जान सकता हूँ ! प्रवाहणने कहा कि--जानलो ॥ ८ ॥

इति प्रथम अध्याय का अष्टम खण्ड समाप्त

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अस्य ) इस ( लोकस्य ) लोककी ( का--गतिः ) क्या गति है ( इति ) ऐसा कहने पर ( आकाशः ) आकाश ( इति ) ऐसा (उवाच--ह) बोला (वै) निश्चय ( इमानि ) यह ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) भूत ( आकाशात्, एव ) आकाशसे ही ( समुत्पद्यन्ते, ह ) उत्पन्न होते हैं ( आकाशम्प्रति ) आकाशके प्रति

( अस्तम्, यंति ) लीन होते हैं ( हि ) निश्चय ( आकाशः, एव ) आकाश ही ( एभ्यः ) इनसे ( ज्यायान् ) श्रेष्ठ है ( आकाशः ) आकाश ( परायणम् ) परम आश्रय है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-प्रश्न-इस लोककी गति क्या है ?, उत्तर--आकाश । यह सकल भूत आकाशसे ही उत्पन्न होते हैं और आकाशमें ही लीन होते हैं, आकाश ही सकल भूतोंमें श्रेष्ठ है और आकाश ही सकल भूतोंका परम आश्रय है ॥ १ ॥

स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोनन्तः परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान्परोवरीयाꣳसमुद्गीथमुपास्ते ॥ २॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( एषः ) यह ( परोवरीयान् ) सबसे श्रेष्ठ ( उद्गीथः ) उद्गीथः है, ( सः ) वह ( एषः ) यह ( अनन्तः ) अनन्त है ( एवम् ) ऐसा ( विद्वान् ) जाननेवाला ( यः ) जो ( परोयरीयांसम् ) सबसे श्रेष्ठ ( उद्गीथम् ) उद्गीथको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अस्य ) इसका ( परोवरीयः ) परमश्रेष्ठ जीवन ( भवति, ह ) होता है ( परोवरीयसः ) आकाशपर्यन्त ( लोकान् ) लोकोंको ( जयति--ह ) जीतता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-आकाश ही सबसे श्रेष्ठ उद्गीथ है, यह अनन्त है, जो ऐसा जानकर इस सर्वश्रेष्ठ उद्गीथकी उपासना करतेहैं उनका जीवन श्रेष्ठसे श्रेष्ठ होताहै, वह आकाश पर्यन्त सकल श्रेष्ठ लोकोंको जीतते हैं ॥ २ ॥

तꣳहैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्यायोक्त्वोवाच यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो हैभ्यस्तावदस्मिंल्लोके जीवनं भविष्यति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तम् ) तिस ( एतम् ) इसको ( शौ-

नकः ) शुनकपुत्र ( अतिधन्वा ) अतिधन्वा ( उदरशाण्डिल्याय ) उदरशाण्डिल्यके अर्थ ( उक्त्वा ) कहकर ( उवाच-ह ) बोला ( ते ) तेरी ( प्रजायाम् ) प्रजामें ( यावत् ) जबतक ( एनम् ) इस ( उद्गीथम् ) उद्गीथको ( वेदिष्यन्ते ) जानेंगे ( तावत् ) तबतक ( अस्मिन् ) इस ( लोके ) लोकमें ( एभ्यः ) इनसे ( परोवरीयः ) परमोत्कृष्ट ( जीवनम् ) जीवन ( भविष्यति-ह ) होगा ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—इस उद्गीथके ज्ञानसे सम्पन्न शुकपुत्र अतिधन्वाने उदरशाण्डिल्यसे कहाथा कि-तुम्हारे वंशधरोंमें जो जबतक उद्गीथको जानेंगे, तबतक उनका जीवन साधारणजीवनसे परमोत्तम होगा ॥ ३ ॥

तथामुष्मिल्लोके लोक इति स य एतदेवं विद्वानुपास्ते परोवरीय एव हास्यास्मिल्लोके जीवनं भवति तथामुष्मिल्लोके लोक इति लोके लोक इति ४

अन्वय और पदार्थ-( तथा ) तैसे ही ( अमुष्मिन्, लोके ) परलोकमें ( लोकः ) श्रेष्ठलोकवाला होगा ( सः ) वह ( इति ) इस प्रकार ( एवम् ) ऐसा ( विद्वान् ) जाननेवाला ( यः ) जो ( एतत् ) इसको ( उपास्ते ) उपासना करताहै ( हि ) निश्चय ( अस्मिन् ) इस ( लोके ) लोकमें ( अस्य ) इसका ( परोवरीयः ) उत्तमोत्तम ( जीवनम् ) जीवन ( तथा ) तैसे ही ( अमुष्मिन्, लोके ) परलोकमें ( लोकः ) श्रेष्ठलोक ( भवति ) होताहै ( इति ) इसप्रकार ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—और परलोकमें परमोत्तम स्थान मिलेगा। इससमय भी जो ऐसा जानकर इस उद्गीथकी उपासना करते हैं, उनको इसलोकमें उत्तमोत्तम जीवन और परलोकमें परमोत्तम स्थानकी प्राप्ति होतीहै [ इस प्रकार अष्टम और नवमखण्डमें अन्यप्रकारसे यह बात दिखाई है कि--सामादि वैदिक स्तोत्र स्वरसे उच्चारण कियेजाते हैं, स्वर प्राणशक्तिकी ही क्रिया है, प्राणशक्ति

अन्नके आश्रयसे पुष्ट होतीहै, अन्न जलका ही विकार है, जलका आश्रय आकाश है वह आकाशब्रह्मसे उत्पन्न है इसप्रकार यज्ञमें ब्रह्मदर्शनका उपदेश किया है] ॥ ४॥

प्रथमाध्यायका नवम खण्ड समाप्त

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥ १॥

अन्वय और पदार्थ-( कुरुषु ) कुरुदेशोंमें ( मटचीहतेषु ) ओलोंसे अन्ननाश होनेपर ( चाक्रायणः ) चक्रकापुत्र ( उषस्तिः ) उषस्ति ( आटिक्या ) आटिकी ( जायया--सह ) स्त्री सहित ( प्रद्राणकः ) मरणासन्नदशाको प्राप्त ( इभ्यग्रामे ) हस्तिपकोंके ग्राममें ( उवास ) वसता हुआ ॥ १ ॥

( भावार्थ )—ओलोंकी वर्षासे अन्नका नाश होने पर कुरुदेशमें दुष्काल पडजानेके कारण चक्रके पुत्र उषस्तिने अपने देशको छोडकर अप्राप्तयौवना अपनी स्त्री आटिकीके साथ भ्रमण करते २ अन्न न पानेसे मरणापन्नपदशामें हस्तिपकों ( हाथीवानों ) के ग्राममें आकर आश्रय लिया ॥ १ ॥

सहेभ्यं कुल्माषान्खादन्तं विभिक्षे त ँ होवाच नेतोन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( कुल्माषान् ) गले हुए उडदों को ( खादन्तम् ) खातेहुए ( इभ्यम् ) हाथीमानको ( विभिक्षे, ह ) याचना करताहुआ ( तम् ) उसको ( उवाच--ह ) बोला ( इतः ) इनसे ( अन्ये ) और ( न ) नहीं ( विद्यन्ते ) हैं ( यत्--च ) जितने ( ये ) जो ( इमे ) यह ( मे ) मेरे पात्रमें ( उपनिहिताः ) पडे हैं ( इति ) इसप्रकार ॥ २ ॥

( भावार्थ )—उषस्तिने अपनी इच्छासे, सडेहुए उड़द्खाने वाले एक हाथीवान्के पास जाकर वह उडद

मांगे, उसको उडद मांगतेहुए देखकर उस हस्तिपकने कहा, कि-मैं जो खारहा हूँ, इन उच्छिष्ट उड़दोंके सिवाय और उडद मेरे पास नहीं हैं, मेरे पास जो कुछ थे वह इस पात्रमें ही हैं ॥ २ ॥

एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीत ऽस्यादिति होवाच ।३।

अन्वय और पदार्थ—( एतेषाम् ) इनमेंसे ( मे ) मुझे ( देहि ) दे ( इति ) ऐसा ( उवाच--ह ) बोला ( तान् ) उनको ( अस्मै ) इस के अर्थ ( प्रददौ ) देताहुआ ( हन्त ) क्या ( अनुपानम् ) पीछे से जल पियोगे ( इति ) ऐसा कहनेपर ( वै ) निश्चय ( मे ) मुझ करकै ( उच्छिष्टम् ) झूठा ( पीतम् ) पियाहुआ ( स्यात् ) होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच--ह ) बोला ॥ ३ ॥

( भावार्थ )--हस्तिपककी बात सुनकर उषस्तिने कहा कि-इनमें से कुछ मुझे दे, तब हस्तिपकने उनमें से ही कुछ थोडेसे उडद दिये और फिर कहा कि--लो खाकर कुछ जल भी पीलो तब उषस्तिने कहा कि--यह जल पीनेसे तो मुझे उच्छिष्ट पीनेका दोष लगैगा ॥ ३ ॥

न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामो म उदकपानमिति ॥४॥

अन्वय और पदार्थ--( स्वित ) क्या ( एते--अपि ) यह भी ( उच्छिष्टाः ) उच्छिष्ट ( न ) नहीं थे ( इति ) ऐसा कहने पर ( इमान् ) इनको ( अखादन् ) न खाताहुआ ( वै ) निश्चय ( न ) नहीं ( अजीविष्यम् ) जीता ( इति ) ऐसा ( उदकपानम् ) जलपान ( मे ) मेरा ( कामः ) इच्छापूर्वक होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच-ह ) बोला ॥४॥

( भावार्थ )-यह सुनकर हस्तिपकने कहा कि-आपने जो उड़द लियेथे, यह क्या उच्छिष्ट नहीं थे, उषस्तिने

उत्तर दिया कि-इन उड़दोंको नहीं खाता तो मेरे जीवनकी रक्षा नहीं होसकती थी, इसकारण ही मैंने यह खालिये, परन्तु पानी तो इससमय मेरी इच्छानुसार अन्यत्र भी मिलसकता है, इसकारण मैं उच्छिष्ट जल नहीं पीऊँगा ॥ ४ ॥

स ह खादित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार साग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( खादित्वा ) खाकर ( अतिशेषान् ) शेष रहोंको ( जायायै ) स्त्रीके अर्थ ( आजहार--ह ) देता हुआ ( सा ) वह ( अग्रे-एव ) पहिले ही ( सुभिक्षा ) भिक्षाको प्राप्त ( बभूव ) हुई ( तान् ) उनको ( प्रतिगृह्य ) लेकर ( निदधौ ) स्थापन करती हुई ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—ऐसा कहकर उषस्तिने हस्तिपकके झूटे उडद कुछ खाकर जो शेष रहे वह अपनी स्त्रीको अर्पण करे. आटिकी इससे पाहिले ही ऐसे कुछ उडद पाकर खाचुकी थी, इसकारण उषस्तिके दियेहुए यह उडद लेकर रखदिये ॥ ५ ॥

स ह प्रातः संजिहान उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्राꣳ राजासौ यक्ष्यते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( प्रातः ) प्रातःकालके समय ( संजिहानः ) शय्याको त्यागताहुआ ( उवाच-ह ) बोला ( अन्नस्य ) अन्नके ( यत्--वत ) कुछएक भागको ( लभेमहि ) पावैं ( धनमात्राम् ) धनकी मात्राको ( लभेमहि ) पावैं ( असौ ) यह (राजा) राजा ( यक्ष्यते ) यज्ञ करेगा ( सः ) वह ( माम् ) मुझको ( सर्वैः ) सब (आर्त्विज्यैः) ऋत्विजोंके साथ (वृणीत) वरण करलेय (इति) इसप्रकार ॥

( भावार्थ )—तदन्तर उषस्तिने प्रातःकालके समय शय्यासे उठकर कहा कि-कुछएक अन्न पाने पर उसको भोजन करकै राजाके यहां जाऊँ तो यथेष्ट धन लाऊं, यहाँ राजा यज्ञका आरम्भ करनेवाला है, वह और ऋत्विजोंके साथ मेरा भी वरण करलेगा ॥ ६ ॥

तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुल्माषा इति तान्खादित्वामुं यज्ञं विततमेयाय ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जाया) स्त्री ( तम् ) उसको ( उवाच ) बोली ( हन्त ) हां ( ये ) जो ( इमे ) यह (कुल्माषाः) सडेहुए उडद ( ते ) तुमने ( एव ) ही [ दत्ताः ] दियेथे ( इति ) इसप्रकार (तान्) इनको ( खादित्वा ) खाकर ( अमुम् ) इस ( विततम् ) फैलेहुए ( यज्ञम् ) यज्ञको ( एयाप ) गया ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-यह सुनकर उनकी स्त्री आटिकीने कहा कि--आपने कल मुझे जो उडद दियेथे वही यह रक्खे हैं उनको खालो, तब उषस्ति खाकर यज्ञमें गए ॥ ७ ॥

तत्रोद्गातॄनास्तावेस्तोष्यमाणानुपोपविवेश स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत्र ) तहाँ ( आस्तावे ) स्तुति करने के स्थलमें ( स्तोष्यमाणानाम् ) स्तुति करनेवाले ( उद्गातॄणाम् ) उद्गाताओंके ( उप )समीपमें ( उपविवेश ) बैठे (सः) वह ( स्तोतारम् ) स्तोताको ( उवाच-ह ) बोला ॥ ८ ॥

( भावार्थ )-वह यज्ञस्थलमें जाकर स्तुतिके स्थानमें स्तुति करनेवाले उद्गाताओंके समीपमें बैठे, तदनन्तर प्रस्तोता से कहा ॥ ८ ॥

प्रस्तोतर्यादेवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान् प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-( प्रस्तोतः ) हे प्रस्तोता ! ( या ) जो ( देवता ) देवता ( प्रस्तावम् ) प्रस्तावभागके ( अन्वायत्ता ) अनुगत है ( चेत् ) जो ( ताम् ) उसको ( अविद्वान् ) न जानताहुआ ( स्तोष्यसि ) स्तुति करेगा ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( विपतिष्यति ) गिरैगा ( इति ) इसप्रकार ॥ ९ ॥

( भावार्थ )-हे प्रस्तोता जो देवता स्तुतिभागके अनुगत रहता है उसको विन जाने उद्गान करेगा तो तेरा मस्तक गिरजायगा ॥ ९ ॥

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति १०

अन्वय और पदार्थ-( एवम्-एव ) ऐसे ही ( उद्गातारम् ) उद्गाता को ( उवाच ) बोला ( उद्गातः ) हे उद्गाता ( या ) जो ( देवता ) देवता ( उद्गीथम् ) उद्गीथके ( अन्वायत्ता ) अनुगत है ( चेत् ) जो ( ताम् ) उसको ( अविद्वान् ) न जानताहुआ ( उद्गास्यति ) उद्गान करैगा ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( विपतिष्यति ) गिरजायगा ( इति ) इसप्रकार ॥ १० ॥

( भावार्थ )-इसीप्रकार उद्गातासे कहा, कि-हे उद्गातः ! जो देवता उद्गीथभागके अनुगत है, यदि तुम उसको बिनाजाने उद्गान करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिरजायगा ॥ १० ॥

एवमेव प्रतिहर्त्तारमुवाच प्रतिहर्त्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ते ह समारतास्तूष्णीमासांचक्रिरे ११

अन्वय और पदार्थ-( एवम्-एव ) ऐसे ही ( प्रतिहर्त्तारम् ) प्रतिहर्त्ताको ( उवाच ) बोला ( प्रतिहर्त्तः ) हे प्रतिहर्त्ता ( या ) जो ( देवता ) देवता ( प्रतिहारम् ) प्रतिहारके ( अन्वायत्ता ) अनुगत

है ( चेत् ) जो ( ताम् ) उसको ( अविद्वान् ) न जानता हुआ ( प्रतिहरिष्यति ) प्रतिहार करैगा ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( विपतिष्यति ) गिरैगा ( इति ) इसप्रकार ( ते ) वह ( समारताः ) कर्म से उपरत ( तूष्णीम् ) मौन ( आसाञ्चक्रिरे ) होतेहुए ॥ ११ ॥

( भावार्थ )—ऐसे ही प्रतिहर्त्तासे भी कहा, कि--हे प्रतिहर्त्तः ! जो देवता प्रतिहारके अनुगत है, यदि तुम उसको बिनाजाने प्रतिहार करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिरजायगा, यह सुनकर स्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्त्ता अपने २ कर्मको छोडकर मस्तक गिरने के भयसे मौन होकर बैठरहे ॥ ११ ॥

इति प्रथम अध्याय का दशम खण्ड समाप्त

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति होवाच १

अन्वय और पदार्थ--( अथ ) अनन्तर ( यजमानः ) यजमान ( एनम् ) इसको ( उवाच–ह ) बोला ( वै ) निश्चय ( अहम् ) मैं ( भगवन्तम् ) आपको ( विविदिषाणि ) जानना चाहता हूँ ( इति ) इसप्रकार ( चाक्रायणः ) चक्रका पुत्र ( उषस्तिः ) उषस्ति ( अस्मि ) हूं ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) बोला ॥ १ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर यजमान राजाने कहा कि हे भगवन् ! मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ इस पर उषस्तिने कहा कि-मैं चक्रका पुत्र उषस्ति हूं ॥ १ ॥

स होवाच भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः पर्यैषिषं भगवतो वा अहमवित्त्यान्यानवृषि ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( उवाच--ह ) बोला ( अहम् ) मैं ( एभिः ) इन ( सर्वैः ) सब ( आर्त्विज्यैः ) ऋत्विजोंके साथ ( भगवन्तम् ) आपको ( वै ) निश्चय ( पर्यैषिषम् ) अन्वेषण करताहुआ ( भगवतः ) आपके ( अवित्त्या ) न मिलनेसे ( अन्यान्, वै ) औरों

को ही ( अवृषि ) वरण देताहुआ ॥ २ ॥

( भावार्थ )-राजाने कहाकि-मैंने इन याज्ञिकों के साथ आपका भी अन्वेषण किया था, परन्तु आपके न मिलनेसे अन्तमें उनका ही वरण करलिया है ॥ २ ॥

भगवाँस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्तावन्मम दद्या इति तथेति ह यजमान उवाच ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-( मे ) मेरे ( सर्वैः ) सब ( आर्त्विज्यैः ) ऋत्विजों के साथ ( भगवान्-तु-एव ) आप भी ( इति ) ऐसा कहनेपर ( तथा-इति ) तैसा ही होगा इसप्रकार कहा ( अथ ) अब ( तर्हि ) तो ( एते-एव ) यह ही ( समतिसृष्टाः ) आज्ञा दियेहुए ( स्तुवताम् ) स्तुति करैं ( तु ) परन्तु ( एभ्यः ) इनको ( यावत् ) जितना ( धनम् ) धन ( दद्याः ) दो ( तावत् ) उतना ही ( मम ) मुझको ( दद्याः ) दो ( इति ) ऐसा कहा ( यजमानः ) यजमान ( तथा--इति ) ऐसा ही होगा इसप्रकार ( उवाच-ह ) बोला ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-अब यदि भाग्यवश आप आगए हैं तो इनके साथ आप भी मेरे यज्ञमें ऋत्विक्कर्म कीजिये। उषस्तिने कहा, कि-बहुत अच्छा, परन्तु आप इन सब को जितना धन दें, उतना ही मुझे देना, मैं आज्ञा देता हूं, कि-आपके पहिलेसे वरण कियेहुए यह ऋत्विक् ही स्तुति आदि कर्म करैं राजाने कहा, कि-आपजैसी आज्ञा करगे वही होगा ॥ ३ ॥

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमासा देवतेति ४

**अन्वय और पदार्थ**-( अथ ) अनन्तर ( प्रस्तोता ) स्तुति कर्म करनेवाला ( एनम्--उपससाद, ह ) इनके समीप आया ( भगवान् ) आप ( मा ) मुझसे ( अवोचत् ) कहते थे ( प्रस्तोतः ) हे प्रस्तोता ( या ) जो ( देवता ) देवता ( प्रस्तावम् ) स्तावके ( अन्वायत्ता ) अनुगत है ( ताम् ) उसको ( चेत् ) जो ( अविद्वान् ) न जानताहुआ ( प्रस्तोष्यसि ) स्तुति करैगा ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( विपतिष्यति ) गिरैगा ( इति ) इसप्रकार ( सा ) वह ( देवता ) देवता (कतमा) कौनसा है ( इति ) इसप्रकार ॥ ४ ॥

**( भावार्थ )—तदनन्तर उद्गाताने विनीतभावसे उषस्तिके पास आकर कहा कि--हे भगवन् ! आपने जो मुझ से कहा था कि जो देवता प्रस्तावभागके अनुगत है तुम यदि उसको न जानकर स्तव करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिरजायगा, वह देवता कौनसा है ? मैं आपसे उसको जानना चाहता हूँ ॥ ४ ॥**

प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ५ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( प्राणः ) प्राण ( इति ) ऐसा ( उवाच--ह ) बोला ( सर्वाणि ) सब ( इमानि ) यह ( भूतानि ) प्राणी ( वै ) निश्चय ( प्राणम्—एव ) प्राणमें ही ( अभिसंविशन्ति ) प्रवेश करते हैं ( प्राणम्—अभ्युज्जिहते ) प्राणमें से ही निकलतेहैं ( सा ) वह ( एषा ) यह ( देवता ) देवता ( प्रस्तावम् ) प्रस्तावके ( अन्वायत्ता ) अनुगत है ( चेत ) जो ( ताम् ) उसको ( अविद्वान् ) न जानताहुआ ( प्रस्तोष्यः ) स्तुति करता ( मया ) मुझ करकै ( तथोक्तस्य) तैसे कहेहुए ( ते ) तेरा ( मूर्द्धा ) मस्तक ( व्यपतिष्यत् ) गिरपडता ५

( भावार्थ )--उषस्तिने कहा कि--प्राण ही देवता है यह सकल भूत प्रलयकालमें प्राणमें ही प्रवेश करते हैं और सृष्टिकालमें प्राणमें से ही प्रकट होते हैं, इसकारण वह प्राण ही प्रस्तावभागका अनुगत देवता है इस देवताको बिनाजाने यदि तू स्तुति करता तो मेरे कथनानुसार तेरा मस्तक गिरजाता ॥ ५ ॥

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते व्यपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति॥६॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( उद्गाता ) उद्गानकर्म का कर्ता ( एनम्--उप--ससाद--ह ) इसके समीप आकर बोला ( भगवान् ) आप ( मा ) मुझसे ( अवोचत् ) कहते थे, ( उद्गातः ) हे उद्गाता ( या ) जो ( देवता ) देवता ( उद्गीथम् ) उद्गीथके ( अन्वायत्ता ) अनुगत है ( चेत् ) जो ( ताम् ) उसको ( अविद्वान् ) न जानसाहुआ ( उद्गास्यति ) उद्गान करेगा ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( विपतिष्यति ) गिरेगा ( इति ) इसप्रकार ( सा ) वह (देवता) देवता ( कतमा ) कौनसा है ( इति ) यह प्रश्न किया ॥ ६ ॥

( भावार्थ )--तदनन्तर उद्गाताने विनीतभावसे उषस्ति के समीप जाकर कहा कि--हे भगवन् ! आपने मुझसे कहा था कि--जो देवता उद्गीथका अनुगामी है, तुम यदि उसको बिनाजाने उद्गानकर्म करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिरजायगा, सो वह देवता कौनसा है ? यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो मूर्धा ते व्यप-

तिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आदित्यः ) आदित्य ( इति ) ऐसा ( उवाच-ह ) बोला ( वै ) निश्चय ( इमानि ) यह ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) प्राणी ( उच्चैः, सन्तम् ) उदय होतेहुए ( आदित्यम् ) आदित्यको ( गायन्ति ) गाते हैं ( सा ) वह ( एषा ) यह ( देवता ) देवता ( उद्गीथम् ) उद्गीथके ( अन्वायत्ता ) अनुगत है ( चेत् ) जो ( ताम् ) उसको ( अविद्वान् ) न जानताहुआ ( उद्गास्यः ) उद्गान करता ( मया ) मुझ करकै ( तथोक्तस्य ) तैसे कहेहुए ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( व्यपतिष्यत् ) गिरजाता ( इति ) इसप्रकार ॥ ७ ॥

( भावार्थ )—उषस्तिने कहा कि--आदित्य ही वह देवता है, क्योंकि--यह सब प्राणी आदित्यके उदय होने पर ऊँचे स्वरसे गान करतेहैं, इसकारण आदित्य देवता ही उद्गीथका अनुगामी है, उस देवताको विनाजाने यदि तुम उद्गानकर्म करते तो मेरे कहने के अनुसार तुम्हारा मस्तक गिरपड़ता ॥ ७ ॥

अथ हैनं प्रतिहर्त्तोपससाद प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता ताञ्चेदविद्वान प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ--( अथ ) अनन्तर ( प्रतिहर्त्ता ) प्रतिहार कर्म करनेवाला ( एनम्--उप--ससाद, ह ) इसके समीप आकर बोला ( भगवान् ) आप ( मा ) मुझसे ( अवोचत ) कहतेथे ( प्रतिहर्त्तः ) हे प्रतिहर्त्ता ( या ) जो ( देवता ) देवता ( प्रतिहारम्--अन्वायत्ता ) प्रतिहारका अनुगामी है ( चेत ) जो ( ताम् ) उसको ( अविद्वान् ) न जानताहुआ ( प्रतिहरिष्यसि ) प्रतिहारकर्म करैगा ( ते ) तेरा ( मूर्धा, मस्तक ( विपतिष्यति ) गिरजायगा ( इति ) इसप्रकार ( सा ) वह ( देवता ) देवता ( कतमा ) कौनसा है ( इति ) ऐसा कहा ॥ ८ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर प्रतिहर्त्ताने विनीतभावसे उषस्तिके समीप जाकर कहा कि-हे भगवन् ! आपने कहा था कि-जो देवता प्रतिहारका अनुगामी है उसको विनाजाने प्रतिहारकर्म करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिरजायगा सो वह देवता कौन है? मैं आपसे उसको जानना चाहताहूं

अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति॥९॥

अन्वय और पदार्थ-( अन्नम् ) अन्न ( इति ) ऐसा ( उवाच ह ) बोला ( वै ) निश्चय ( इमानि ) यह ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) प्राणी ( अन्नम् ) अन्नको ( प्रतिहरमाणानि, एव ) ग्रहण करतेहुए ही ( जीवन्ति, ह ) जीते हैं ( सा ) वह ( एषा ) यह ( देवता ) देवता ( प्रतिहारम्-अन्वायत्ता ) प्रतिहारके अनुगत है ( चेत् ) जो ( ताम् ) उसको ( अविद्वान् ) न जानताहुआ ( प्रतिहरिष्यः ) प्रतिहारकर्म करता ( मया ) मुझ करकै ( तथोक्तस्य ) तैसे कहेहुए ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( व्यपतिष्यत् ) गिरजाता ॥ ९ ॥

( भावार्थ )-उषस्तिने कहा कि-वह देवता अन्न ही है, क्योंकि-यह सकल प्राणी अन्नको ग्रहण करकै ही जीवन धारण करते हैं, अतएव इस देवताको विनाजाने यदि तुम प्रतिहारकर्म करते तो मेरे कथनानुसार अवश्य ही तुम्हारा मस्तक गिरजाता [ इस दशम और एकादश खण्डका भाव यह है कि-प्राणशक्तिने ही पहिले सूर्यचन्द्रादिविशिष्ट होकर सौर जगत्को उत्पन्न किया है और प्राणशक्ति अन्नके ( जडांशके ) आश्रयसे सर्वत्र क्रिया करती है, यह प्राणशक्ति ही देहमें वाक्य

आदि इंद्रियोंकी शक्तिरूपसे क्रिया करती है, यज्ञोंके मंत्र आदि वाक्योंके द्वारा उच्चारण कियेजाते हैं, अतएव प्राणशक्ति हि यज्ञका उपास्य देवता है ] ॥ ९ ॥

इति प्रथम अध्याय का एकादश खण्ड समाप्त

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध वकोदाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( अतः ) यहांसे ( शौवः ) श्वान करकै देखाहुआ ( उद्गीथः ) उद्गीथ ( प्रस्तूयते ) प्रारंभ कियाजाताहै ( तत् ) तिससे ( ह ) निश्चय (दाल्भ्यः) दल्भकुमार ( मैत्रेयः ) मित्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ ( ग्लावः ) ग्लावनामक ( वकः ) वक ऋषि (स्वाध्यायम्) स्वाध्याय करनेको (उद्वव्राज) बाहर जाताहुआ १

( भावार्थ )-पहिले खण्डमें अन्नप्राप्तिकी अपेक्षा दिखाई अब श्वनामक ऋषि से दृष्ट उद्गीथकी प्रस्तावना कीजाती है। इस विषयमें एक आख्यायिका है, कि-मित्राके गर्भ से उत्पन्नहुए दल्भके पुत्र जिनको ग्लाव भी कहतेथे, वह वक ऋषि वेदका पारायण करनेको प्रतिदिन ग्राम से बाहर जाया करते थे ॥ १ ॥

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति २

अन्वय और पदार्थ-( तस्मै ) तिसके अर्थ ( श्वेतः ) श्वेत ( श्वा ) श्वा ( प्रादुर्बभूव ) प्रकटहुआ ( अन्ये ) और ( श्वानः ) श्वान ( तम् ) उसके ( उपसमेत्य ) समीप आकर ( ऊचुः ) बोले ( भगवान् ) आप ( नः ) हमारे अर्थ ( अन्नम् ) अन्नको ( आगायतु ) गाओ ( वै ) निश्चय ( अशनायामः ) भूखेहैं ( इति ) इसप्रकार २

( भावार्थ )-एक समय स्वाध्यायसे प्रसन्न हुए उद्गीथ देवता, वक ऋषि के ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त श्वेत कुक्कुरका रूप धारण करकै उनके सामने प्रकट

ऎथैवेद = ३६ = इसकर्ममें इति शंकर:॥



हुए, उससमय और कितनेही श्वान श्वेत श्वानके समीप आकर कहनेलगे, कि-हम भूखसे व्याकुल होरहे हैं, इस कारण आप आगानके द्वारा हमको अन्न प्राप्त कराओ २

तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध वको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयांचकार ३

अन्वय और पदार्थ-( तान् ) उनको ( उवाच-ह ) बोला ( प्रातः ) प्रातःकालमें ( इह-एव ) यहां ही ( मा ) मुझको ( उपसमीयात ) समीप आना ( इति ) इसप्रकार ( तत ) इसको ( दाल्भ्यः ) दल्भपुत्र ( वा ) और ( मैत्रेयः ) मित्राके गर्भ से उत्पन्न ( ग्लावः ) ग्लाव नामक (वकः) वक ( प्रतिपालयाञ्चकार-ह ) प्रतीक्षा करताहुआ ३

( भावार्थ )-उनकी इस बातको सुनकर श्वेत श्वान ने कहा कि-तुम कल प्रातःकाल यहां ही मेरे पास आना, वक यह सुन चित्तमें कुतूहल मान घर न जाकर तहां हीरहा और प्रातःकाल उनके आनेकी प्रतीक्षा करनेलगा ३

ते ह यथैवेदं वहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सꣳ रब्धाः सर्पन्तीत्येवमाससृपुस्ते ह समुपविश्य हिंचक्रुः।

अन्वय और पदार्थ-( स्तोष्यमाणाः ) अध्वर्यु आदि ( वहिष्पवमानेन ) बहिष्पवमानके द्वारा ( यथा-एव ) जैसे ( संरब्धाः ) संलग्न हुए ( सर्पन्ति ) परिभ्रमण करते हैं ( एवम्, इति ) इसीप्रकार ( ते ) वह ( इदम् ) पूंछको [ गृहीत्वा ] ग्रहण करके ( आससृपुः, ह ) परिभ्रमण करतेहुए ( ते ) वह ( समुपविश्य ) बैठकर ( हिञ्चक्रुः, ह ) हिंकार करते हुए ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-प्रातःकाल होने पर वह पहिले की समान प्रकट होकर अध्वर्युसे यजमानपर्यन्त यज्ञकर्त्ता, जैसे बहिष्पवमान नामक स्तोत्रका उच्चारण करते २ परस्पर मिलेहुए घूमते हैं, तैसे ही मुखसे परस्पर की पूंछ पकडकर

घूमने लगे, फिर बैठकर पञ्चमकण्डिकारूप हिंकारका ऊँचे स्वरसे गान करनेलगे ॥ ४ ॥

ओ३मदा३ मों३ पिबा३ मों३ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता२ऽन्नमिहा२हरदन्नपते३ऽन्नमिहा२हरा२ हरो३मिति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ॐअदामः ) हम खायंगे ( ॐपिबामः ) हम पियेंगे ( ॐदेवः ) देवता ( वरुणः ) वरुण ( प्रजापतिः ) प्रजापति ( सविता ) सविता ( इह ) यहां ( अन्नम् ) अन्नको ( आहरत ) आहरण करें ( अन्नपते ) हे अन्नपते ( इह ) यहां ( अन्नम् ) अन्नको ( आहर ) दो ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-वह गान यह है कि-हम भोजन करेंगे हम पान करेंगे, प्रजापति, वरुण और सविता यह हमें अन्न दें ५

प्रथमाध्यायका द्वादश खण्ड समाप्त

अयं वाव लोको हा उकारो वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा अथकारः आत्मेहकारोऽग्निरीकारः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अयम्, वाव ) यह ही ( लोकः ) लोक ( हा उकारः ) हा उकार है ( वायुः ) वायु ( हा इकारः ) हा इकार है ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा ( अथकारः ) अथकार है ( आत्मा ) आत्मा ( इहकारः ) इहकार है ( अग्निः ) अग्नि ( ईकारः ) ईकारहै ॥ १ ॥

( भावार्थ )—अब सामगान करने के स्तोभनामक अक्षरोंकी उपासना कहते हैं कि-इन अक्षरोंका अर्थ न होने पर भी गानका फल होताहै, यह लोक ही हाके आगे उच्चारण किया हुआ उकार है अतः उस उकारकी पृथ्वी दृष्टिसे उपासना करे, वायु हा के आगे उच्चारित ईकार है और चन्द्रमा अथ है, क्योंकि अन्नका आत्मा चन्द्रमा है और थकारका उच्चारण अन्नमें होताहै, 'इह' की आ-

त्मदृष्टिसे उपासना करै, क्योंकि -आत्माको प्रत्यक्षमें इह शब्दसे बोलते हैं,और ईकारमें अग्निदृष्टि करै, क्योंकि जिसमें ईकारका गान होताहै उसको आग्नेय साम कहतेहैं १

आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वेदेवाः औ हो यिकारः प्रजापतिर्हिंकारः प्राणः स्वरोऽन्नं या वाग्विराट् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आदित्यः ) आदित्य ( ऊकारः ) ऊकार ( निहवः ) निहव ( एकारः ) एकार ( विश्वेदेवाः ) विश्वेदेवा ( औ हो यिकारः ) औ हो यिकार ( प्रजापतिः ) प्रजापति ( हिंकारः ) हिंकार ( प्राणः ) प्राण ( स्वरः ) स्वर ( अन्नम् ) अन्न ( या ) या ( वाक् ) वाक् ( विराट् ) विराट् है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-ऊकारकी आदित्यदृष्टिसे, एकारकी निहव दृष्टिसे, औ हो यिकारकी विश्वेदेवारूपसे, हिंकारकी प्रजापतिदृष्टिसे, स्वरकी प्राणदृष्टिसे, याकी अन्नदृष्टिसे क्योंकि--मनुष्य अन्नसे ही या कहिये गमन करताहै और वाक्की विराट्दृष्टिसे उपासना करै ॥ २ ॥

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः संचरो हुंकारः ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-( अनिरुक्तः ) अनिर्वचनीय ( संचरः ) शाखाभेदसे भिन्न (हुंकारः) हुंकार (त्रयोदशः) तेरहवां (स्तोभः) स्तोभहै ३

( भावार्थ )-हुंकाररूप तेरहवें स्तोभाक्षरका स्वरूप कहा नहीं जासकता, क्योंकि-वह शाखाभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारका है, इसकारण उसका कोई स्वरूप कल्पना करके उपासना करै ॥ ३ ॥

दुग्धेस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोन्नवानन्नादो भवति य एतामेव ँ साम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एवम् ) इसप्रकार ( एताम् ) इस ( साम्नाम् ) सामोंके ( उपनिषदम् ) उपनिषद्को ( वेद ) जानता है ( अस्मै ) इसके अर्थ ( वाक् ) वाक् ( वाचः ) वाणीका ( यः ) जो ( दोहः ) फल है ( दोहम् ) उसफलको ( दुग्धे ) दुहदेती है ( अन्नवान् ) अन्नवाला ( अन्नादः ) अन्नभोक्ता ( भवति ) होताहै ४

( भावार्थ )-जो पुरुष सामके अवयवभूत स्तोभाक्षर विषयक दर्शनको जानता है उस साधकके लिये यह वाक् वाणीको देतीहै और वह पुरुष अन्नशाली तथा अन्नभोक्ता होताहै ॥ ४ ॥

प्रथमाध्यायका त्रयोदश खण्ड समाप्त

इति प्रथमाध्याय समाप्त

## अथ द्वितीयोऽध्यायः

समस्तस्य खलु साम्न उपासनꣳसाधु यत्खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( खलु ) निश्चय ( समस्तस्य ) समस्त ( साम्नः ) सामका ( उपासनम् ) उपासन ( साधु ) श्रेष्ठ है ( खलु ) निश्चय ( यत् ) जो ( साधु ) श्रेष्ठ है ( तत् ) उसको ( साम-इति ) साम इस नामसे ( आचक्षते ) कहतेहैं ( यत् ) जो ( असाधु ) अश्रेष्ठ है ( तत् ) वह ( असाम ) असाम है ( इति ) इसप्रकार ॥ १ ॥

( भावार्थ )-पहिले अध्यायमें सामके अवयवोंकी उपासना और उसका फल कहा, परन्तु सर्वावयवयुक्त सामकी उपासना श्रेष्ठ है, जो श्रेष्ठ है वह ही साम है और जो असाधुहै वह साम नहीं है ॥ १ ॥

तदुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैन-मुपागादित्येव तदाहुरसाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैन

मुपागादित्येव तदाहुः ॥ २ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( तत्-उत-अपि ) तिस विषयमें भी ( आहुः ) कहते हैं ( साम्ना ) सामकरकै ( एनम् ) इसको ( उपागात् ) अनुगत हुआ ( इति ) इसकारण ( साधुना ) साधुव्यवहारसे ( एनम् ) उसको ( उपागात् ) अनुगतहुआ ( इत्येव ) ऐसा ही ( तत् ) उसको ( आहुः ) कहते हैं ( असाम्ना ) असामके द्वारा ( एनम् ) इसको ( उपागात् ) अनुगत हुआ ( इति ) इसकारण ( असाधुना ) असाधुव्यवहारसे ( एनम् ) इसको ( उपागात् ) अनुगत हुआ ( इत्येव ) ऐसा ही ( तत ) उसको ( आहुः ) कहते हैं ॥२॥

**( भावार्थ )-इस साधु असाधुका विवेक कहते हैं कि-जब किसीको सामके द्वारा वशमें कियाजाता है तो साधुव्यवहारसे ही उसको वशमें कियाजाता है और जब किसीको असामके द्वारा वशमें कियाजाता है तब असाधुव्यवहारके द्वारा ही उसको वशमें कियाजाता है २**

अथोताप्याहुः साम नो वतेति यत्साधु भवति साधु वतेत्येव तदाहुरसाम नो वतेति यदसाधु भवत्यसाधुवतेत्येव तदाहुः ॥ ३ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( अथ, उत, अपि ) और यह भी ( आहुः ) कहते हैं ( नः ) हमारा ( यत् ) जो ( साम, वत ) साम है ( साधु ) साधु ( भवति ) होताहै ( तत् ) उसको ( साधु, वत ) साधु है ( इतिएव ) ऐसा ही ( आहुः ) कहते हैं ( यत् ) जो ( नः ) हमारा ( असाम ) असाम है ( असाधु वत ) असाधु ( भवति ) होताहै ( तत ) उसको ( असाधु-वत ) असाधु है ( इति-एव ) ऐसा ही ( आहुः ) कहतेहैं ३

**( भावार्थ )—और इस विषयमें यह अनुभव भी है, कि--जब किसी उत्तम पुरुषको देखते हैं, तो 'साधु' ऐसा ही कहते हैं और जब किसी दुष्टको देखते हैं तो 'असाधु' कहते हैं, इसकारण सामकी साधुदृष्टि उपासना करे३**

स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳसाधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एतत् ) यह ( साम ) साम ( साधु ) श्रेष्ठ है ( इति-एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जानता-हुआ ( उपास्ते ) उपासना करताहै ( सः ) वह ( अभ्याशः ) शीघ्र सिद्धमनोरथ होताहै ( यत् ) क्योंकि ( एनम् ) इसको ( साधवः ) साधु ( धर्माः ) धर्म ( आगच्छेयुः ) समीप आवैं ( च ) और ( उप-नमेयुः, च ) नमैं भी ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जो इस सामको साधुगुणयुक्त जानकर उपासना करता है, श्रुति स्मृतिके अनुकूल सकल धर्म शीघ्र ही उसका आश्रय करते हैं और उसके समीप भोग्यरूपसे उपस्थित रहते हैं ॥ ४ ॥

द्वितीयाध्यायका प्रथम खण्ड समाप्त

लोकेषु पंचविधꣳसामोपासीत पृथिवी हिंकारः अग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ऊर्ध्वेषु ) ऊपर २के(लोकेषु) लोकोंमें ( पञ्चविधम् ) पांच प्रकारके ( साम ) सामको ( उपासीत ) उपासना करै ( पृथिवी ) भूमि ( हिंकारः ) हिंकार है ( अग्निः ) अग्नि ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव है ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष (उद्गीथः) उद्गीथ है (आदित्यः) आदित्य ( प्रतिहारः ) प्रतिहार है ( द्यौः ) द्यौ (निधनम्) निधन है ( इति ) ऐसा ॥ १ ॥

( भावार्थ )—पृथिवी आदि लोकोंमें पांचप्रकारसे विभक्त समस्त सामकी उपासना करै, पृथिवी हिंकार, अग्नि प्रस्ताव, अन्तरिक्ष उद्गीथ, आदित्य प्रतिहार और द्यौः निधन है, यह ही लोकोंमें ऊपर २को सामदृष्टिका नियमहै १

अथावृत्तेषु द्यौर्हिङ्कार आदित्यः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( आवृत्तेषु ) नीचेके पक्षोंमें ( द्यौः ) द्युलोक ( हिङ्कारः ) हिङ्कार ( आदित्यः ) आदित्य ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष ( उद्गीथम् ) उद्गीथ ( अग्निः ) अग्नि ( प्रतिहारः ) प्रतिहार ( पृथिवी ) पृथिवी ( निधनम् ) निधन ॥ २ ॥

( भावार्थ )-संसारमें दो प्रकारके लोक हैं। किन्हीको नीचेके लोकोंसे ऊपरके लोकोंमें जानापड़ता है और कोई ऊपरके लोकोंसे नीचेके लोकोंमें आतेहैं। नीचेसे ऊपरके लोकोंमें जानेवालोंके निमित्त पृथिव्यादि दृष्टिसे सामोपासनाकी रीति पिछले मंत्रमें कही अब ऊपरसे नीचेके लोकोंमें आनेवालोंकी उपासनाका प्रकार कहते हैं, कि—जो उच्चपद स्वर्गादिसे नीचे आता है वह पहिले द्युलोकमें आता है, साममें भी पहिले हिंकारका उच्चारण है, इसकारण द्युलोक दृष्टिसे हिंकारकी उपासना करे, सूर्योदय होनेपर कर्मोंका प्रस्ताव ( आरंभ ) होताहै, इसकारण आदित्य दृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करे। अन्तरिक्ष नाम गगनका है, गकारमात्रके सादृश्य से अन्तरिक्ष दृष्टि करके उद्गीथकी उपासना करे अग्निको प्राणी ही इधर उधर लेजाते हैं अतः अग्निदृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करे, ऊपरके लोकोंसे आये हुए पृथिवी पर आकर रहते हैं, इसकारण पृथिवी दृष्टिसे निधनकी उपासना करे ॥ २ ॥

कल्पन्तेहाऽस्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च, य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ ३ ॥

उद्गृह्णाति तन्निधनं वर्षति वर्षयति ह्यस्मै वर्षयाति ह य एतदेवं विद्वान् वृष्टौ पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ २ ॥ *



**अन्वय और पदार्थ**—( यः ) जो ( एतत ) इसको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जाननेवाला ( लोकेषु ) लोकोंमें ( पञ्चविधम् ) पांच प्रकारके ( साम ) सामको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अस्मै ह ) उसके अर्थ ( ऊर्ध्वाः ) ऊपरके ( च ) और ( आवृत्ताः च ) नीचेके भी ( लोकाः ) लोक ( कल्पन्ते ) फल देनेमें समर्थ होते हैं ॥

**( भावार्थ ) जो ऐसा जाननेवाला साधक पृथिवी आदि लोकोंकी दृष्टिसे पांच प्रकारके सामकी उपासना करते हैं उनको ऊपर और नीचेके आवागमनवाले स्वर्गादि और भूमि आदि लोकोंमें तहाँ के भोग भोगने को मिलते हैं ॥ ३ ॥**

द्वितीय अध्यायका द्वितीय खण्ड समाप्त.

## वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपासीत, पुरोवातो हिङ्कारो, मेघो जायते, स प्रस्तावो, वर्षति स उद्गीथो, विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ॥ १ ॥ *

**अन्वय और पदार्थ**—( वृष्टौ ) वर्षामें ( पञ्चविधम् ) पांच प्रकार के ( साम ) सामको ( उपासीत ) उपासना करे ( पुरोवातः ) पूर्वका पवन ( हिंकारः ) हिङ्कार ( मेघः ) मेघ ( जायते ) होता है ( सः ) वह ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव है ( वर्षति ) वरसता है ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( विद्योतते ) विजली चमकती है ( स्तनयाति ) गरजता है ( सः ) वह ( प्रतिहारः ) प्रतिहार है ॥ उद्गृह्णाति ) ऊपरको ग्रहण करता है ( तत ) वह निधनम् ) निधन है ( यः ) जो ( एतत ) इसको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जाननेवाला ( वृष्टौ ) वर्षामें ( पञ्चविधम् ) पांच प्रकारके ( साम ) सामको ) उपास्ते ) उपासना करता है ( अस्मै ह ) इसके अर्थ ( वर्षयति, ह ) वर्षा कराता है

**( भावार्थ )—यह संसार वर्षाके कारण ही स्थित है अतः वृष्टिमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करे। वर्षा**

होनेके समय पहिले पवन चलता है और साममें भी पहिले हिङ्कार है इसकारण पूर्वकी वायुदृष्टिसे हिङ्कार की उपासना करे, मेघकी दृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करे, क्योंकि—वर्षाकालमें मेघाडंबर होने पर ही वर्षा का आरंभ होता है, वर्षा श्रेष्ठ है अतः वर्षा दृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे, विजली और गर्जना प्रतिहत ( एकस्थानमें न रहनेवाले ) हैं अतः प्रतिशब्दकी समनतासे विजली और गर्जनेकी दृष्टि करके प्रतिहारकी उपासना करे, निधनपर्यन्त ही साम है और उपसंहार ( थमजाने ) पर्यन्त ही वर्षा है, जो इसको इस प्रकार जानकर सामकी उपासना करता है, वह अवर्षण होने पर भी वर्षा करसकता है ॥ १ ॥ २ ॥

इति द्वितीय अध्यायका तृतीय खण्ड समाप्त

सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपासीत, मेघो यत्संप्लवते स हिङ्कारो, यद्वर्षति स प्रस्तावो, याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथो, याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः, समुद्रो निधनम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सर्वासु ) सब ( अप्सु ) जलोंमें ( पञ्चविधम् ) पांच प्रकारके ( साम ) सामको ( उपासीत ) उपासना करे ( मेघः ) मेघ ( यत् ) जो ( संप्लवते ) घना होता है ( सः ) वह ( हिङ्कारः ) हिंकार है ( यत् ) जो ( वर्षति ) बरसता है ( सः ) वह ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव है ( याः ) जो ( प्राच्यः ) पूर्वदेशकी नदियें ( स्पन्दन्ते ) वहती हैं ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( याः ) जो ( प्रतीच्यः ) पश्चिमकी नदियें ( स्पन्दन्ते ) वहती हैं ( सः ) वह ( प्रतिहारः )प्रतिहार है ( समुद्रः ) समुद्र ( निधनम् ) निधन है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-वर्षाके अनंतर जल होता है, इसकारण

वर्षाके अनंतर जलोंमें सामोपासना कहते हैं, कि-मेघ घटाकी दृष्टिसे हिंकारकी वर्षणदृष्टिसे प्रस्तावकी पूर्व-देशकी गङ्गादि नदियोंकी दृष्टिसे उद्गीथकी पश्चिमदेश की नर्मदादि नदियोंकी दृष्टिसे प्रतिहारकी और जल मात्र समुद्रमें लीन होते हैं, अतः समुद्रकी दृष्टिसे नि-धनकी उपासना करै ॥ १ ॥

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान् भवति, य एतदेवं विद्वान् सर्वास्वप्सु पञ्चविध ँ सामोपास्ते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( एतत ) इसको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जाननेवाला ( सर्वासु ) सब ( अप्सु ) जलोंमें ( पञ्चविधम् ) पांच प्रकारके ( साम ) सामको ( उपास्ते ) उपासना करताहै ( अप्सु ) जलोंमें ( न ह ) नहीं ( प्रैति ) मरता है ( अप्सु-मान् ) जलशायी ( भवति ) होताहै ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो उपरोक्त मंत्रके भावको जानकर जलमात्रमें पांचप्रकारकी उपासना करता है, जलतत्त्व उसके वशमें होजाताहै, वह न चाहै तो जलोंमें नहीं मरता और यदि चाहै तो मरुदेशमें भी जलमें शयन करसकता है

द्वितीय अध्यायका चतुर्थ खण्ड समाप्त

ऋतुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत, वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो, वर्षा उद्गीथः, शरत्प्रतिहारो, हेमन्तो निधनम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( ऋतुषु ) ऋतुओंमें ( पञ्चविधम् ) पांच प्रकारके ( साम ) सामको ( उपासीत ) उपासना करै ( वसन्तः ) वसन्त ( हिङ्कारः ) हिङ्कार ( ग्रीष्मः ) ग्रीष्म ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( वर्षा ) वर्षा ( उद्गीथः ) उद्गीथ ( शरत ) शरद् ( प्रतिहारः ) प्रतिहार ( हेमन्तः ) हेमन्त ( निधनम् ) निधन है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-वर्षा आदि होनेसे ऋतुओंकी व्यवस्था होतीहै अतः ऋतुओंमें पांचप्रकारके सामकी उपासना करे, सब ऋतुओंमें पहिला होनेसे वसन्त हिंकार ग्रीष्म में धान्यसंग्रहका प्रस्ताव होताहै अतः ग्रीष्म, प्रस्ताव, वर्षा उद्गीथ, शरद्में रोगियोंका प्रतिहरण होनेसे शरद् प्रतिहार और हेमन्तमें प्राणियोंको मरणसमान कष्ट होता है अतः हेमन्त निधन है इस दृष्टिसे उपासना करे ॥१॥

कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान् भवति य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एतत) इसको (एवम्) इस प्रकार(विद्वान्) जाननेवाला (ऋतुषु) ऋतुओंमें(पंचविधम्) पांचप्रकारके (साम) सामको (उपास्ते) उपासना करताहै (अस्मै) इसके अर्थ (ऋतवः) ऋतु (कल्पन्ते) फल दायक होते हैं (ऋतुमान्) ऋतु-वाला (भवति) होताहै ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो ऐसा जानकर ऋतुओंमें पांचप्रकार के सामकी उपासना करता है ऋतुओंके सकल भोगों को भोगता है मानो ऋतुओंका अधिपति बनजाता है १

द्वितीय अध्यायका पञ्चम खण्ड समाप्त

पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीताजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम्॥ भवन्ति हास्य पशवः पशुमान् भवति य एतदेवं विद्वान् पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पशुषु) पशुओंमें (पञ्चविधम्) पांचप्रकारके (साम) सामको (उपासीत) उपासना करे (अजाः) बकरी (हिंकारः) हिंकार (अवयः) मेंढ़े (प्रस्तावः) प्रस्ताव (गावः) गौएं (उद्गीथः) उद्गीथ (अश्वाः) घोड़े (प्रतिहारः) प्रतिहार

(पुरुषः) पुरुष ( निधनम् ) निधन है ( यः ) जो ( एतत् ) इसको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जाननेवाला ( पशुषु ) पशुओं में ( पञ्चविधम् ) पांच प्रकारके ( साम ) सामको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अस्य ) इसके पशवः ) पशु ( भवन्ति ह ) होते हैं ( पशुमान् ) पशुओं-वाला ( भवति ) होता है ॥ १ ॥ २ ॥

( भावार्थ )—ऋतुओंमें उत्पन्न हुई संपत्ति पशुओं के उपयोगी होती है अतः साममें ऋतुदृष्टिके अनंतर पशुदृष्टि करे, अजाको पशुओंमें पहिला कहा है अतः अजाकी दृष्टिसे हिंकारकी, अजाकी साथी होनेसे भेड़ की दृष्टिसे प्रस्तावकी, पशुओंमें श्रेष्ठ होनेके कारण गौ दृष्टिसे उद्गीथ की, अश्व प्रतिहरण ( पहुँचानेका काम ) करता है अतः अश्वदृष्टिसे प्रतिहारकी और पशु पुरुषके आश्रयसे रहता है अतः पुरुष दृष्टिसे निधनकी उपासना करे, जो इस तत्त्वको इस प्रकार जान कर पशुदृष्टिसे सामोपासना करता है उसके यहां पशुओंकी वृद्धि होती है और पशुओंके सुख तथा दान-रूप फलसे युक्त होता है ॥ १ ॥ २ ॥

द्वितीय अध्यायका षष्ठ खण्ड समाप्त

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिंकारो वाक् प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं परोवरीयाꣳसि वा एतानि ॥ १ ॥

परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसोहलोकान् जयति य एतदेवं विद्वान्प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्त इति तु पञ्चविधस्य ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( प्राणेषु ) प्राणोंमें ( परोवरीयः ) उत्त-

रोत्तर श्रेष्ठ ( पञ्चविधम् ) पांचप्रकारके ( साम ) सामको ( उपासीत ) उपासना करे, ( प्राणाः ) प्राण ( हिंकारः ) हिंकार ( वाक् ) वाणी ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( चक्षुः ) चक्षु ( उद्गीथः ) उद्गीथ ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र ( प्रतिहारः ) प्रतिहार ( मनः ) मन ( निधनम् ) निधन है ( वा ) या ( एतानि ) यह ( परोवरीयांसि ) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, ( यः ) जो ( एतत ) इसको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जाननेवाला ( प्राणेषु ) प्राणोंमें ( पञ्चविधम ) पांचप्रकारका ( परोवरीयः ) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ ( साम ) सामको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अस्य ) इसका ( परोवरीयः ) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ ( भवति ह ) होताहै ( परोवरीयसः ) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ ( लोकान् ) लोकोंको ( जयति ह ) जीतता है ( इति तु ) यह तो ( पञ्चविधस्य ) पांचप्रकारके की है ॥ १ ॥ २ ॥

(भावार्थ) पशुओंके दुग्ध घृतादिसे प्राणोंको पुष्टि मिलती है अतः पशुदृष्टिके अनंतर प्राणदृष्टिकी उपासना कहते हैं कि प्राणोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ पांचप्रकारके सामकी उपासना करे सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण मुख्य प्राणसे उत्तम कोई भी नहीं है, अतः घ्राणमेंके प्राणकी दृष्टिसे हिंकारकी उपासना करे, घ्राणमेंका प्राण केवल प्राप्त गंध आदिको ही प्रकाशित करता है और वाणी अप्राप्तका भी उच्चारण करती है, उस वाक्से सबसे सबका प्रस्ताव होता है, अतः वाक्दृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करे, वाणीकी अपेक्षा अधिक विषयोंका प्रकाश करनेसे चक्षु उत्तम है अतः चक्षुगत प्राणदृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे, चक्षु सामनेकी वस्तुका ही प्रत्यक्ष करता है और श्रोत्रसे दूर के शब्दका भी प्रत्यक्ष होता है अतः उत्तम श्रोत्रकी दृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करे, सब इन्द्रियोंके विषय मनमें स्थित होते हैं, मन सब इन्द्रियोंके विषयोंमें व्यापक है, इंद्रियोंके अगोचर विषयका भी मनसे प्रत्यक्ष होता

है, अतः श्रोत्रसे उत्तमकी मनकी दृष्टिसे निधनकी उपासना करे, यह प्राणादि उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, जो इनके इस तत्त्वको इसप्रकार जानकर प्राणोंमें सामकी उपासना करता उसका जीवन सबसे उत्तम होताहै और उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोकोंको जीतता है यहांतक पांचप्रकारके साम की उपासना कही ॥ १ ॥ २ ॥

(हिंकारो॥)

सप्तम खण्ड समाप्त

अथ सप्तविधस्य । वाचि सप्तविधꣳसामोपासीत यत्किञ्च वाचो हुमिति स हिंकारो यत्प्रेति स प्रस्तावो यदेति स आदिर्यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ॥१॥

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतदेवं विद्वान् वाचि सप्तविधꣳसामोपास्ते

**अन्वय और पदार्थ**—( अथ ) अब ( सप्तविधस्य ) सातप्रकारके की [ उपासना-उच्यते ] उपासना कहीजाती है ( वाचि ) वाणीमें ( सप्तविधम् ) सात प्रकारके ( साम ) सामको ( उपासीत ) उपासना करे ( यत्किञ्च) जो कुछ ( वाचः ) वाणीका ( हुम् इति ) हुंकार ऐसा उच्चारण है (सः ) वह ( हिंकारः ) हिंकार है ( यत ) जो ( प्र इति ) प्र ऐसा हैं ( सः ) वह ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव है ( यत ) जो (आ इति ) आ ऐसा है ( सः ) वह (आदिः ) आदि है ( यत ) जो ( उत (इति ) उत् ऐसा है (सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( यत ) जो ( प्रति-इति ) प्रति ऐसा है ( सः ) वह ( प्रतिहारः ) प्रतिहार है ( यत ) जो ( उप-इति ) एसा है ( सः ) वह ( उपद्रवः ) उपद्रव है ( यत् ) जो ( नि-इति ) नि ऐसा है [ तत् ] वह [ निधनम् ] निधन है । [ यः ] जो [ एतत् ] इसको [ एवम् ] इसप्रकार [ विद्वान् ]

जाननेवाला ( वाचि ) वाणीमें ( सप्तविधम् ) सात प्रकारके ( साम ) सामको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( यः ) जो ( वाचः ) वाणी का ( दोहः ) फल है ( दोहम् ) उस फलको ( वाक् ) वाणी ( अस्मै ) इसके अर्थ ( दुग्धे ) दुहदेती है ॥ १ ॥ २ ॥

( भावार्थ )-अब सात प्रकारके सामकी उपासना कहते हैं-शब्दमें सात प्रकारके सामकी उपासना करै। हुम् शब्द हिङ्कार 'प्र, शब्द प्रस्ताव, 'आ, शब्द आदि, 'उत्, शब्द उद्गीथ, प्रति शब्द प्रतिहार, 'उप, शब्द उपद्रव और नि शब्द निधन है। जो ऐसा जानकर शब्दमें सात प्रकारके सामकी उपासना करतेहैं, वाणी उनके निमित्त ऋग्वेदादिके अनुष्ठानसे जो फल होता है उसको दुहकर देती है, वह अन्नशाली और अन्नका भोक्ता होता है ॥ १ ॥ २ ॥

द्वितीय अध्यायमें अष्टम खण्ड समाप्त

**अथ खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपासीत सर्वदा समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम॥ १ ॥ तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानि विद्यात् ॥ २ ॥**

**अन्वय और पदार्थ**—( अथ ) अनन्तर ( खलु ) निश्चय ( असुम् ) इस ( आदित्यम् ) आदित्यको ( सप्तविधम् ) सात प्रकारके ( साम ) सामको ( उपासीत ) उपासना करै ( सर्वदा ) सदा ( समः ) सम है ( तेन ) तिससे ( साम ) साम है ( मां प्रति ) मेरे प्रति है ( मां प्रति ) मेरे प्रति हैं ( इति ) इसप्रकार ( सर्वेण ) सब करके ( समः ) सम हैं ( तेन ) तिससे ( साम ) साम है। ( इमानि ) इन ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) प्राणियोंको ( तस्मिन् ) तिसमें ( अन्व यत्तानि ) अनुगत ( विद्यात् ) जानै ॥ १ ॥ २ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर आदित्यके अवयवोंका सात प्रकारके सामके अवयवोंमें अध्यास करके आदित्यदृष्टि से सब सामकी उपासना करै, आदित्यका क्षय और वृद्धि नहीं होते अतः सर्वदा सम होनेके कारण आदित्यको साम कहते हैं। आदित्य मेरे सन्मुख है, मेरे सन्मुखहै, इसप्रकार सबकी समान बुद्धिको उत्पन्न करता है, इसकारण सबके निमित्त सम होनेसे साम है। यह समस्त प्राणी उस आदित्यकेद्वारा ही अपने जीवन को धारण करते हैं अतः उसके अनुगत रहते हैं ऐसा जानो ॥ १ ॥ २ ॥

**तस्ययत्पुरोदयात्स हिङ्कारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिंकुर्वन्ति हिङ्कारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः**

**अन्वय और पदार्थ**—( तस्य ) उसका ( यत ) जो ( उदयात ) उदयसे ( पुरा ) पहिला रूप है ( सः ) वह ( हिङ्कारः ) हिङ्कार है ( पशवः ) पशु ( अस्य ) इस आदित्यके ( तत ) उसरूप के ( अन्वायत्ताः ) अनुगत हैं ( तस्मात ) तिससे ( एतस्य ) इस (साम्नः) आदित्य नामक सामके ( हिङ्कारभाजिनः ) हिङ्कारका आश्रय करतेहुए ( हिंकुर्वन्ति हि ) हिन् शब्द करते हैं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-सूर्योदयसे पहिले प्रकाश होनेका समय धर्मकार्य करनेका है और वह धर्मरूप होनेसे प्राणिमात्र को सुख देता है उस समयको हिङ्कार मानकर उपासना करे, उस भक्तिरूप हिङ्कार सामका आश्रय करके पशु सूर्योदयके पूर्वकालसे अपना उपजीवन करते हैं इसी से वह हिन् हिन् शब्द करते हैं, मानो वह आदित्य सामकी हिङ्कार नामक भक्ति करते हैं ॥ ३ ॥

**अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या**

अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रशंसा-
कामाः प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( प्रथमोदिते ) प्रथम उदय होनेपर ( यत् ) जो रूप होताहै ( सः ) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव है ( मनुष्याः ) मनुष्य ( अस्य ) इस आदित्यके ( तत् ) तिसरूपके ( अन्वायत्ताः ) अनुगत हैं ( तस्मात् ) तिससे ( ते ) वह ( प्रस्तुति-कामाः ) परमस्तुति चाहते हैं ( हि ) क्योंकि ( एतस्य ) इस (साम्नः) सामके ( प्रस्तावभाजिनः ) प्रस्तावका आश्रय करते हैं इसकारण ( प्रशंसा कामाः ) परोक्षस्तुतिको चाहते हैं ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—उदय होते ही सूर्यका जो रूप होताहै वह आदित्य रूप सामका प्रस्ताव है अर्थात् सूर्योदयके समयकी दृष्टिसे प्रस्तावभक्तिकी उपासना करै, मनुष्य सूर्यके इसी रूपके अनुगत रहते हैं, इसकारण ही परोक्षमें और प्रत्यक्षमें प्रशंसाकी कामना करतेहैं तथा सूर्य की उस समय प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

अथ यत्सङ्गववेलायाꣳ स आदिस्तदस्य वयांस्य-
न्वायत्तानि तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्भणान्यादा-
यात्मानं परिपतन्त्यादिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ५

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अनन्तर ( सङ्गववेलायाम् ) पूर्वाह्णके समय ( यत् ) जो रूप है ( सः ) वह ( आदिः ) आदि है ( अस्य ) इस सूर्यके ( तत् ) तिसरूपको ( वयांसि) पक्षी ( अन्वायत्तानि ) अनुगत हैं ( तस्मात् ) तिससे ( तानि ) वह ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष में ( अनारम्भणानि ) आलम्बरहित ( आत्मानम् ) अपनेको ( आदाय ) लेकर ( परिपतन्ति ) उड़ते हैं ( हि ) क्योंकि ( एतस्य ) इस ( साम्नः ) सामके ( आदिभाजीनि ) आदिभागका आश्रय करेहुए हैं ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—जिस समय सूर्यकी किरणोंका जगन्म-

ण्डलसे और गौका बछड़ेसे संबन्ध होताहै वह पूर्वाह्ण-रूप सूर्यका आदिभक्ति ॐकारस्वरूप है, उस सूर्य के रूपसे पक्षी अपना उपजीवन करते हैं, इसीसे वह अंतरिक्षमें आलम्बनके विना ही अपने शरीरमात्रसे लेकर उड़ते हैं, पक्षी यह आदित्यके आदिभागका आश्रय करते हैं, इसीसे इसप्रकार गमन करते हैं ॥ ५ ॥

अथ यत्सम्प्रति मध्यन्दिने स उद्गीथस्तदस्य देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्या-नामुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( सम्प्रतिमध्यन्दिने ) सरल मध्यान्हमें ( अस्य ) इसका ( यत् ) जो रूप है ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( तत् ) उसको ( देवाः ) देवता ( अन्वायत्ताः ) अनुगत हैं ( तस्मात ) तिससे ( ते ) वह ( प्राजापत्यानाम् ) प्रजापतिकी सन्तानोंमें (सत्तमाः) परमश्रेष्ठ हैं ( हि ) क्योंकि ( एतस्य) इस ( साम्नः ) सामके ( उद्गीथभाजिनः ) उद्गीथके आश्रित हैं ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—ठीक मध्यान्हके समय सूर्यका जो रूप दीखता है, उसकी दृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करै, उस उद्गीथभक्ति रूप आदित्यके रूपका देवता आश्रय लेते हैं, इसीसे देवता प्रजापतिकी सन्तानोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, उन देवताओंने आदित्यसामके उद्गीथभागका आश्रय किया है, इसीसे श्रेष्ठ हुए हैं, ॥ ६ ॥

अथयदूर्ध्वं मध्यन्दिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहारस्त-दस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नाव-पद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अनन्तर ( मध्यन्दिनात ) मध्यान्हसे ( ऊर्ध्वम् ) आगे ( अपराह्णात् ) अपराह्णसे ( प्राक् ) पहिले

( अस्य ) इसका ( यत ) जो रूप है ( सः ) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है ( तत ) उसको ( गर्भाः ) गर्भ (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं ( हि ) क्योंकि ( एतस्य ) इस ( साम्नः ) सामके ( प्रतिहृताः ) प्रतिहारभक्तिका आश्रय करते हैं ( तस्मात् ) तिससे ( ते ) वह गर्भ ( प्रतिहृताः ) ऊपरको खिचेहुए ( न ) नहीं ( अवपद्यन्ते ) नीचे गिरते हैं ॥ ७ ॥

**( भावार्थ )-फिर मध्यान्हके अनन्तर और अपराह्ण से पहिले जो सूर्यका रूप होता है उसकी प्रतिहार दृष्टि से उपासना करै, उससे उदरमें स्थित गर्भके प्राणियोंका जीवन धारण होता है वह गर्भ आदित्यरूप सामके प्रतिहार भागका आश्रय लेतेहैं इसीसे ऊपरको खिचेहुए रहते हैं, और द्वारमें होकर नीचे नहीं गिरते हैं ॥ ७ ॥**

**अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्यारण्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षꣳ श्वभ्रमित्युपद्रवंत्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥८॥**

**अन्वय और पदार्थ**-( अथ ) अनन्तर ( अपराह्णात् ) अपराह्णसे ( ऊर्ध्वम् ) आगे ( अस्तमयात् ) अस्त होनेसे ( प्राक् ) पहिले ( अस्य ) इसका ( यत् ) जो रूप है ( सः ) वह ( उपद्रवः ) उपद्रव है ( तत ) उसको ( आरण्याः ) वनके पशु ( अन्वायत्ताः ) अनुगत हैं ( हि ) क्योंकि ( एतस्य ) इस ( साम्नः ) सामके ( उपद्रवभाजिनः ) उपद्रवभक्तिका आश्रय करते हैं ( तस्मात् ) तिससे ( ते ) वह ( पुरुषम् ) पुरुषको ( दृष्ट्वा ) देखकर ( कक्षम् ) झाड़ीमें ( इति ) ईसीप्रकार ( श्वभ्रम् ) गुहामें ( उपद्रवन्ति ) भागकर जाते हैं ॥ ८ ॥

**( भावार्थ )-अपराह्णके अनन्तर और अस्त होनेसे पहिले आदित्यका जो रूप दीखता है, उसकी उपद्रवदृष्टिसे उपासना करै, उससे वनके पशु अपना जीवन धारण करते हैं, क्योंकि आदित्य सामकी उपद्रवभक्ति**

अरण्य (जंगल)

का आश्रय करते हैं, इसीसे वह पशु जंगलमें मनुष्यादि को देखकर डरकर भागते हैं और झाड़ीमें तथा गढे गुहा आदिमें जाकर छुपजाते हैं ॥ ८ ॥

अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं तदस्य पितरोऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्न एवं खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( प्रथमास्तमिते ) प्रथम अस्तकालमें ( यत् ) जो रूप होताहै ( तत् ) वह ( निधनम् ) निधन है ( अस्य ) इसके ( तत् ) उस रूपको ( पितरः ) पितर ( अन्वायत्ताः ) अनुगत हैं ( हि ) क्योंकि ( एतस्य ) इस ( साम्नः ) सामके ( निधनभाजिनः ) निधन भक्तिका आश्रय करते हैं ( तस्मात् ) तिससे ( तान् ) उनको ( निदधति ) स्थापन करते हैं ( एवम् ) इसप्रकार ( खलु ) निश्चय ( अमुम् ) इस ( आदित्यम् ) आदित्यको ( सप्तविधम् ) सात प्रकारके ( साम ) साम को ( उपास्ते ) उपासना करता है ॥ ९ ॥

( भावार्थ )—जिससमय सूर्य प्रथम ही अस्त होता है, सूर्यके उस प्रथमास्त समयको निधनदृष्टिसे उपासना करे इस रूपसे पितर अपना उपजीवन करते हैं, क्योंकि पितर आदित्य रूप सामकी निधनभक्तिका आश्रय रखते हैं, इस कारण उनको पिता पितामह आदिके रूपसे कुशोंपर स्थापन कियाजाताहै और उनके निमित्त कुशाओं पर पिण्ड निक्षेप कियाजाता है। इसप्रकार इस आदित्यकी सातप्रकारके सामरूपसे उपासना करनेवाला अभिलषित योग्य फलको पाता है ॥ ९ ॥

इति द्वितीयाध्यायका नवम खण्ड समाप्त

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳसामो-

पासीत । हिङ्कार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अनन्तर ( खलु ) निश्चय ( आत्मसंमितम् ) आत्माकी तुल्य ( अतिमृत्यु ) मृत्युको लांघनके साधन ( सप्तविधम् ) सातप्रकारके ( साम ) सामको ( उपासीत ) उपासना करे ( हिङ्कार इति ) हिंकार यह ( त्र्यक्षरम् ) तीन अक्षरका है ( प्रस्ताव इति ) प्रस्ताव यह ( तत्समम् ) उसके समान ( त्र्यक्षरम् ) तीन अक्षरका है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—आदित्य सामकी उपासनाके अनन्तर जो कि—निःसन्देह परमात्माकी समान मोक्षका कारण है और जो मृत्युके पार होनेका साधन है उस सातप्रकारके सामकी उपासना करे तिसकी रीति कहते हैं, कि--हिंकार यह तीन अक्षरका प्रथम भक्तिका नाम है और प्रस्ताव भी तीन अक्षरका उसकी समान ही दूसरी भक्तिका नाम है ॥ १ ॥

आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आदिः इति ) आदि यह ( द्व्यक्षरम्) दो अक्षरका है ( प्रतिहार इति ) प्रतिहार यह ( चतुरक्षरम् ) चार अक्षरका है ( ततः ) तिसमेंसे ( इह ) यहां ( एकम् ) एकको [ अपच्छिद्य ] लेकर ( तत्समम् ) तिसकी समान होताहै ॥ २ ॥

( भावार्थ )-आदि यह दो अक्षरका नाम है, प्रतिहार, यह चार अक्षरका नाम है, अतः प्रतिहार के चार अक्षरोंमें से एक अक्षरको लेकर आदिके दो अक्षरोंमें मिलादेनेसे यह दोनो हिंकार के समान होजाते हैं ॥ २॥

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः

समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ ३ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( उद्गीथ इति ) उद्गीथ यह ( त्र्यक्षरम् ) तीन अक्षर का नाम है ( उपद्रव इति ) उपद्रव यह ( चतुरक्षरम् ) चार अक्षरका नाम है ( त्रिभिः त्रिभिः ) तीन २ करके ( समम् ) समान ( भवति ) होताहै ( अक्षरम् ) एक अक्षर ( अवशिष्यते ) बचताहै ( त्र्यक्षरम् सत ) तीन अक्षरका होताहुआ ( तत्समम् ) उस के समान होताहै ॥ ३ ॥

**( भावार्थ )**—उद्गीथ तीन अक्षरका नाम है और उपद्रव चार अक्षरका नाम है, तीन २ अक्षर लेनेसे यह दोनो समान होते हैं, परन्तु चार अक्षर वाले शब्दमें का एक अक्षर शेष रहता है, उस एकको भी तीन मान लेना चाहिये इसकारण वह एक भी पहिले तीनकी समान है ॥ ३ ॥

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति ।
तानि ह वा एतानि द्वाविंशतिरक्षाणि ॥ ४ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( निधनं, इति ) निधन यह ( त्र्यक्षरम् ) तीन अक्षरका नाम ( तत्समं, एव ) पूर्वके समान ही ( भवति ) होता है ( तानि ) वह ( ह ) स्पष्ट ( वै ) निश्चय ( एतानि ) यह ( द्वाविंशतिः ) बाईस ( अक्षराणि ) अक्षर हैं ॥ ४ ॥

**( भावार्थ )**-निधन यह तीन अक्षरका नाम भी पूर्व के समान ही है अर्थात् जैसे आदित्यमें तीन अक्ष हैं तैसे ही इन सबोंमें भी तीन २ अक्षर होनेसे समानता है, इसकारण इन सबकी आदित्य दृष्टिसे उपासना करे, इसप्रकार यह सब मिलकर बाईस अक्षर होते हैं

एकविꣳशत्यादित्यमाप्नोत्येकविंशो वा इतोऽसावादित्यो द्वाविंशेन परमादित्याज्जयति तन्नाकं तद्विशोकम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( एकविंशत्या ) इक्कीस अक्षरोंकी उपासना करके ( आदित्यम् ) आदित्यको ( आप्नोति ) प्राप्त होताहै ( असौ ) यह आदित्यः ) आदित्य ( इति ) इस लोकसे ( वै ) निश्चय (एकविंशः ) इक्कीसवां है ( द्वाविंशेन ) बाईसवें अक्षरकी उपासनाके द्वारा ( आदित्यात् ) आदित्यसे ( परम् ) आगेके लोकको (जयति ) जीतता है ( तत् ) वह ( नाकम् ) सुखमय है ( विशोकम् ) मानसिक दुःख रहित है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—जो इक्कीस अक्षरवाले सामकी आदित्य दृष्टिसे उपासना करता है, वह आदित्यरूप मृत्युको प्राप्त होताहै, क्योंकि—आदित्य इस लोकसे इक्कीसवां है, जैसा कि अन्यत्र श्रुतिमें कहा है--"बारह मास पांचऋतु, तीन लोक हैं और इक्कीसवां यह आदित्य है"। बाईसवें अक्षरकी उपासनासे मृत्युरूप आदित्यसे आगेके स्थानको जीतता है, वह स्थान सुखमय है और तहां कोई मानसिक दुःख नहीं होताहै ॥ ५ ॥

**आप्नोतीहादित्यस्य जयं परो हास्यादित्यजयाज्जयो भवति, य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳसामोपास्ते सप्तविधꣳसामोपास्ते ॥६॥**

अन्वय और पदार्थ—( एतत् ) इसको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जाननेवाला (यः) जो ( आत्मसंमितम् ) आत्मतुल्य ( अतिमृत्यु ) मृत्युको अतिक्रमण करनेके साधन ( सप्तविधम् ) सातप्रकारके ( साम ) सामको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( इह ) इस लोकमें ( आदित्यस्य ) आदित्यके ( जयम् ) जयको ( आप्नोति ) प्राप्त होता है ( अस्य ) इसका (आदित्यजयात् ) आदित्यके जयसे ( परः ) अगला ( जयः ) जय ( भवति ) होताहै ॥ ६ ॥

( भावार्थ )--इस तत्त्वको जाननेवाला जो उपासक

आत्मतुल्य और मृत्युके पार होनेके साधन सातप्रकार के सामकी उपासना करता है वह इकीस संख्याके द्वारा आदित्यको जीतता है और बाईसवीं संख्यासे इस ज्ञानी की मृत्युगोचर आदित्यसे अगले लोक पर विजय होती है

इति द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः

**मनो हिङ्कारो वाक् प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् १**

**अन्वय और पदार्थ**--( मनः ) मन ( हिङ्कारः ) हिङ्कार है ( वाक् ) वाणी ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव है ( चक्षुः ) चक्षु ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र ( प्रतिहारः ) प्रतिहार है ( प्राणः ) प्राण ( निधनम् ) निधन है ( एतत् ) यह ( गायत्रम् ) गायत्रसाम ( प्राणेषु ) प्राणोंमें ( प्रोतम् ) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

**( भावार्थ )**--मन हिंकार, वाणी प्रस्ताव, चक्षु उद्गीथ श्रोत्र प्रतिहार और प्राण निधन है, यह गायत्र साम प्राणोंमें स्थित है ॥ १ ॥

**स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या महामनाः स्यात्तद्व्रतम् ॥ २ ॥**

**अन्वय और पदार्थ**—( यः ) जो ( एतत् ) इस ( गायत्रम् ) गायत्रको ( एवम् ) इसप्रकार ( प्राणेषु ) प्राणोंमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( प्राणी ) इन्द्रियोंकी अविकलतावाला ( भवति ) होताहै ( सर्वम् ) पूर्ण ( आयुः ) आयुको ( एति ) पाता है ( ज्योक् ) निर्मल ( जीवति ) जीता है ( प्रजया ) सन्तान करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्ति करके ( महान् ) बड़ा ( भवति ) होताहै ( महामनाः ) उदारचित्त ( स्यात् ) हो ( तत् ) सो ( व्रतम् ) व्रत है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—जो इस गायत्र सामको इस रीतिसे प्राणोमें पुराहुआ मानकर उपासना करताहै उस उपासककी इन्द्रियोंकी शक्ति सदा पूर्ण रहती है, पूरी सौ वर्षकी आयु पाताहै, अपना और दूसरोंका उपकार करनेवाला जीवन पाता है, सन्तान, पशु और कीर्त्तिसे उन्नति पाता है सदा उदारचित्त रहना चाहिये, यही गायत्र सामके उपासकका व्रत है ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य एकादशः खण्डः

अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनꣳ सꣳशाम्यति तन्निधनमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अभिमन्थति) मथता है (सः) वह (हिंकारः) हिंकार है (धूमः) धूम (जायते) होताहै (सः) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव है ) ज्वलति) प्रज्वलित होताहै (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ हैं (अङ्गाराः) अँगारे (भवन्ति) होते हैं (सः) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है (उपशाम्यति) कुछ बुझताहै (तत्) वह (निधनम्) निधन है (संशाम्यति) सर्वथा बुझताहै (तत्) वह (निधनम्) निधन है (एतत्) यह (रथन्तरम्) रथन्तर (अग्नौ) अग्निमें (प्रोतम्) पुराहुआ है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-जब अग्निको दो अरणियोंमें से निकालते हैं तब अरणी मथीजाती हैं, वह मथना हिंकार है, अतः मथन दृष्टिसे हिंकारकी उपासना करै, फिर धूम निकलता है अतः धूमदृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करै, फिर जलते हुए अग्निमें हवि डालतेहैं अतः हविसंबंधी ज्वालादृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करै, अङ्गारदृष्टिसे प्रतिहार

की उपासना करै, अग्निका अल्पतेज होना संशम और सर्वथा बुझजाना उपशम कहाता है उसकी दृष्टिसे निधनकी उपासना करै, मथनसे अग्नि उत्पन्न होनेके समय रथन्तर सामको गाते हैं, अतः रथन्तर साम अग्निमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्ङग्निमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

**अन्वय और पदार्थ**-( यः ) जो (एतत् ) इस ( रथन्तरं ) रथन्तर सामको ( एवम् ) इसप्रकार ( अग्नौ ) अग्निमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ (वेद) जानता है ( ब्रह्मवर्चसी ) ब्रह्मतेजसे युक्त ( अन्नादः ) दीप्त अग्निवाला ( भवति ) होता है (सर्वम्) पूर्ण ( आयुः ) आयुको ( एति ) प्राप्त होताहै ( ज्योक् ) उज्वल ( जीवति ) जीताहै ( प्रजया ) सन्तान करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा ( भवति ) होताहै ( प्रत्यङ्ङग्निम् ) अग्निके सामने ( न ) नहीं ( आचामत् ) आचमन करै ( न ) नहीं ( निष्ठीवेत् ) थूकै ( तत् ) वह ( व्रतम् ) व्रत है ॥ २ ॥ खाती कुछ भी भक्षण न करे॥

( भावार्थ )-जो इस रथन्तर सामको इसप्रकार अग्निमें पुराहुआ जानकर उपासना करता है वह उपासक ब्रह्मतेजस्वी और दीप्ताग्नि होता है, पूरी सौ वर्षकी आयु पाता है, अपना और दूसरोंका उपकार करने योग्य निर्मल जीवन पाता है, उसकी सन्तान गौ आदि पशु और कीर्त्तिकी वृद्धि होती है उसको अपना यह नियम रखना चाहिये, कि-न कभी अग्निके सामने कुल्ला करै और न कभी अग्निमें थूक आदि उच्छिष्ट डालै ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः

उपमन्त्रयते स हिङ्कारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रतिस्त्रिया सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् १

स्त्री सह॥ शंकरः॥

अन्वय और पदार्थ—( उपमन्त्रयते ) स्त्रीके साथ सङ्केत करता है ( सः ) वह ( हिङ्कारः ) हिंकार है ( ज्ञपयते ) सन्तुष्ट करता है ( सः ) वह ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव है ( स्त्रिया सह ) स्त्रीके साथ ( शेते ) सोता है ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( स्त्रियासह ) स्त्रीके साथ ( प्रतिशेते ) अभिमुख होकर सोता है ( सः ) वह ( प्रतिहारः ) प्रतिहार है ( कालम् ) समय ( गच्छति ) जाताहै ( तत् ) वह ( निधनम् ) निधन है ( पारम् ) समाप्तिको ( गच्छति ) प्राप्त होताहै ( तत् ) वह ( निधनम् ) निधन है ( एतत् ) यह ( वामदेव्यम् ) वामदेव्य साम ( मिथुने ) मिथुनमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-ऊपर और नीचेकी अरणीरूप ग्राम्य कर्म में प्रवृत्त स्त्री पुरुषोंका कर्म मन्थनके समान होता, अतः मन्थनदृष्टिसे सामकी उपासना कहकर अब मैथुनदृष्टिसे सामकी उपासनाका प्रकार कहते हैं-जब पुरुष किसी स्त्री के साथ समागम करना चाहता है तो पहिले संकेत करता है, अतः संकेत दृष्टिसे हिङ्कारकी उपासना करे, फिर स्त्रीको वस्त्रादि देकर प्रसन्न करता है, अतः प्रसन्नतादृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करे, स्त्रीके साथ एक खट्वापर गमन कियाजाताहै, उस गमनकीदृष्टिसे उद्गीथ की उपासना करे, स्त्री प्रसन्नतासे पुरुषके सन्मुख होती है उस दृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करे, समयबिताने और मिथुनसमाप्ति होने की दृष्टिसे निधनकी उपासना करे, यह वामदेव्यसाम मिथुन में स्थित है॥१॥

स य एतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनो भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( एतत् ) इस ( वामदेव्यम् ) वामदेव्य सामको ( मिथुने ) मिथुनमें ( एवम् ) इसप्रकार (प्रोतम् ) पुराहुआ ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( मिथुनी भवति ) सस्त्रीक रहताहै ( मिथुनात्-मिथुनात् ) प्रत्येक मिथुनसे ( प्रजायते ) सन्तान उत्पन्न होतीहैं ( सर्वम् ) पूर्ण (आयुः) आयुको ( एति ) प्राप्त होताहै ( ज्योक् ) निर्मल ( जीवति ) जीताहै ( प्रजया ) सन्तान करकै ( पशुभिः ) पशुओं करकै ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्ति करकै ( महान् ) बड़ा ( भवति ) होताहै ( काञ्चन ) किसी समय प्राप्तहुई को भी ( न ) नहीं ( परिहरेत् ) त्यागै ( तत् ) सो (व्रतम्) व्रत है २

( भावार्थ )-जो साधक इस वामदेव्य सामको इसप्रकार मिथुनमें सन्निविष्ट जानकर उपासना करता है, उसको कभी स्त्रीका वियोग नहीं होता, उसका वीर्य कभी निष्फल नहीं जाता, वह जब समागम करता है तब ही सन्तान होती है, पूर्णायु होताहै, उज्ज्वल जीवन धारण करता है, उसकी सन्तान पशु और कीर्त्ति बढ़ती है, उसकी अपनी धर्मपत्नी जिससमय भी समागमके निमित्त आवै उसको कभी निषेध न करै, यही उसका व्रत है, यह नियम केवल उपासनाकाल पर्यन्तका है सर्वदा को नहीं है ॥ २ ॥

द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः

उद्यन् हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम्

अन्वय और पदार्थ-( उद्यन् ) उदय होताहुआ ( हिंकारः ) हिंकार ( उदितः ) उदय हुआ ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( मध्यन्दिनः ) मध्यान्ह ( उद्गीथः ) उद्गीथ ( अपराह्णः ) अपराह्ण ( प्रतिहारः ) प्रतिहार ( अस्तं यन् ) अस्त होताहुआ ( निधनम् ) निधन ( एतत् ) यह ( बृहत् ) बृहत् साम ( आदित्ये ) आदित्यमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ है १

(भावार्थ)-पहिले सूर्य उदित होता है, अतः उदय होते हुए सूर्यकी दृष्टिसे हिंकारकी उपासना करै, सूर्योदय होने पर कर्मोंका प्रस्ताव [ आरम्भ ] होता है, इसकारण उदय होजाने पर सूर्यकी प्रस्तावदृष्टिसे उपासना करै, मध्यान्हदृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करै सायंकालको लौटकर घरमें आते हैं इसकारण अपराह्णदृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करै और सूर्यास्तदृष्टिसे निधनकी उपासना करै, क्योंकि-रात्रिमें सब प्राणी घरमें रहते हैं, बृहत्सामका सूर्य देवता है, इसकारण यह बृहत्साम आदित्यमें स्थित है॥१॥

**स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम्**

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एतत् ) इस ( बृहत् ) बृहत् सामको ( एवम् ) इसप्रकार ( आदित्ये ) आदित्यमें ( प्रोतम् ) पुरा हुआ ( वेद ) जानता है ( तेजस्वी ) कान्तिमान् ( अन्नादः ) दीप्ताग्नि ( भवति ) होता है ( सर्वम् ) पूर्ण ( आयुः ) आयुको ( एति ) प्राप्त होता है ( ज्योक् ) निर्मल ( जीवति ) जीता है ( प्रजया ) सन्तान करकै ( पशुभिः ) पशुओं करकै ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्ति करकै ( महान् ) बड़ा ( भवति ) होताहै ( तपन्तम् ) तपतेहुएको ( न ) नहीं ( निन्देत् ) निन्दा करै ( तत् ) सो ( व्रतम् ) व्रत है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—जो पुरुष इस बृहत्सामको इसप्रकार आदित्य में स्थित जानकर उपासना करता है वह तेज-

धनीभाव होना॥



स्वी, दीप्ताग्नि, पूर्णायु और उज्ज्वल जीवनवाला होता है सन्तान, पशु और कीर्त्तिके द्वारा उसकी वृद्धि होती है, वह तपते हुए सूर्यकी निन्दा न करे यही उसका व्रत है

द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः

अभ्राणि सम्प्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अभ्राणि ) जल भरनेवाले मेघ ( संप्लवन्ते ) विचरते हैं (सः) वह ( हिंकारः ) हिंकार (मेघः) मेघ (जायते) होता है ( सः ) वह ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( वर्षति ) बरसता है ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ ( विद्योतते ) बिजली चमकती है (स्तनयति) गर्जता है (सः ) वह ( प्रतिहारः ) प्रतिहार है (उद्गृह्णाति) हटता है ( तत् ) वह ( निधनम् ) निधन है ( एतत् ) यह ( वैरूपम् ) वैरूप साम ( पर्जन्ये ) पर्जन्यमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-मेघोंका जल ग्रहण कियेहुए बिचरना हिंकार, मेघोंका घिरजाना प्रस्ताव, बरसना उद्गीथ, बिजली चमकना और गरजना प्रतिहार और फिर मेघों का सिमट कर चलेजाना निधन है, इस दृष्टिसे उपासना करे, इसप्रकार वैरूप साम मेघमें सन्निविष्ट है १

स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपांश्च सरूपांश्च पशूनवरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एतत् ) इस ( वैरूपम् ) वैरूप सामको ( एवम् ) इसप्रकार ( पर्जन्ये ) मेघमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ

( वेद ) जानता है ( विरूपान् ) विरूप ( च ) और ( सुरूपान् ) सुरूप ( च ) भी ( पशून् ) पशुओंको ( अवरुन्धे ) पाता है ( सर्वम् ) पूर्ण ( आयुः ) आयुको ( एति ) प्राप्त होता है ( ज्योक् ) उज्ज्वल ( जीवति ) जीता है ( प्रजया ) प्रजा करके ( पशुभिः ) पशुओंसे ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्तिसे ( महान् ) बड़ा ( भवति ) होता है ( वर्षन्तम् ) वर्षतेहुएको ( न ) नहीं ( निन्देत ) निन्दा करै ( एतत् ) यह ( व्रतम् ) व्रत है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो इसप्रकार वैरूप] सामको पर्जन्यमें स्थित मानकर उपासना करता है वह विरूप और सुरूप पशुओंको पाता है, पूर्ण आयु पाता है, निर्मलताके साथ जीता है, पूजासे पशुओंसे और कीर्त्तिसे बड़ा होता है, वर्षतेहुए मेघकी निन्दा न करै, यही उसका व्रत है ॥२॥

द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः

वसन्तो हिङ्कारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् १

अन्वय और पदार्थ-( वसन्तः ) वसन्त ( हिङ्कारः ) हिङ्कार ( ग्रीष्मः ) ग्रीष्म ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( वर्षा ) वर्षा ( उद्गीथः ) उद्गीथ ( शरत् ) शरद् ( प्रतिहारः ) प्रतिहार ( हेमन्तः ) हेमन्त ( निधनम् ) निधन है ( एतत् ) यह ( वैराजम् ) वैराज ( ऋतुषु ) ऋतुओंमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-वसन्त ऋतु मानो हिङ्कार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, वर्षा उद्गीथ है, शरद् प्रतिहार है और हेमन्त निधन है, यह वैराज साम ऋतुओंमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेवतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महाद् कीर्त्यर्तून् न निन्देत्तद् व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एवम् ) इस प्रकार ( वैराजम् ) वैराजको ( ऋतुषु ) ऋतुओंमें ( प्रोतम् ) पुरा हुआ वेद ) जानता है ( सः ) वह ( प्रजया ) प्रजा करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( ब्रह्मवर्चसेन ) ब्रह्मतेज करके ( विराजति ) शोभायमान होता है ( सर्वम् ) सकल ( आयुः ) आयु को ( एति ) प्राप्त होता है ( ज्योक् ) उज्ज्वलतासे ( जीवति ) जीवित रहता है ( प्रजया ) करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्ति करके ( महान् ) बडा ( भवति ) होता है ( ऋतून् ) ऋतुओंको ( न ) नहीं ( निन्देत् ) निन्दा करै ( तत् ) सो ( व्रतम् ) व्रत है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो इसप्रकार इस वैराज सामको ऋतुओंमें स्थित जानकर इसकी उपासना करता है वह पुत्र पौत्र आदि सन्तान अनेकों प्रकारके पशु और स्वाध्याय आदिसे उत्पन्न हुए ब्रह्मतेजसे इसप्रकार शोभा पाता है, जैसे ऋतुएं अपने २ धर्मोंसे शोभापाती हैं, पूरी आयु पाता है, उसका जीवन उज्ज्वल होता है, वह प्रजा, पशु और कीर्त्तिके कारण बड़ाई पाता है, ऋतुओंकी निन्दा न करै, यही उसका व्रत है ॥ २ ॥

द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( पृथिवी ) भूमि ( हिङ्कारः ) हिङ्कार ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( द्यौः ) स्वर्ग ( उद्गीथः ) उद्गीथ ( दिशः ) दिशा ( प्रतिहारः ) प्रतिहार ( समुद्रः ) समुद्र ( निधनम् ) निधन ( एताः ) यह ( शक्वर्यः ) शक्वरी ( लोकेषु ) लोकोमें ( प्रोताः ) प्रविष्ट हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )—ऋतुएं अपने २ धर्ममें वर्त्तती हैं तो उससे लोकोंका पालन होता है, इसकारण ऋतुदृष्टिके पीछे लोकदृष्टि कहते हैं, कि-पृथिवी हिङ्कार, अन्तरिक्ष प्रस्ताव, स्वर्ग उद्गीथ, दिशा प्रतिहार और समुद्र निधन है, इसप्रकार शक्वरी साम लोकोंमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या लोकान्न निन्देत्तद् व्रतम् २

अन्वय और पदार्थ--( यः ) जो ( एवम् ) इस प्रकार ( एताः ) यह ( शक्वर्यः ) शक्वरी ( लोकेषु ) लोकोंमें ( प्रोताः ) प्रविष्ट हैं [ इति ] ऐसा ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( लोकी भवति ) लोकोंवाला होता है ( सर्वायुः ) पूर्ण आयुको ( एति ) पाता है ( ज्योक् ) उज्ज्वलतासे ( जीवति ) जीता है ( प्रजया ) प्रजा करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्तिकरके ( महान् ) बड़ा ( भवति ) होता है ( लोकान् ) लोकोंको ( न ) नहीं ( निन्देत् ) बुरा कहै ( तत् ) सो ( व्रतम् ) व्रत है।

( भावार्थ )-जो इसप्रकार इस शक्वरी सामको लोकोंमें स्थित जानकर इसकी उपासना करता है वह सब लोकोंको पारहा है, पूर्ण आयु पाता है, उसका जीवन निर्मल होता है, सन्तान, पशु और कीर्त्तिके कारण बड़ाई पाता है, वह लोकोंकी निन्दा न करै, यही उसके लिये व्रत है ॥ २ ॥

द्वितीयप्रपाठकस्य सप्तदशः खण्डः समाप्तः

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥

अन्वय और पदार्थ-( अजा ) बकरियें ( हिङ्कारः ) हिङ्कार

( अजयः ) भेड़ें ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( गावः ) गौएं ( उद्गीथः ) उद्गीथ ( अश्वाः ) घोड़े ( प्रतिहारः ) प्रतिहार ( पुरुषः ) पुरुष ( निधनम् ) निधन ( एताः ) यह ( रेवत्यः ) रेवतियें ( पशुषु ) पशुओंमें ( प्रोताः ) स्थित हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-पशुओंका पालन करना लोकोंका कार्य है, इसकारण लोकदृष्टिके अनन्तर पशु दृष्टिसे सामकी उपासना कहते हैं, कि-बकरियें हिङ्कार, भेड़ें प्रस्ताव, गौएं उद्गीथ घोड़े प्रतिहार और पुरुष निधन हैं, यह रेवती साम पशुओंमें स्थित हैं ॥ १ ॥

**स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान् भवति सर्वमायुरेति, ज्योग् जीवति, महान्प्रजया-पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या पशून्न निन्देत्तद् व्रतम् ॥ २ ॥**

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( एवम् ) इसप्रकार ( एताः ) इन ( रेवत्यः ) रेवती ( पशुषु ) पशुओंमें ( प्रोताः ) स्थित हैं [ इति ] ऐसा ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( पशुमान् ) पशुओंवाला ( भवति ) होता है ( सर्वायुः ) पूर्ण आयु को ( एति ) पाता है ( ज्योग् ) उज्वल ( जीवति ) जीता है ( प्रजया ) प्रजा करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्तिकरके ( महान् ) बड़ा ( भवति ) होता है ( पशून् ) पशुओंको ( न ) नहीं ( निन्देत् ) बुरा कहै ( तत् ) सो ( व्रतम् ) व्रत है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो मनुष्य इसप्रकार इस रेवती नामक सामको सब पशुओंमें स्थित जानकर इसकी उपासना करता है, वह पशुओंवाला होता है, पूर्ण आयु पाता है, निर्मलताके साथ जीता है, प्रजा, पशु और कीर्त्तिके द्वारा बड़ाई पाता है, पशुओंकी निन्दा न करै, यही उसका व्रत है ॥ २ ॥

द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः समाप्तः

लोम हिंकारस्त्वक् प्रस्तावो माꣳसमुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमंगेषु प्रोतम्

अन्वय और पदार्थ-( लोम ) रोम ( हिङ्कारः ) हिङ्कार है ( त्वक् ) त्वचा ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव है ( मांसम् ) मांस ( उद्गीथम् ) उद्गीथ है ( अस्थि ) हड्डी ( प्रतिहारः ) प्रतिहार है ( मज्जा ) मज्जा ( निधनम् ) निधन है ( एतत् ) यह ( यज्ञायज्ञीयम् ) यज्ञायज्ञीय साम ( अङ्गेषु ) अङ्गोंमें ( प्रोतम् ) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-पशुओंके दुग्ध दधि आदिसे अङ्गोंकी पुष्टि देखते हैं, इसकारण पशुदृष्टिके अनन्तर अङ्गदृष्टि कहते हैं-रोम हिङ्कार, त्वचा प्रस्ताव, मांस उद्गीथ, हड्डी प्रतिहार और मज्जा निधन है, यह यज्ञायज्ञीय साम शरीरके अङ्गोंमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गी भवति नाङ्गेन विहूर्छति, सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद् व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ॥ २ ॥ मज्ज्ञो = मास और मछलियां इति शांकरः॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एवम् ) इस प्रकार ( यज्ञायज्ञीयम् ) यज्ञायज्ञीयको ( अङ्गेषु ) अङ्गोंमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( अङ्गी भवति ) अङ्गोंवाला होता है ( अङ्गेन ) अङ्गसे ( न ) नहीं ( विहूर्छति ) कुटिल होता है ( सर्वम् ) सब ( आयुः ) आयुको ( एति ) पाता है ( ज्योक् ) निर्मलतासे ( जीवति ) जीता है ( प्रजया ) प्रजा करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( महान् ) बडा ( कीर्त्या ) कीर्त्ति करके ( महान् ) बडा ( भवति ) होता है ( मज्ज्ञः ) मुख्य

सामका जाननेवाला ( संवत्सरम् ) एकवर्षतक ( न ) नहीं ( अश्नीयात् ) खाय ( तत् ) सो ( वा ) या ( मज्ज्ञः ) सामका ज्ञाता ( न ) नहीं ( अश्नीयात् ) खाय ( इति ) यह ( व्रतम् ) व्रत है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो इसप्रकार इस यज्ञायज्ञीय सामको अङ्गोंमें स्थित जानकर उपासना करता है वह पूर्ण अङ्गों वाला होता है, हाथ पैर आदि अङ्गोंसे कुटिल अर्थात् टुंटा वा लुञ्जा नहीं होता है, पूरी आयु पाता है, उस का जीवन निर्मल होता है, वह प्रजा, पशु और कीर्त्ति से बड़ाई पाता है, यदि यह पहिले मत्स्य मांस आदि खाता रहा हो तो एक वर्षके लिये छोड़देय यह उसका साधारण व्रत है, और यदि सर्वदा मांस मत्स्य न खाय तो यह उसका पूरा व्रत है ॥ २ ॥

द्वितीयाध्याये एकोनविंशः खण्डः समाप्तः

**अग्निर्हिङ्कारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम् ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( अग्निः ) अग्नि ( हिङ्कारः ) हिङ्कार ( वायुः ) वायु ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव है ( आदित्यः ) आदित्य ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( नक्षत्राणि ) नक्षत्र ( प्रतिहारः ) प्रतिहार हैं ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा ( निधनम् ) निधन है ( एतत् ) यह ( राजनम् ) राजन ( देवतासु ) देवताओंमें ( प्रोतम् ) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—अग्नि हिङ्कार वायु प्रस्ताव आदित्य उद्गीथ सकल नक्षत्र प्रतिहार और चन्द्रमा निधन है, यह राजन नामक साम देवताओंमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव देवतानाᳬ सलोकताᳬ सार्ष्टिताᳬसायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या ब्राह्मणान्न निन्दत् तद् व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एवम् ) इसप्रकार ( एतत् ) इस ( राजनम् ) राजन् सामको ( देवतासु ) देवताओं में ( प्रोतम् ) स्थित ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( एतासाम् एव ) इन ही ( देवतानाम् ) देवताओंकी ( सलोकताम् ) समान लोकताको ( सार्ष्टिताम् ) समान ऋद्धिमान्पनेको ( सायुज्यम् ) एकदेहदेही भावको ( गच्छति ) प्राप्त होता है ( सर्वम् ) सम्पूर्ण ( आयुः ) आयुको ( एति ) प्राप्त होता है ( ज्योक् ) उज्ज्वलताके साथ ( जीवति ) जीवित रहता है ( प्रजया ) सन्तानसे ( पशुभिः ) पशुओंसे ( महान् ) बड़ा ( कीर्त्या ) कीर्त्तिसे (महान्) बड़ा ( भवति ) होता है ( ब्राह्मणान् ) ब्राह्मणोंको ( न ) नहीं ( निन्देत् ) निन्दा करै ( तत् ) वह ( व्रतम् ) व्रत है ॥२॥

(भावार्थ)-जो इसप्रकार राजन नामक सामको देवताओंमें स्थित मानकर उपासना करता है वह इन अग्नि वायु आदि देवताओंकी समान लोकोंको पाता है, इनकी समान ऐश्वर्यवाला होता है, इनके साथ एकदेहदेहीभाव को पाता है, पूरी आयु पाता है, उज्ज्वल जीवन पाता है, सन्तान और पशुओंसे बड़ा होता है, कीर्त्तिसे बड़ा होता है, ब्राह्मण देवतारूप हैं इसलिये ब्राह्मणोंकी निन्दा न करै, यही उसका व्रत है ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये विंशः खण्डः समाप्तः

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावो-

ऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वया-
ᳫँसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पित-
रस्तन्निधनमेतत्साम सर्वस्मिन् प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( त्रयीविद्या ) वेदविद्या ( हिङ्कारः ) हिङ्कार है ( इमे ) ये ( त्रयः ) तीन ( लोकाः ) लोक ( सः ) वह ( प्रस्तावः ) प्रस्ताव ( अग्निः ) अग्नि ( वायुः ) वायु ( आदित्यः ) आदित्य ( सः ) वह ( उद्गीथः ) उद्गीथ है ( नक्षत्राणि ) नक्षत्र ( वयांसि ) पक्षी ( मरीचयः ) किरणें ( सः ) वह ( प्रतिहारः ) प्रतिहार है ( सर्पाः ) सर्प ( गन्धर्वाः ) गन्धर्व ( पितरः ) पितर ( तत् ) वह ( निधनम् ) निधन है ( एतत् ) यह ( साम ) साम ( सर्वस्मिन् ) सबमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—त्रयी नामक वेदविद्या हिङ्कार, तीनों लोक प्रस्ताव, अग्नि वायु आदित्य तीनों देवता उद्गीथ, नक्षत्र पक्षी और किरणें प्रतिहार तथा सर्प गन्धर्व और पितृलोक निधन है, यह साम वेदविद्यादि सबमें प्रविष्ट है

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वं ह भवति २

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( एवम् ) इसप्रकार ( एतत् ) इस ( साम ) सामको ( सर्वस्मिन् ) सबमें ( प्रोतम् ) पुराहुआ ( वेद जानता है ( सः, ह ) वह ही ( सर्वम् ) सब ( भवति ) होजाता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—जो इसप्रकार इस सब सामोंको वेद-विद्या आदि सबमें जानकर उपासना करता है वह सर्व अर्थात् सर्वेश्वर होजाता है ॥ २ ॥

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो
न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) तिसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है ( यानि ) जो ( पञ्चधा ) पांचप्रकारसे ( त्रीणि त्रीणि ) तीन २ हैं ( तेभ्यः ) उनसे ( ज्यायः ) बढ़कर ( परम् ) भिन्न ( अन्यत् ) और वस्तु ( न ) नहीं ( अस्ति ) है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-इस विषयमें यह मंत्र है, कि-जो हिङ्कार आदि विभागसे पांच प्रकारके कहेहुए त्रयीविद्या आदि तीन २ सामके अवयव हैं, उन पांच त्रिकोंसे महान् तथा उत्कृष्ट और कोई वस्तु नहीं है ॥ ३ ॥

यस्तद्वेद स वेद सर्वꣳ सर्वादिशो बलिमस्मै हरन्ति, सर्वमस्मीत्युपासीत तद् व्रतं तद्व्रतम् ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( तत् ) इसको ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( सर्वम् ) सबको ( वेद ) जानता है ( सर्वाः ) सब ( दिशः ) दिशायें ( अस्मै इसके लिये ( बलिम् ) बलिको ( हरन्ति ) अर्पण करती हैं ( सर्वम् ) सब ( अस्मि ) हूं ( इति ) इसप्रकार ( उपासीत ) उपासना करै ( तत् ) वह ( व्रतम् ) व्रत है ( तत् ) वह ( व्रतम् ) व्रत है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जो इस सर्वरूप सामको जानता है वह सबको जानता है तथा इसको सब दिशाओंमें रहने वाले प्राणी उसको भोग अर्पण करते हैं, मैं ही सर्वरूप हूं, इस ज्ञानसे उपासना करना ही इसका व्रत है ॥ ४ ॥

द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः समाप्तः ।

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान् सर्वानेवोपसेवेत त्वेव वर्जयेत् ॥ १ ॥ वारुणं॥

प्रजापतेर्निरुक्तः ॥

अन्वय और पदार्थ-( विनर्दि ) बैलके बोलनेकी समान स्वरवाले ( साम्नः ) सामके सम्बन्धी ( पशव्यम् ) पशुओंके हितकारी ( अग्नेः ) अग्नि रूप देवता वाला ( उद्गीथः इति ) जो उद्गान है उसकी ( वृणे ) प्रार्थना करता हूं ( प्रजापतेः ) प्रजापतिका (अनिरुक्तः) अस्पष्ट है (सोमस्य) सोमका (निरुक्तः) स्पष्ट है ( वायोः ) वायुका ( मृदु ) कोमल ( श्लक्ष्णम् ) मधुर है ( इन्द्रस्य ) इन्द्रका ( श्लक्ष्णम् ) कोमल ( बलवत् ) बलवाला है ( बृहस्पतेः ) बृहस्पतिका ( क्रौञ्चम् ) क्रौञ्च पक्षीकी समान है ( वरुणस्य ) वरुणका ( अपध्वान्तम् ) फूटीहुई कांसीके स्वरकी समान है ( तान् ) उन ( सर्वान् ) सबोंको ( वारुणम् एव ) वरुणकेको ही ( वर्जयेत् ) त्याग देय ॥ १ ॥

( भावार्थ )-बैलके दहाड़नेको समान स्वरवाला जो गायन है वह सामके सम्बन्धवाला पशुओंका हित रूप और अग्निरूप देवतावाला उदगान है, उसकी मैं प्रार्थना करता हूं, ऐसा कोई यजमान वा उद्गाता मानता है । प्रजापति देवतावाला यह उद्गीथ अस्पष्ट है अर्थात् अमुककी समान है ऐसा नहीं कहा जाता, सोम देवतावाला स्पष्ट उद्गान है, कोमल और मधुर देवता वाला गान है, कोमल और अधिक प्रयत्न वाला इन्द्र देवताका उद्गान है, क्रौञ्चपक्षीके शब्दकी समान बृहस्पति देवताका गान है और फूटी हुई कांसी के समान वरुण देवताका गान है, साधक उन सबोंका ही उच्चारण करे, परन्तु एक वरुणके गानको अवश्य त्याग देय ॥ १ ॥

स्वधां

अमृतं देवेभ्य आगायानीत्यागयेत स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकंयज-

मानायान्नमात्मान आगायानीत्येतानि मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(देवेभ्यः) देवताओंके लिये (अमृतत्वम्) अमृतपना (आगायानि) साधन करूँ (इति) ऐसा कहकर (आगायेत्) उद्गगान करे (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (स्वधाम्) स्वधाको (मनुष्येभ्यः) मनुष्योंके लिये (आशाम्) आशाको (पशुभ्यः) पशुओंके लिये (तृणोदकम्) तृणजल को (यजमानाय) यजमानके यिये (स्वर्गं लोकम्) स्वर्ग लोक को (आत्मने) अपने लिये (अन्नम्) अन्नको (आगायानि साधन करूँ (इति) इस प्रकार (एतानि) इनको (मनसा) मनसे (ध्यायन्) ध्यान करता हुआ (अप्रमत्तः) सावधानीके साथ (स्तुवीत) स्तुति करै ॥ २ ॥

(भावार्थ)—देवताओंके लिये अमृतपना साधन करूँगा ऐसा कहकर उद्गान करै, पितरोंके लिये स्वधा मनुष्योंके लिये इच्छित पदार्थ, पशुओंके लिये तृण और जल यजमानके लिये स्वर्गलोक और अपने लिये अन्न साधन करूँगा ऐसा इनका मनसे ध्यान करता हुआ तथा स्वर ऊष्म व्यञ्जन स्थान और प्रयत्न आदिमें सावधान रह कर स्तुति करै ॥ २ ॥

सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मानः सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रꣳ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति वक्ष्यातीत्येनं ब्रूयात् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सर्वे) सब (स्वराः) स्वर (इन्द्रस्य)

इन्द्रके ( आत्मानः ) अवयव हैं ( सर्वे ) सब ( ऊष्माणः ) ऊष्म ( प्रजापतेः ) प्रजापतिके ( आत्मानः ) आत्मा हैं ( सर्वे ) सब ( स्पर्शाः ) स्पर्श ( मृत्योः ) मृत्युके (आत्मानः) आत्मा हैं (तम्) उसको ( यदि ) जो ( स्वरेषु ) स्वरोंके विषयमें ( उपालभेत ) उलाहना देय [ तर्हि ] तो ( इन्द्रम् ) इन्द्रको ( शरणं प्रपन्नः अभूवम् ) इन्द्रकी शरणमें गया हूं ( सः ) वह (त्वा प्रति) तुझ से ( वक्ष्यति ) कहेगा ( इति ) ऐसा ( एनम् ) इसको ( ब्रूयात् ) कहे ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-उद्गानके समय कोई उद्गाताके ऊपर आक्षेप करै तो उसके उपायके लिये स्वर आदिके देवता का ज्ञान कहते हैं कि—अकार आदि सब स्वर इन्द्रके आत्मा कहिये शरीरके अवयव हैं। श ष स ह ये सब ऊष्म अक्षर प्रजापतिके आत्मा हैं और क आदि व्यञ्जन रूप सब स्पर्श अक्षर मृत्युके आत्मा हैं। इस उद्गाताके स्वरोंमें कोई आक्षेप करे तो मैं इन्द्रका आश्रय लेकर स्वरोंका प्रयोग करता हूं, वह ही तुम्हें इसका उत्तर देगें ऐसा कह देय ॥ ३ ॥

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिꣳ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनं स्पर्शेषूपालभेत मृत्युं शरणं प्रपन्नोऽभूवं सत्वा प्रति धक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यदि ) जो ( एनम् ) इसको ( ऊष्मसु ) ऊष्म अक्षरोंके विषयमें (उपालभेत) उपालम्भ देय [ तर्हि ] तो (प्रजापतिम्) प्रजापतिकी ( शरणम् ) शरणको ( प्रपन्नः अभूवम् ) प्राप्त हुआ हूं (इति) ऐसा (सः) वह (त्वा)

तुझे ( प्रतिपेच्यति ) पीसडालेगा ( इति ) ऐसा ( एनम् ) इसको ( ब्रूयात् ) कहै ( अथ ) और ( यदि ) जो ( एनम् ) इसको ( स्पर्शेषु ) स्पर्श अक्षरोंके विषयमें ( उपालभेत ) उपालम्भ देय ( तर्हि ) तो ( मृत्युम् ) मृत्युको ( शरणम् ) शरण ( प्रपन्नः अभूवम् ) प्राप्त हुआ हूं ( सः ) वह (त्वा) तुझे (प्रतिधक्ष्यति) भस्म कर डालेगा ( इति ) ऐसा (एनम्) इससे (ब्रूयात्) कहै४

( भावार्थ )-यदि कोई उद्गाताको ऊष्म अक्षरोंके विषयमें उपालम्भ देय तो—मैं प्रजापतिकी शरण लेता हुआ ऊष्म अक्षरोंका प्रयोग करता हूं यह तुझे चूर्ण कर देगा, यह बात आक्षेप करने वालेसे कहै और यदि कोई ककारादि व्यञ्जनरूप स्पर्श अक्षरोंके विषयमें आक्षेप करे तो उससे कहै कि--मैं मृत्यु देवताकी शरण लेता हुआ स्पर्श अक्षरोंका उच्चारण करता हूं वह तुझे भस्म कर डालेगा ॥ ४ ॥

**सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति,सर्व ऊष्माणो अग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति,सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिहराणीति ॥ ५ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( इन्द्रे ) इन्द्रमें ( बलम् ) बल (ददानि) देता हूं ( इति ) ऐसा विचार ( सर्वे ) सब ( स्वराः ) स्वर (घोषवन्तः) घोषवाले (बलवन्तः)बलवाले (वक्तव्याः) उच्चारण करने चाहिये ( प्रजापतेः ) प्रजापतिको ( आत्मानम् ) आत्मा ( परिददानि ) देता हूं ( इति ) ऐसा विचार कर ( सर्वे ) सब

(ऊष्माणः) ऊष्म (अग्रस्ताः) भीतर प्रवेश न कियेहुए (अनिरस्ताः) मुखसे बाहर न फेंकेहुए ( विवृताः ) उघड़े प्रयत्नवाले ( वक्तव्याः) उच्चारण करने चाहिये ( मृत्योः ) मृत्युके ( आत्मानम् ) देह को ( परिहराणि ) दूर करता हूं ( इति ) ऐसा विचार करके ( सर्वे ) सब ( स्पर्शाः ) स्पर्श ( लेशेन ) धीरेसे ( अनभिनिहिताः ) अमिलितभावसे (वक्तव्याः) कहने योग्य हैं ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-स्वरोंका उच्चारण करते समय, मैं इन्द्र में बल स्थापन करता हूं, ऐसा चिन्तवन करके सब स्वरों को घोष प्रयत्न वाले और बलके साथ उच्चारण करै। मैं प्रजापतिके शरीरके अवयवोंको अपना जीवन अर्पण करता हूं, ऐसा ध्यान करके सब ऊष्म कहिये श ष स ह इन अक्षरोंको कण्ठके भीतर न घुसे हुए तथा विवृत कहिये उघड़े प्रयत्न वाले उच्चारण करै। मैं मृत्युके आत्मा कहिये शरीरके अवयवोंको अपने शरीरमेंसे बाहर निकालता हूं, ऐसा ध्यान करके सकल स्पर्श कहिये ककारसे मकार पर्यन्त अक्षरोंको धीरेसे तथा एक अक्षर दूसरेसे मिल न जाय, इसप्रकार उच्चारण करै ॥ ५ ॥

द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः समाप्तः ।

—०—

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथमस्तप एव, द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्य कुलेऽवसादयन्, सर्वं एते पुण्यलोका भवन्ति, ब्रह्मसᳪस्थोऽमृतत्वमेति ॥१॥

अन्वय और पदार्थ-( त्रयः ) तीन ( धर्मस्कन्धाः ) धर्मके विभाग [ सन्ति ] हैं ( यज्ञः ) यज्ञ ( अध्ययनम् ) अध्ययन

( दानम् ) दान ( इति ) इस प्रकार ( प्रथमः ) पहिला ( तपः, एव ) तप ही है ( द्वितीयः ) दूसरा (आचार्यकुलवासी) आचार्य के कुलमें बसने वाला ( ब्रह्मचारी ) ब्रह्मचारी है ( तृतीयम् ) तीसरा ( आचार्यकुले ) आचार्य कुलमें ( आत्मानम् ) अपने को ( अत्यन्तम् ) अत्यन्त ( अवसादयन् ) कष्ट देने वाला है ( एते ) ये ( सर्वे ) सब ( पुण्यलोकाः ) पुण्यलोक वाले ( भवन्ति ) होते हैं ( ब्रह्मसंस्थः ) ब्रह्ममें स्थित हुआ ( अमृतत्वम् ) अमरभावको ( एति ) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )--यहां तक अधिकारीके अधिकारके अनुसार शरीरके साथ सम्बन्ध रखने वाली उपासनायें कहीं अब स्वतंत्र अधिकारीके लिये ॐकारकी उपासना कहते हुए पहिले धर्मके तीन विभाग और प्रणवोपासकको अमृतकी प्राप्ति कहते हैं—धर्मके तीनके तीन विभाग हैं उनमें प्रथम हैं अध्ययन और दान अर्थात् अग्निहोत्र आदि यज्ञ, नियमके साथ ऋग्वेद आदिका अभ्यासरूप अध्ययन और यज्ञकी वेदीके बाहर भिक्षुकोंको यथाशक्ति अन्न आदि देना रूप दान यह गृहस्थसे संबन्ध रखने वाला धर्मका पहिला विभाग है। कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतरूप तप वानप्रस्थ वा संन्यासीसे संबन्ध रखने वाला दूसरा विभाग है। ब्रह्मचर्यको धारण किये हुए जीवनभर आचार्यके घर रहकर शरीरान्त करदेना तीसरा धर्म विभाग है, ये तीनों आश्रमोंवाले इन कहेहुए धर्मों से पुण्यलोकोंको पाते हैं इनमें गृहस्थी यज्ञ अध्ययन और दानके द्वारा चन्द्रलोकको पाता है। तपस्वी तपस्याके द्वारा सूर्यलोकमें जाता है और नैष्ठिक ब्रह्मचारी निष्ठा के द्वारा ऋषिलोकमें जाता है तथा इनमें यदि कोई ब्रह्मज्ञानी होजाता है तो वह मोक्ष पाता है ॥ १ ॥

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या सम्प्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एता- न्यक्षराणि सम्प्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ- ( प्रजापतिः ) प्रजापति ( लोकान्, अभि लोकोंको लक्ष्य करके ( अभ्यतपत् ) तप करता हुआ ( तेभ्यः ) तिन (अभितप्तेभ्यः) तपेहुए लोकोंमेंसे (त्रयी विद्या) ऋगादि वेदविद्या ( संप्रास्रवत् ) ध्यानमें आयी ( ताम् ) उस त्रयी विद्याको ( अभ्यतपत् ) लक्ष्य करके तपकिया ( तस्याः ) तिस ( अभितप्तायाः ) तपीहुई त्रयी विद्यासे ( भूः भुवः स्वः इति ) भूः भुवः स्वः इसप्रकारके ( एतानि ) यह ( अक्षराणि ) अक्षर ( संप्रास्रवन्त ) प्रकट हुए ॥ २ ॥

( भावार्थ )-ऊपर जो कहा, कि-तीन प्रकारके धर्मों से पुण्यलोकोंकी प्राप्ति होती है, तिसमें गृहस्थधर्मके द्वारा त्रिलोकीमें ही आवागमन होता रहता है । उप- कुर्वाण अर्थात् समावर्त्तन तक स्थायी ब्रह्मचर्यके द्वारा त्रि- लोकीके बाहर महर्लोकमें और नैष्ठिक (आजन्म) ब्रह्म- चर्यके द्वारा जनलोकमें गति होती है परन्तु ज्ञानी प्रकृति के पार होजाता है । किसप्रकार प्रकृतिके पार होजाता है सो दिखाते हैं, विराट वा कश्यप प्रजापतिने सकल लोकोंका सार क्या है, इस बातको जाननेके लिये ध्यान रूप तप किया अर्थात् शब्दात्मक सकल लोकोंका ध्यान करने लगे । ध्यान करते २ उन सब लोकोंसे उनका सार भूत ऋग्-यजुः-सामरूप त्रयी विद्या प्रजापतिके अन्तः- करणमें प्रकाशित हुई तदनन्तर प्रजापति त्रयी विद्याका सार संग्रह करनेकी इच्छासे उसका ध्यानरूप तप करने

लगा, ध्यान करते २ उस त्रयीविद्यामेंसे उसका सार-रूप भूः भुवः स्वः ये व्याहृतिरूप तीन अक्षर उसके मनमें प्रकाशित हुए ॥ २ ॥

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः सम्प्रास्रवत् तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृण्णोङ्कार एवेदꣳसर्वमोङ्कार एवेदं सर्वम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तानि, अभ्यतपत् ) उनका ध्यान किया ( तेभ्यः ) तिन ( अभितप्तेभ्यः ) ध्यान किये हुओंसे (ॐकारः) ॐकार (संप्रास्रवत्) प्रतीत हुआ ( तत् ) वह (यथा) जैसे ( शंकुना ) पत्तोंकी दण्डीसे ( सर्वाणि ) सब ( पर्णानि ) पत्ते ( सन्तृण्णानि ) व्याप्त हैं ( एवम् ) ऐसे ही ( ओङ्कारेण ) ओङ्कारके द्वारा ( सर्वा ) सब ( वाक् ) वाणी ( सन्तृण्णा ) व्याप्त होरही है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( ओङ्कारः एव ) ओङ्कार ही है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( ओंकारः-एव ) ओंकार ही है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर प्रजापति उन तीन अक्षरोंका सार ग्रहण करनेकी इच्छासे इनका ध्यान करने लगा, ध्यान करते करते उन तीन अक्षरोंमेंसे उनका सारभूत ओङ्कार प्रजापतिके मनमें प्रकाशित हुआ, जैसे पत्तोंकी दण्डीसे पत्तोंके सब अवयव व्याप्त होते हैं तैसे ही परमात्माके प्रतीक ओङ्कारके द्वारा सकल शब्द-भण्डार व्याप्त होरहा है । जगत् परमात्माका कार्य होनेके कारण परमात्मासे भिन्न नहीं है और परमात्मा ओङ्कारसे भिन्न नहीं है, इसकारण ओङ्कार ही सर्वरूप है ओङ्कार ही सबरूप है ॥ ३ ॥

द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः समाप्तः ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनं रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनमादित्यानाञ्च विश्वेषाञ्च देवानां तृतीयसवनम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ब्रह्मवादिनः ) ब्रह्मवादी ( वदन्ति ) कहते हैं ( यत् ) जो ( प्रातः सवनम् ) प्रातः सवन है वह ( वसूनाम् ) वसुओंका है ( माध्यन्दिनम् ) मध्य दिवसका ( सवनम् ) सवन ( रुद्राणाम् ) रुद्रोंका है ( च ) और ( तृतीयसवनम् ) तीसरा सवन ( आदित्यानाम् ) आदित्योंका (च) और ( विश्वेषाम् ) सकल ( देवानाम् ) देवताओंका है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-ब्रह्मवादी कहते हैं कि-जो प्रातःकालका सवन है वह वसु देवताओंका है, उन वसुओंने इस प्रातःसवनके संबन्धी भूलोकको वशमें कर रक्खा है। मध्यदिनका सवन रुद्रोंका है, उन रुद्रोंने माध्यन्दिन सवन के सम्बन्धी अन्तरिक्ष लोकको वशमें कर रक्खा है । तीसरा अर्थात् सायङ्कालका सवन आदित्य तथा विश्वे देवाओंका है, उन्होंने सायंसवनके संबन्धी स्वर्गलोकको वशमें कर रक्खा है । इसकारण यजमानके लिये कोई लोक शेष नहीं रहता है, प्रातः मध्यान्ह और सायङ्काल में सोमसे देवताओंको जो तर्पणरूप क्रिया कीजाती है, वह उस२ समयका सवन कहलाती है ॥ १ ॥

क्व तर्हि यजमानस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात् कथं कुर्यादथ विद्वान् कुर्यात् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तर्हि ) तो ( यजमानस्य ) यजमान का ( लोकः ) लोक ( क्व ) कहां है ( इति ) इसप्रकार ( यः ) जो ( तम् ) उसको ( न ) नहीं ( विद्यात् ) जाने ( सः ) वह

( कथम् ) कैसे ( कुर्यात् ) करे ( अथ ) इससे ( विद्वान् ) जानने वाला ( कुर्यात् ) करे ॥ २ ॥

( भावार्थ )-तो देहपातके अनन्तर यजमानका लोक कहां है ? कि-जिस लोकके लिये वह यजन करता है, इस प्रकार लोकका अभाव होनेके कारण जो यजमान उस साम, होम मन्त्र और उत्थानरूप लोक स्वीकारके उपाय को न जाने वह अज्ञानी यज्ञ कैसे करसकता है ! इस लिये अब जो कहे जायँगे उन साम आदिको जाननेवाला ही यज्ञ करसकता है ॥ २ ॥

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य स वासवं सामाभिगायाति ३

अन्वय और पदार्थ--(प्रातरनुवाकस्य) प्रातःकालीन अनुवाकके ( उपाकरणात् ) आरम्भ करनेसे ( पुरा ) पहिले ( गार्हपत्यस्य ) गार्हपत्य अग्निके ( जघनेन ) पश्चाद्भागमें ( उदङ्मुखः ) उत्तराभिमुख ( उपविश्य ) बैठकर ( सः ) वह यजमान (वासवम्) वसु देवता वाले (साम) सामको (गायति) गाता है ३

(भावार्थ)—प्रातःकालके समय कियेजाने वाले यज्ञके उपयोगी अनुवाक कहिये गान रहित ऋचाओंके समूहका उच्चारण करनेसे पहिले गार्हपत्य अग्निके पीछेके भागमें उत्तराभिमुख बैठकर वह यजमान वसुदेवतावाले अर्थात् वसु आदि नामक भगवत्सम्बन्धी सामका गान करै ।३।

लो३ कद्वारमपावा ३ र्णू ३३ पश्येम त्वा वयꣳरा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या३ यो ३ आ३२१११ इति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(लोकद्वारम्) लोकके द्वारको (अपा

पृथ्वीलोककी॥



पार्णु ) उघाड़ो ( वयम् ) हम ( त्वा ) तुम्हें ( राज्याय ) राज्य के लिये ( पश्येम ) देखते हैं ॥ ४ ॥

( भावार्थ ) --वह साम यह है कि--हे अग्ने ! पृथिवी लोककी प्राप्तिके लिये द्वारको उघाड़ो, उस द्वारसे हम आपको पृथिवी लोककी प्राप्तिके लिये देखें ॥ ४ ॥

**अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि ॥ ५ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) इसके अनन्तर ( जुहोति ) होम करता है ( पृथिवीक्षिते ) पृथिवी पर निवास करनेवाले ( लोकक्षिते ) लोकमें निवास करनेवाले ( अग्नये ) अग्निके अर्थ ( नमः ) नमस्कार है ( मे ) मुझ ( यजमानाय ) यजमान के लिये ( लोकम् ) लोकको ( विन्द ) प्राप्त करा ( वै ) निश्चय ( एषः ) यह ( यजमानस्य ) यजमानका ( लोकः ) लोक है ( एतास्मि ) जाऊँगा हूँ ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर इस मन्त्रसे आहुति देय, पृथिवीमें निवास करनेवाले तथा लोकमें निवास करने वाले अग्निदेवको नमस्कार है, हे भगवन् ! आप मुझ यजमानको लोक प्राप्त कराइये यह मुझ यजमानका लोक है, कि-जिसमें मैं मरणके अनन्तर जानेवाला हूं ॥ ५ ॥

**अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ ६ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( अत्र ) इस लोकमें ( यजमानः ) यजमान ( आयुषः ) आयुके ( परस्तात् ) पीछे ( स्वाहा ) यह

आहुति हुत है। ( परिघम् ) अर्गलाको ( अपजहि ) दूर करो ( इति ) ऐसा ( उक्त्वा ) कहकर ( उत्तिष्ठति ) उठता है ( तस्मै ) उसके लिये ( वसवः ) वसु ( प्रातः सवनम् ) प्रातः सवन ( संप्रयच्छन्ति ) देते हैं ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—इस लोकमें जो मैं यजमान हूं सो मैं आयुकी समाप्ति पर मरणको प्राप्त होकर परलोकमें जाने वाला हूं, उस समय मनोरथकी सिद्धिके लिये यह सुन्दर आहुति अर्पण करता हूं, हे अग्ने ! भूलोककी अर्गलाको दूर करो यह मंत्र पढ़कर उठता है। इसप्रकार इस साम होम और मन्त्रके प्रभावसे वसुओंसे प्रातःसवनके सम्बन्धवाला पृथिवी लोक खरीदा हुआसा होजाता है, इसकारण उसको वसु प्रातःसवन देते हैं ॥ ६ ॥

पुरा माध्यन्दिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाग्नीध्रीयस्योदङ्मुख उपविश्य स रौद्रꣳ सामाभिगायति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( माध्यन्दिनस्य ) मध्यदिनके ( सवनस्य ) सवनके ( उपाकरणात् ) आरम्भसे ( पुरा ) पहिले ( अग्निध्रीयस्य ) दक्षिणाग्निके ( जघनेन ) पीछे ( उदङ्मुखः ) उत्तराभिमुख ( उपविश्य ) बैठकर ( सः ) वह यजमान ( रौद्रम् ) रुद्र देवतावाले ( साम ) सामको ( अभिगायति ) गाता है ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-मध्यदिनके सवनके आरम्भसे पहिले दक्षिणाग्निके पीछे उत्तराभिमुख बैठकर वह यजमान अन्तरिक्षलोककी प्राप्तिके लिये रुद्र देवतावाले सामको उत्तम रीतिसे गाता है ॥ ७ ॥

लो३क द्वारमपावा३र्णू ३३ पश्येम त्वा वयं वैरा३३३३३ हुं३ आ३३ ज्या ३ यो३ आ ३२१११ इति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—( लोकद्वारम् ) अन्तरिक्ष लोकके द्वारको ( अपावार्णू ) उघाड़ ( वयम् ) हम ( वैराज्याय ) अन्तरिक्ष लोककी प्राप्तिके लिये ( त्वा ) तुम्हे ( पश्येम देखते हैं ॥ ८ ॥

( भावार्थ )-हे अग्निदेव ! अन्तरिक्ष लोककी प्राप्ति के लिये द्वारको उघाड़िये, उस द्वारसे हम आपको अन्तरिक्ष लोककी प्राप्तिके निमित्त देखैं ॥ ८ ॥

अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षित लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एताऽस्मि ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ--( अथ ) अनन्तर ( जुहोति ) इस मंत्र से होम करता है ( अन्तरिक्षक्षिते ) अन्तरिक्षलोकमें वसनेवाले ( लोकक्षिते ) लोकमें वसनेवाले ( वायवे ) वायुके अर्थ ( नमः ) प्रणाम है ( मे ) मुझ ( यजमानाय ) यजमानके अर्थ ( लोकम् ) लोक ( विन्द ) प्राप्त कराओ वै) निश्चय ( एषः ) यह (लोकः) लोक ( यजमानस्य ) यजमानका है ( एतास्मि ) मैं जाऊँगा ९

( भावार्थ )-फिर इस मंत्रसे होम करता है-अन्तरिक्षमें वसनेवाले तथा अन्तरिक्षलोकमें वसनेवाले वायु को नमस्कार है, मुझ यजमानको लोक प्राप्त कराओ, यह यजमानका लोक है, कि-जिसमें मैं मरणके अनन्तर जाऊँगा ॥ ९ ॥

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-( अत्र ) इस लोकमें ( यजमानः

यजमान ( आयुषः ) आयुके ( परस्तात् ) पीछे [ गन्ताऽस्मि ] जाऊँगा ( स्वाहा ) यह आहुति उत्तम प्रकारसे हुत हो ( परिघम् ) अर्गलाको ( अपजहि ) हटाओ ( इति ) ऐसा ( उक्त्वा ) कहकर ( उत्तिष्ठति ) उठता है ( तस्मै ) उसको ( रुद्राः ) रुद्र ( माध्यन्दिनम् ) मध्यदिनका ( सवनम् ) सवन ( संप्रयच्छन्ति ) अर्पण करते हैं ॥ १० ॥

( भावार्थ )-इस लोकमें जो मैं यजमान हूं वह आयु पूरी होने पर मरणके अनन्तर जानेवाला हूं, ऐसा मैं यह आहुति देता हूं, अन्तरिक्षलोककी अर्गलाको दूर करो, यह मंत्र उच्चारण करके उठता है, इसप्रकार साम, होम और मंत्रसे रुद्रोंसे मध्यदिनके सवनके सम्बन्धवाला अन्तरिक्षलोक खरीदा हुआ होजाता है, इसकारण उस को रुद्र मध्यदिनका सवन अर्पण करते है ॥ १० ॥

पुरा तृतीय सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यꣳ स वैश्वदेवꣳ सामाभिगायति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तृतीयसवनस्य ) तीसरे सवनके ( उपाकरणात् ) प्रारम्भ करनेसे ( पुरा ) पहिले ( आहवनीयस्य ) आहवनीय अग्निके ( जघनेन ) पीछे ( उदङ्मुखः ) उत्तराभिमुख ( उपविश्य ) बैठकर ( सः ) वह ( आदित्यम् ) आदित्य देवताके ( सः ) वह ( वैश्वदेवम् ) विश्वेदेवाके ( साम ) साम को ( अभिगायति ) गाता है ॥ ११ ॥

( भावार्थ )—सायंकालके तीसरे सवनके आरम्भसे पहिले आहवनीयके पिछवाड़े उत्तराभिमुख बैठकर वह यजमान क्रमसे स्वाराज्य और साम्राज्यकी प्राप्तिके लिये आदित्य देवतावाले सामका और विश्वेदेवा देवतावाले सामका उत्तम रीतिसे गान करता है ॥ ११ ॥

लो३ कद्वारमपावा३र्णू ३३ पश्येम त्वा वयꣳ स्वारा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या३ यो३ आ ३२१११ इति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ—( लोकद्वारम् ) स्वर्गलोकके द्वारको ( अपावार्णू ) उघाड़ ( वयम् ) हम ( स्वाराज्याय ) स्वर्गलोक की प्राप्तिके लिये ( त्वा ) तुझे ( पश्येम ) देखें ॥ १२ ॥

( भावार्थ )-हे अग्निदेव! स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये द्वारको उघाड़िये उस द्वारसे हम तुम्हे स्वर्गलोकको पाने के लिये देखैं ॥ १२ ॥

आदित्यमथ वैश्वदेव लो३कद्वारमपावा३र्णू३३ पश्येम त्वा वयꣳ साम्रा ३३३३३ हुं३ आ ३३ ज्या३ यो३ आ३२१११ इति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) इसके अनन्तर ( आदित्यम्) आदित्य देवतावाले (वैश्वदेवं) विश्वेदेवा देवतावाले (लोकद्वारम्) लोकके द्वारको ( अपावार्णू ) उघाड़ ( वयम् ) हम ( साम्राज्याय ) साम्राज्यकी प्राप्तिके लिये ( त्वा ) तुझको ( पश्येम ) देखैं ॥ १३ ॥

( भावार्थ )—इसप्रकार आदित्य देवतावाले सामका गान करनेके अनन्तर विश्वेदेवा देवतावाले सामका गान करता है--हे अग्ने ! स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये द्वार को उघाडो, उस द्वारसे हम आपको स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये देखैं ॥ १३ ॥

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (जुहोति) होम करता है (दिविक्षिद्भ्यः) स्वर्गमें बसनेवाले (लोकक्षिद्भ्यः) लोक में बसनेवाले (आदित्येभ्यः) आदित्योंके अर्थ (च) और (विश्वेभ्यः,देवेभ्यः) विश्वेदेवताओंके अर्थ (च) भी (नमः) नमस्कार है (मे) मुझ (यजमानाय) यजमानके अर्थ (लोकम्) लोकको (विन्दत) प्राप्त कराओ ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-फिर इस मंत्रसे होम करता है स्वर्गमें बसने वाले तथा स्वर्गलोकमें बसने वाले आदित्योंको और विश्वेदेवताओंको भी प्रणाम है, मुझ यजमानके लिये लोक प्राप्त कराओ ॥ १४ ॥

एष वै यजमानस्य लोक एतास्म्यत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापहत परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) निश्चय (एषः) यह (यजमानस्य) यजमानका (लोकः (लोक है (अत्र) इस लोकमें (यजमानः) मैं यजमान (आयुषः) आयुके (परस्तात्) पीछे (एतास्मि) जाऊँगा (स्वाहा) यह आहुति उत्तमरूपसे हुत हो (परिघम्) अर्गलाको (अपहत) दूर करो (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर (उत्तिष्ठति) उठता है ॥ १५ ॥

(भावार्थ)—यह यजमानका लोक है, इस लोकमें मैं यजमान आयुकी समाप्तिमें मरण होने पर जाऊँगा स्वाहा स्वर्गलोककी प्रतिबन्धकरूप अर्गलाको हटादो, यह मन्त्र पढ़कर उठता है ॥ १५ ॥

तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीयसवनꣳ संप्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं वेद य एवं वेद ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तस्मै ) तिसके अर्थ ( आदित्याः ) आदित्य ( च ) और ( विश्वेदेवाः ) विश्वेदेवा ( च ) भी ( तृतीयसवनम् ) तीसरे सवनको ( संप्रयच्छन्ति ) अर्पण करते हैं ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( यः ) जो ( एवम् ऐसा ( वेद ) जानता है ( ह ) प्रसिद्ध ( एषः ) यह यजमान ) वै ( निश्चय ( यज्ञस्य ) यज्ञके ( मात्राम् ) स्वरूपको ( वेद ) जानता है ॥ १६ ॥

( भावार्थ )-इसप्रकार इन साम, होम, मंत्र और उत्थान से आदित्य तथा विश्वेदेवा देवताओंसे तीसरे सवनके संबन्धको प्राप्त हुआ । स्वर्गलोक क्रय किया हुआ होजाता है, इस कारण उसके लिये आदित्य और विश्वे देवा देवता तीसरा सायंसवन देते हैं जो कहेहुए साम आदिको इसप्रकार जानता है ऐसा यह प्रसिद्ध यजमान यज्ञके कहेहुए स्वरूपको जानता है, इसकारण उसको इसके अनुष्ठानसे इसका फल मिलना संभव है ॥ १६ ॥

द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः समाप्तः ।

## अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

ॐ असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवꣳशोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः १

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( असौ ) यह ( आदित्यः ) सूर्य ( देवमधु ) देवताओंका मधु है ( द्यौः एव ) स्वर्गलोक ही [ तस्य ] तिस मधुका ( तिरश्चीनवंशः ) तिरछा बांस है ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष ( अपूपः ) पुआ है ( मरीचयः ) किरणें ( पुत्राः ) पुत्र हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )—यह प्रसिद्ध सूर्य ही आनंदका हेतु होने से देवताओंका मधु है स्वर्गलोक ही उस मधुका आधार-भूत तिरछा बांस है अर्थात् जैसे मधुचक्र कहिये शहदका छत्ता तिरछे काठमें लटका होता है तैसे ही सूर्यरूप मधु-चक्र द्युलोकके आश्रयसें है अन्तरिक्ष अर्थात् शून्य उसका अपूप अर्थात् छिद्रयुक्त पुएकी समान है और सूर्यकी किरणोंमेंका जल कहिये भौम रस उसके पुत्र अर्थात् पुत्र रूप ( मधुमक्षिकाओंके अण्डे ) हैं ॥ १ ॥

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधु-नाड्य ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पंता-अमृता आपस्ता वा एता ऋचः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तस्य ) तिस सूर्यकी ( ये ) जो ( प्राञ्चः ) पूर्वदिशामेंकी ( रश्मयः ) किरणें हैं ( ताः, एव ) वह ही ( अस्य ) इसकी ( प्राच्यः ) पूर्वकी ओरकी ( मधु-नाड्यः ) मधुकी नाड़ियें हैं ( ऋचः एव ) ऋचायें ही ( मधु-कृतः ) मधुमक्षिका हैं ( ऋग्वेदः एव ) ऋग्वेद ही ( पुष्पम् ) पुष्प है ( ताः ) वह ( एताः ) यह ( ऋचः ) ऋचायें ( वै ) निश्चय ( ताः ) वह (अमृताः ) अमृतरूप (आपः) जल हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-इस सूर्यकी पूर्व दिशामेंकी जो किरणें हैं वह ही पूर्व दिशाकी मधुनाडियें अर्थात् शहदके छत्तेके छिद्र हैं ऋचा नामके सकल मंत्र ही मधु बनाने वाली मक्षिका हैं। ऋग्वेदमें विधान किया हुआ कर्म ही पुष्प हैं। कर्मके व्यवहारमें आनेवाले सोमादि जल ही अमृत-रूप जल हैं उनमेंके रसको लेकर ये मधुमक्षिकारूप ऋचायें रसको उत्पन्न करती हैं अर्थात् जैसे मधुमक्खियें पुष्पों मेंसे रस लेकर मधु बनाती हैं तैसे ही ऋचा नामक मंत्र

ऋग्वेदमें विधान किये हुए कर्ममेंसे फलरूप रसको लेकर आदित्यके आश्रयसे रहने वाले मधुको उत्पन्न करते हैं कर्ममें प्रयोग किये हुए ये सकल ऋक्मंत्र ही सोम और घृत आदिके साथ अग्निमें अर्पित हो पकते हुए अमृत मय रसरूप बनजाते हैं ॥ २ ॥

एतमृग्वेदमभ्यतपंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( एतम् ) इस ( ऋग्वेदम् ) ऋग्वेद को ( अभ्यतपन् ) अभितप्त करती हुई ( अभितप्तस्य ) तपेहुए ( तस्य ) तिसका ( यशः ) यश ( तेजः ) तेज ( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय ( वीर्यम् ) बल ( अन्नाद्यम् ) खाने योग्य अन्न (रसः) रस ( अजायत ) उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

( भावार्थ )--जैसे मधुमक्षिकायें फलोंमेंसे रस लेती हुईं उस रसको अभितप्त और मधुरूपमें परिणत करती हैं तैसे ही ऋचा नामक मंत्र सकल कर्मोंमें स्थित जल-मय रसको ग्रहण करते हुए उस रसको अभितप्त करते हुए फल नामक मधुरूपमें परिणत करदेते हैं वह कर्ममें के जलमय रस अभितप्त होकर कीर्त्ति शरीरमेंके प्रकाश-रूप तेज शक्तियुक्त इंद्रियोंकी अविकलता बल और और भक्षण करने योग्य अन्न आदि रसरूपसे परिणत होजाते हैं यही मधु है ॥ ३ ॥ फेरि किज़॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदे-तदादित्यस्य रोहितꣳ रूपम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) वह यश आदि रस (व्यक्षरत्) विशेष रूपसे गमन करता हुआ (आदित्यम्) सूर्यको (अभितः) सब ओरसे ( अश्रयत् ) आश्रय करता हुआ ( वै ) निश्चय

( यत् ) जो ( एतत् ) यह (यत्) जो (रोहितम्) लाल (रूपम्) रूप है ( एतत् ) यह रस है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-यशसे लेकर अन्न पर्यंत रस विशेषरूप से फलने लगा और उसने आदित्यका चारों ओरसे आश्रय लिया, जो उदय होते हुए आदित्यका लाल २ रूप दीखता है वही यह रस है ॥ ४ ॥

तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ।

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूꣳष्येव मधुकृतो, यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( ये ) जो ( अस्य ) इसकी ( दक्षिणाः ) दक्षिणकी ओरकी ( रश्मयः ) किरणें हैं ( ताः, एव ) वह ही ( अस्य ) इसकी ( दक्षिणाः ) दाहिनी ओरकी ( मधुनाड्यः ) मधुनाड़ी हैं ( यजूंषि, एव ) यजु ही ( मधुकृतः ) मधुमक्खियें हैं ( यजुर्वेदः, एव ) यजुर्वेद ही ( पुष्पम् ) पुष्प है ( ताः ) वह ( अमृताः ) अमृतरूप (आपः) जल हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-और जो आदित्यकी दक्षिणकी ओरकी किरणें हैं वह ही इस शहद मुहालकी दक्षिणकी मधुनाड़ी हैं, यजुर्वेदके कर्ममें प्रयोग किये जानेवाले मंत्र ही मधुमक्खी हैं, यजुर्वेदमें विदित कर्म ही पुष्प है, सोम आदि जल ही अमृत रूप जल देते हैं ॥ १ ॥

तानि वा एतानि यजूꣳष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( तानि ) वह (एतानि)

ये ( यजूंषि ) यजु ( एतम् ) इस ( यजुर्वेदम् ) यजुर्वेदको ( अभ्यतपत् ) तपते हुए ( अभितप्तस्य ) तपे हुए ( तस्य ) तिसको ( यशः ) यश ( तेजः ) तेज ( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय ( वीर्यम् ) बल ( अन्नाद्यम् ) भक्षण करने योग्य अन्न ( रसः ) रस ( अजायत ) उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उन ही इन मधु मक्खिकारूप यजुओंने यजुर्वेदको तपा अर्थात् यजुर्वेदमें विधान कियेहुए कर्मों का निपीडन किया वा आलोचना की, उस आलोचित यागादि कर्मका कीर्त्ति, तेज, इन्द्रिय, बल और भक्षण करने योग्य अन्नरूप रस उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ अर्थात् द-क्षिण तरफ से॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदे-तदादित्यस्य शुक्लं रूपम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) वह ( व्यक्षरत् ) गमन करने लगा ( तत् ) वह ( आदित्यम् . अभितः ) आदित्यको चारों ओरसे ( अश्रयत् ) आश्रय करता हुआ ( वै ) निश्चय ( यत् ) जो (एतत्) यह (आदित्यस्य) सूर्यका (शुक्लम्) स्वेत (रूपम्) रूप है ( एतत् ) यह रस है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-कीर्त्तिसे लेकर अन्न पर्यंतका वह रस इधर उधरको गमन करने लगा, उसने आदित्यका सब ओरसे आश्रय किया जो यह सूर्यका स्वेतरूप दीखता है यह वही रस है ॥३॥

तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रती-च्यो मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( ये ) जो ( अस्य )

इसकी ( प्रत्यञ्चः ) पश्चिमकी ओरकी ( रश्मयः ) किरणें हैं (ताः एव ) वह ही ( अस्य ) इसकी (प्रतीच्यः) पश्चिमकी (मधुनाड्यः) मधुनाड़ियें हैं ( सामानि, एव ) साम ही ( मधुकृतः ) शहद बनानेवाली मक्षिका हैं ( सामवेदः, एव ) सामवेद ही ( पुष्पम् ) फूल है (ताः) वह (अमृताः) अमृतरूप (आपः) जल हैं ॥१॥

( भावार्थ )-और जो इसकी पश्चिमकी ओरकी किरणें हैं वह ही इसकी पश्चिमकी मधुनाड़ी हैं, सामवेदी कर्म में प्रयोग किये जानेवाले मन्त्र ही मधुमक्षिका हैं सामवेद में विहित कर्म ही पुष्प है, सोम आदि जल ही अमृत रूप जल हैं ॥ १ ॥

तानि वा एतानि सामान्येतं सामवेदमभ्यतपं-स्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( तानि ) वह ( एतानि ) यह ( सामानि ) साम ( एतम् ) इस ( सामवेदम् ) सामवेदको ( अभ्यतपन् ) तपतेहुए ( तस्य ) तिस ( अभितप्तस्य ) तपेहुए का ( यशः ) यश ( तेजः ) तेज ( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय ( वीर्यम् ) बल ( अन्नाद्यम् ) भक्षण करने योग्य अन्न ( रसः ) रस (अजायत ) उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उसमेंके रसको लेकर वही ये सामवेदके कर्ममें प्रयुक्त मंत्रोंने इस सामवेदमें विहित कर्मकी आलोचनाकी उस आलोचित याग आदि कर्मका यश,तेज, इंद्रिय, बल और भक्षण करने योग्य अन्न रूप रस उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदे-तदादित्यस्य कृष्णꣳ रूपम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) वह ( व्यक्षरत ) विशेषरूप से गमन करने लगा ( तत् ) वह ( आदित्यम् ) आदित्यको ( अभितः ) चारों ओरसे ( अश्रयत ) आश्रय करता हुआ ( वै ) निश्चय ( यत् ) जो ( एतत् ) यह ( आदित्यस्य ) आदित्यका ( कृष्णम् ) काला ( रूपम् ) रूप है ( तत् ) वह ( एतत् ) यह है

( भावार्थ )-वह यशसे अन्न पर्यंत रस विशेषरूप गमन करता हुआ चारों ओर से आदित्यमण्डलका आश्रय लेकर स्थित होता है, आदित्यका जो कृष्णरूप है वही यह रस है ॥ ३ ॥

तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--( अथ ) और ( ये ) जो ( अस्य ) इसके ( उदञ्चः ) उत्तरकी ओरकी ( रश्मयः ) किरणें हैं ( ताः, एव ) वह ही ( अस्य ) इसकी ( मधुनाड्यः ) मधुनाड़ी हैं ( अथर्वाङ्गिरसः, एव ) अथर्वाङ्गिरस मंत्रही ( मधुकृतः ) मधुमक्षिका हैं ( इतिहासपुराणम् ) इतिहास और पुराण ( पुष्पम् ) पुष्प है ( ताः ) वह ( अमृताः ) अमृतरूप ( आपः ) जल हैं १

( भावार्थ )--और जो इसकी उत्तरकी ओरकी किरणें हैं वह ही इसकी उत्तरकी ओरकी मधुनाड़ियें हैं, अथर्वा और अङ्गिराके देखेहुए कर्ममें प्रयोग किये जानेवाले मंत्र ही मधुमक्षिका हैं, इतिहास और पुराणके संबंधका कर्म ही पुष्प है और सोम आदिका जल ही अमृतरूप जल होता है ॥ १ ॥

ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपं-

स्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( ते ) वह ( एते ) ये ( अथर्वाङ्गिरसः ) अथर्वाङ्गिरस ( इतिहासपुराणम् ) इतिहास पुराणको ( अभ्यतपन् ) निष्पीड़न करते हुए ( अभितप्तस्य ) निष्पीड़ित हुए ( तस्य ) उसका ( यशः ) यश ( तेजः ) तेज ( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय ( वीर्यम् ) बल ( अन्नाद्यम् ) खाने योग्य अन्न ( रसः ) रस ( अजायत ) उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उन अथर्वा और अङ्गिराके देखेहुए मंत्रों ने इतिहास पुराणका निष्पीड़न किया उस निष्पीड़ित कर्मका कीर्त्ति, प्रकाश, इन्द्रिय, बल और भक्षण करने योग्य अन्नरूप रस उपजा ॥ २ ॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णं रूपम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) वह ( व्यक्षरत् ) विशेषरूप से गमन करता हुआ ( तत् ) वह ( आदित्यम् ) सूर्यको ( अभितः ) सब ओरसे ( अश्रयत् ) आश्रय करता हुआ ( वै ) निश्चय ( यत् ) जो ( एतत् ) यह ( आदित्यस्य ) आदित्यका ( परम् ) अत्यन्त ( कृष्णम् ) काला ( रूपम् ) रूप है ( तत् ) वह ( एतत् ) यह रस है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-वह कीर्त्तिसे लेकर अन्न पर्यन्त रस आदित्यमण्डलमें जा चारों ओरसे उसका ही आश्रय करके स्थित होगया, आदित्यका जो अतिकाला रूप साधकोंको दीखता है वही यह रस है ॥ ३ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधु-

नाड्यो गुह्या एवाऽऽदेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( ये ) जो ( अस्य ) इसकी ( ऊर्ध्वाः ) ऊपरके भागकी ( रश्मयः ) किरणें हैं ( ताः एव ) वह ही ( अस्य ) इस की ( ऊर्ध्वाः ) ऊपरकी ( मधुनाड्यः ) मधुनाड़ी हैं ( गुह्याः ) गुप्त रखने योग्य ( आदेशाः, एव ) आज्ञायें ही ( मधुकृतः ) मधुमक्षिका हैं (ब्रह्म, एव) प्रणव नामके ब्रह्म ही ( पुष्पम् ) पुष्प है ( ताः ) वह ( अमृताः ) अमृतरूप ( आपः ) जल है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—आदित्यकी ऊपरके भागकी जो किरणें हैं वह ही उसकी ऊपरी मधुनाड़ियें हैं, लोकके द्वारको उघाड़ो इत्यादि विधियें और कर्माङ्गसम्बन्धी सकल उपासनायें ही मधुमक्षिका हैं प्रणव नामक ब्रह्म ही पुष्प है ये सब उपासनायें ही अमृत रसरूपसे परिणामको प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥

ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( ते ) वह ( एते ) ये (गुह्याः) गोप्य ( आदेशाः ) आदेश ( एतत् ) इस (ब्रह्म)ब्रह्म को ( अभ्यतपन् ) अभितप्त करते हुए (अभितप्तस्य) अभितप्त हुए ( तस्य) उसका ( यशः ) यश (तेजः ) तेज ( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय (वीर्यम्) बल ( अन्नाद्यम् ) भक्षणयोग्य अन्न(रसः) रस ( अजायत ) उत्पन्न हुआ ॥ २॥

( भावार्थ )-उसके रसको लिये हुए ये सबउपास-

नामें ही प्रणव ब्रह्मको अभितप्त करती हैं, उस अभितप्त हुए प्रणवमेंसे कीर्त्ति तेज इन्द्रिय बल और अन्नरूप रस उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदे-
तदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ- ( तत् ) वह ( व्यक्षरत् ) विशेषरूप से गमन करता हुआ ( तत् ) वह ( आदित्यम् ) आदित्यको ( अभितः ) सब ओरसे ( अश्रयत् ) आश्रय करता हुआ ( यत् ) जो ( एतत् ) यह ( आदित्यस्य ) आदित्यके ( मध्ये ) मध्यमें ( क्षोभते इव ) चलता हुआसा दीखता है ( वै निश्चय ( तत् ) वह ( एतत् ) यही रस है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-वह कीर्त्तिसे लेकर अन्न पर्यन्त रस आदित्यमण्डलमें जाकर उसके ही आश्रयसे रहता है, आदित्यमें जो शास्त्रमें कहे हुए विषयमें एकाग्र चित्तवाले पुरुषको स्पन्दन होता दीखता है वही यह रस है ॥ ३ ॥

ते वा एते रसानां रसा वेदा हि रसास्तेषामेते
रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा
ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( ते ) वह ( एते ) यह ( रसानाम् ) रसोंके ( रसाः ) रस हैं ( वेदाः, हि ) वेद ही ( रसाः ) रस हैं ( तेषाम् ) उनके ( एते ) ये ( रसाः ) रस हैं ( तानि ) वह ( एतानि ) यह ( वै ) निश्चय ( अमृतानाम् ) अमृतोंके ( अमृतानि ) अमृत हैं ( वेदाः, हि ) वेद ही ( अमृताः ) अमृत हैं ( तेषाम् ) उनके ( एतानि ) ये ( अमृतानि ) अमृत हैं ॥

( भावार्थ )—आदित्यके ये लोहित आदि रूप ही रसोंमें श्रेष्ठ रस हैं, कर्म आदि भावको प्राप्त हुए वेद ही

त्रिलोकीके सारभूत होनेके कारण रस हैं और उनके ये लोहित आदिरूप रस हैं, इनसे ही अन्न आदि रसोंकी उत्पत्ति होती है । ये ही अमृतोंके अमृत हैं और इनका यह लोहित आदि रूप अमृत है, वेद ही अमृत हैं, वेद से ही और सकल अमृतोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) तिसमें ( यत् ) जो ( प्रथमम् ) पहला ( अमृतम् ) अमृत है ( तत् ) उसको ( अग्निना ) अग्निरूप ( मुखेन ) मुखके द्वारा ( वसवः ) वसु ( उपजीवन्ति ) जीवनका साधन करते हैं ( देवाः ) देवता ( न ) नहीं ( अश्नन्ति ) खाते हैं ( न ) नहीं ( पिबन्ति ) पीते हैं ( एतत्–एव ) इस ही ( अमृतम् ) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर ( तृप्यन्ति ) तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-आदित्यमें जो लोहितरूप पहिला अमृत है, उसको प्रातःसवनके अधिपति वसुदेवता अग्निरूप मुखसे ग्रहण करते हैं, निःसन्देह देवता न खाते हैं, न पीते हैं, किंतु इस अमृतको देखकर हीं तृप्त होजाते हैं । तात्पर्य यह है, कि–सूर्यका जो लोहितरूप है वही कीर्त्ति शरीरका तेज, इन्द्रियोंकी तथा शरीरकी सामर्थ्य और शरीरकी स्थितिका हेतु अन्न है तथा वही मधु वा अमृत है । शरीर और कारणके दोषोंसे रहित देवता उस अमृतका अपनी इन्द्रियोंसे अनुभवमात्र करके तृप्त होजाते हैं १

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति २

अन्वय और पदार्थ—( ते ) वह ( एतत् , एव ) इस ही

( रूपम् ) रूपके प्रति ( अभिसंविशन्ति ) उपरामको प्राप्त होते हैं ( एतस्मात् ) इस ( रूपात् ) रूपसे ( उद्यन्ति ) उत्साह वाले होते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )—वह वसु इस ही रूपकी ओरको देख, भोगका समय न जानकर उपरामको प्राप्त होते हैं और जब भोगका अवसर आता है तब अमृतके भोगके लिये इस रूपकी ओरको उत्साह वाले होते हैं ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाग्निनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति,स य एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद् रूपादुदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( एतत् ) इस ( अमृतम् ) अमृतको ( एवम् ) इसप्रकार ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( वसूनाम् , एव ) वसुओंमें का ही ( एकः ) एक ( भूत्वा ) होकर ( अग्निना, एव ) अग्निरूप ही ( मुखेन ) मुखसे ( एतत्, एव ) इस ही ( अमृतम् ) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर ( तृप्यति ) तृप्त होता है ( यः ) जो ( एतत्, एव ) इस ही ( रूपम् ) रूप के प्रति ( अभिसंविशति ) उपरामको प्राप्त होता है ( एतस्मात् ) इस ( रूपात् ) रूपसे ( उदेति ) उत्साह वाला होता है ( सः ) वह [ तथा भवति ] तैसा ही होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—जो इस अमृतकी इस रीतिसे उपासना करता है, वह वसुओंमेंका एक होकर अग्निरूप मुखसे ही इस अमृतका सब इन्द्रियोंके द्वारा अनुभव करके तृप्त होता है, इस रूपको देखकर भोगके अभावकालमें उपरत रहता है और भोगकालमें इस ही रूपके प्रति उत्साह वाला होता है वह भी वसुओंकी समान सबका इसी प्रकार अनुभव करता है ॥ ३ ॥ *

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपा दुद्यन्ति २

अन्वय और पदार्थ—( ते ) वह ( एतत्, एव ) इस ही ( रूपम् अभि ) रूपके प्रति (सं विशन्ति) उपरत होते हैं ( एतस्मात् ) इस ही ( रूपात् ) रूपसे ( उद्यन्ति ) उत्साहवाले होते है ॥२॥

( भावार्थ )—वह रुद्र इस ही रूपकी ओरको देख भोगका समय न जानकर उपरामको प्राप्त होते हैं और भोगका समय होने पर अमृतके भोगके लिये इस रूपके प्रति उत्साह वाले होते हैं ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो (एतत्) इस (अमृतम्) अमृतको ( एवम् ) इस प्रकार ( वेद ) उपासना करता है ( सः ) वह ( रुद्राणाम्, एव ) रुद्रोंमेंका ही ( एकः ) एक ( भूत्वा ) होकर ( इन्द्रेण, एव ) इन्द्ररूप ही ( मुखेन ) मुखसे ( एतदेव ) इस ही ( अमृतम् ) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर ( तृप्यति ) तृप्त होता है ( सः ) वह (एतत्-एव ) इस ही ( रूपम् ) रूपके प्रति ( संविशति ) उपरत होता है ( एतस्मात् ) इस ( रूपात् ) रूपसे ( उदेति ) उदयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—जो इस अमृतको इस प्रकार जानकर उपासना करता है वह रुद्रोंमेंका ही एक रुद्र होकर इन्द्ररूप मुख के द्वारा ग्रहण करनेके अनन्तर इस अमृतको देखकर ही तृप्त होजाता है, वह भोगकाल न होने पर इस रूप में ही प्रवेश करता है और भोगकालमें इस रूपसे ही उदयको प्राप्त होकर उत्साह वाला होता है ॥ ३ ॥

* स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता । पश्चादस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ४

अन्वय और पदार्थ—( यावत् ) जबतक ( आदित्यः ) आदित्य ( पुरस्तात् ) पूर्वमें ( उदेता ) उदय होता रहेगा ( पश्चात् ) पश्चिममें ( अस्तम् ) अस्तको ( एता ) प्राप्त होता रहेगा ( तावत् ) तबतक ( सः ) वह ( वसूनाम् एव ) वसुओंके ही ( आधिपत्यम् ) प्रभुत्वको ( स्वाराज्यम् ) स्वाराज्यको ( पर्येता ) पूर्ण रूपसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

( भावार्थ ) जबतक आदित्यका पूर्वमें उदय होता है और पश्चिममें अस्त होता है तबतक वह उपासक प्रसिद्ध वसुओंकी प्रभुताको और साम्राज्यको पाता है अर्थात् वसुओंका अधीन और उनका भोग्यरूप नहीं होता है ४

प्रधानता तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

अथ यद् द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥ 1

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत् ) जो ( द्वितीयम् ) दूसरा अमृत है ( तत् ) उसमें ( रुद्राः ) रुद्र ( इन्द्रेण ) इन्द्ररूप ( मुखेन ) मुखसे ( उपजीवन्ति ) उपजीवन करते हैं ( देवाः ) देवता ( वै ) निश्चय ( न ) नहीं ( अश्नन्ति ) भक्षण करते हैं ( न ) नहीं ( पिबन्ति ) पीते हैं ( एतत् ) इस ( अमृतम् ) अमृतको ( दृष्ट्वा, एव ) देखकर ही ( तृप्यन्ति ) तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-अब जो दूसरा शुक्लरूप अमृत है उसको मध्यदिन सवनके नियन्ता रुद्र इन्द्ररूप मुखसे ग्रहण करते हैं, वह देवता न खाते हैं, न पीते हैं, किंतु उस अमृत को देखकर ही तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--( यावत् ) जबतक ( आदित्यः ) आदित्य ( पुरस्तात् ) पूर्वमें ( उदेता ) उदय होगा ( पश्चात् ) पश्चिममें ( अस्तम्-एता ) अस्तको प्राप्त होगा ( द्विस्तावत् ) उससे द्विगुण काल ( दक्षिणतः ) दक्षिणमें ( उदेता ) उदय होगा ( उत्तरतः ) उत्तरमें ( अस्तम् एता ) अस्तको प्राप्त होगा ( तावत् ) उतने कालतक ( रुद्राणाम् एव ) रुद्रोंके ही ( आधिपत्यम् ) प्रभुत्वको ( स्वाराज्यम् ) स्वाराज्यको ( पर्येता ) पूर्ण रूपसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

[ भावार्थ ]-जबतक आदित्य पूर्व दिशामें उदय और पश्चिम दिशामें अस्त होता रहेगा और उससे द्विगुण कालतक दक्षिणमें उदय और उत्तरमें अस्त होता रहेगा उतने काल तक वह उपासक रुद्रोंके ही अधिपत्य तथा स्वाराज्यको पावेगा ॥ ४ ॥

तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

अथ यत् तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--( अथ ) और ( यत् ) जो ( तृतीयम् ) तीसरा ( अमृतम् ) अमृत है ( तत् ) उसको ( आदित्यः ) आदित्य ( वरुणेन ) वरुणरूप ( मुखेन ) मुखसे ( उपजीवन्ति ) उपजीवनका साधन करते है ( वै ) निश्चय ( देवाः ) देवता ( न ) नहीं अश्नन्ति ) खाते हैं ( न ) नहीं ( पिबन्ति ) पीते हैं

( एतत् एव ) इस ही ( अमृतम् ) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर ( तृप्यन्ति ) तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )—और जो तीसरा अमृत है उससे आदित्य अपना जीवन वरुणरूप मुखके द्वारा करते हैं, देवता न खाते हैं, न पीते हैं किन्तु इस अमृतको देखकर ही तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति २

अन्वय औरपदार्थ—( ते ) वह ( एतत्-एव ) इस ही ( रूपम्-अभि ) रूपके प्रति ( संविशन्ति ) उपरामको प्राप्त होते हैं ( एतस्मात् ) इस ( रूपात् ) रूपसे ( उद्यन्ति ) उदय को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वह आदित्य भोग न होनेके अवसरमें इस ही रूपके प्रति उपरामको प्राप्त होते हैं और भोग कालमें इस रूपके प्रति ही उद्योगवाले होते हैं ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एतत् ) इस ( अमृतम् ) अमृतको ( एवम् ) इसप्रकार ( वेद ) जानकर उपासना करता है ( सः ) वह ( आदित्यानाम्-एव ) आदित्योंमें का ही ( एकः ) एक ( भूत्वा ) होकर ( वरुणेन-एव ) वरुणरूप ही ( मुखेन ) मुखसे ( एतत् एव ) इस ही ( अमृतम् ) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर ( तृप्यति ) तृप्त होता है ( सः ) वह (एतत् एव ) इस ही ( रूपम्-अभि ) रूपके प्रति ( संविशति ) उपराम को प्राप्त होता है( एतस्मात् ) इस ( रूपात् ) रूपसे ( उदेति ) उदयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जो इस अमृतको इस प्रकार जानकर उपासना करता है वह आदित्योंमेंका एक आदित्य हो कर वरुणरूप मुखके द्वारा इस अमृतका सब इन्द्रियोंसे अनुभव करके ही तृप्त होजाता है तथा वह भोगकाल न होने पर इस रूपमें प्रवेश करके उपरत होजाता है और भोगकालमें इस रूपमेंसे ही उदयको प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥

स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेताऽऽदित्यानामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यावत् ) जबतक ( आदित्यः ) आदित्य ( दक्षिणतः ) दक्षिणमें ( उदेता ) उदय होता रहेगा ( उत्तरतः ) उत्तरमें ( अस्तम्-एता ) अस्तको प्राप्त होता रहेगा (द्विस्तावत्) उससे द्विगुण समय तक (पश्चात्) पश्चिममे (उदेता) उदय होता रहेगा ( उत्तरतः ) उत्तरमें ( अस्तम्--एता ) अस्तको प्राप्त होता रहेगा ( तावत् ) तबतक ( सः ) वह ( आदित्यानाम् एव ) आदित्योंके ही (आधिपत्यम् ) प्रभुत्वको ( स्वाराज्यम् ) स्वाराज्यको ( पर्येता ) पूर्ण रूपसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

( भावार्थ ) जबतक सूर्य दक्षिणमें उदय होता रहेगा और उत्तरमें अस्त होता रहेगा तथा उससे द्विगुण समय पर्यन्त पश्चिममें उदय होता रहेगा और पूर्वमें अस्त होता रहेगा तबतक वह आदित्योंकी प्रभुता और स्वाराज्यको पावेगा ॥ ४ ॥

तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत् ) जो (चतुर्थम्) चौथा ( अमृतम् ) अमृत है ( तत् ) उसको ( मरुतः ) मरुत् ( सोमेन ) सोमरूप ( मुखेन ) मुखसे ( उपजीवन्ति ) जीवनका साधन करते हैं ( देवाः ) देवता (वै) निश्चय (न) नहीं (अश्नन्ति) खाते हैं ( न ) नहीं ( पिबन्ति ) पीते हैं ( एतत्-एव ) इस ही (अमृतम्) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर (तृप्यन्ति) तृप्त होते हैं ॥१॥

( भावार्थ )-और जो चौथा अमृत है उससे देवता सोमरूप मुखके द्वारा जीवन धारण करते हैं, देवता न खाते हैं न पीते हैं किन्तु इस अमृतको देखकर ही तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-( ते ) वह ( एतत् . एव ) इस ही ( रूपम्-अभि ) रूपके प्रति ( संविशन्ति ) उपरामको प्राप्त होते हैं ( एतस्मात् ) इस ( रूपात् ) रूपसे ( उद्यन्ति ) उदय को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वह भोग न होनेके समय इस ही रूपमें प्रवेश करके उपरामको प्राप्त होते हैं और भोगकालमें इस ही रूपमें से उदयको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ प्रेस्थान तारे

स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एतत्-एव ) इस ही (अमृतम्) अमृतको (वेद) जानकर उपासना करता है (सः) वह (मरुताम्-एव) मरुतोंमेंका ही (एकः) एक (भूत्वा) होकर(सोमेन-एव ) सोमरूप ही (मुखेन) मुखसे (एतत्-एव) इस ही (अमृतम्) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर ( तृप्यति ) तृप्त होजाता है (सः) वह

( एतत् एव ) इस ही ( रूपम्-अभि ) रूपके प्रति ( संविशति ) उपरामको प्राप्त होता है (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उदेति) उदयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जो इस अमृतको इसप्रकार जानकर उपासना करना है वह मरुतोंमें का ही एक होकर सोम रूप मुखके द्वारा इस अमृतका सकल करणोंसे अनुभव करके तृप्त होजाता है तथा वह भोगकाल न होनेपर इस रूपके प्रति उदासीन रहता है और भोगकालमें उत्साह युक्त होता है ॥ ३ ॥

स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यावत् ) जबतक ( आदित्यः ) आदित्य ( पश्चात् ) पश्चिममें ( उदेता ) उदय होता रहेगा ( पुरस्तात् ) पूर्वमें ( अस्तम्-एता ) अस्तको प्राप्त होगा (द्विस्तावत्) उससे द्विगुण काल तक ( उत्तरतः ) उत्तरमें ( उदेता ) उदय होता रहेगा ( दक्षिणतः ) दक्षिणमें (अस्तम्, एता) अस्त होता रहेगा ( तावत् ) तबतक ( सः ) वह ( मरुताम्, एव ) मरुतोंके ही ( आधिपत्यम् ) प्रभुत्वको ( स्वाराज्यम् ) स्वाराज्यको ( पर्येता ) प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जबतक सूर्य पश्चिममें उदय और पूर्वमें अस्त होता रहेगा और उससे दुगने समय तक उत्तर म उदय और दक्षिणमें अस्त होता रहेगा, उतने समय तक वह उपासक मरुतोंके ही प्रभुत्व और स्वाराज्यको पावेगा ॥ ४ ॥

तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

ब्रह्माजीके॥ — प्रधानतासे॥



अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत् ) जो (पञ्चमम्) पांचवां ( अमृतम् ) अमृत है ( तत् ) उसको ( साध्याः ) साध्य ( ब्रह्मणा ) ब्रह्मरूप ( मुखेन ) मुखसे (उपजीवन्ति) उपजीवन का साधन करते हैं ( देवाः ) देवता ( वै ) निश्चय ( न ) नहीं ( अश्नन्ति ) खाते हैं (न) नहीं ( पिबन्ति ) पीते हैं ( एतत्-एव ) इस ही ( अमृतम् ) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर (तृप्यन्ति) तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-और जो पांचवां अमृत है उसको साध्य ब्रह्मरूप मुखसे ग्रहण करते हैं, वह न खाते हैं, न पीते हैं, इस अमृतको देखकर ही तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभि संविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति॥

अन्वय और पदार्थ—( ते ) वह ( एतत्-एव ) इस ही ( रूपम्-अभि ) रूपको लक्ष्य करके ( संविशन्ति ) उपरामको प्राप्त होते हैं ( एतस्मात् ) इस (रूपात्) रूपसे ( उद्यन्ति ) उदय को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वह भोग न होनेके समय इस रूपमें ही उपरामको प्राप्त होते हैं और भोगके समय इस, रूप मेंसे ही उदयको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( एतत् ) इस ( अमृतम् ) अमृतको ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( साध्यानाम्--एव ) साध्योंमेंका ही ( एकः ) एक ( भूत्वा ) होकर। (ब्रह्मणा-एव ) ब्रह्मरूप ही ( मुखेन ) मुखसे (एतत्--एव) इस ही ( अमृतम् ) अमृतको ( दृष्ट्वा ) देखकर (तृप्यति) तृप्त होता है ( सः ) वह ( एतत्--एव ) इस ही ( रूपम्–अभि ) रूपके प्रति ( संविशति ) उपरामको प्राप्त होता है ( एतस्मात् ) इस ( रूपात् ) रूप से ( उदेति ) उदयको प्राप्त होता है॥ ३ ॥

( भावार्थ )—जो इस अमृतको इसप्रकार जानकर उपासना करता है वह साध्योंमेंका ही एक साध्य होकर ब्रह्मरूप मुखसे इस अमृतको ग्रहण करताहुआ सब करणोंसे उसका अनुभव करके ही तृप्त होजाता है वह भोगका काल न होने पर इस रूपमें ही प्रवेश करके उपरामको प्राप्त होता है और भोगकालमें इस रूपमेंसे ही उदयको प्राप्त होता हुआ उत्साहयुक्त होता है ॥ ३ ॥

स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्वमुदेताऽर्वागस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यावत् ) जबतक ( आदित्यः ) आदित्य ( उत्तरतः ) उत्तरमें ( उदेता ) उदय होता रहेगा ( दक्षिणतः ) दक्षिणमें ( अस्तम्–एता ) अस्तको प्राप्त होगा ( द्विस्तावत् ) उससे द्विगुण कालतक (ऊर्ध्वम्) ऊपरको (उदेता) उदय होता रहेगा ( अर्वाक् ) नीचे ( अस्तम्--एता ) अस्त होता रहेगा ( तावत् ) तबतक ( सः ) वह (साध्यानाम्--एव) साध्यों के ही ( आधिपत्यम् ) प्रभुत्वको ( स्वाराज्यम् ) स्वाराज्यको ( पर्येता ) पावेगा ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जबतक आदित्य उत्तरमें उदय होता रहेगा, दक्षिणमें अस्त होता रहेगा और उससे दुगने समयतक ऊपरको उदय और नीचेको अस्त होता रहेगा तबतक वह उपासक साध्योंके प्रभुत्व और स्वाराज्य को पावेगा ॥ ४ ॥

तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

**अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेषः श्लोकः ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) इसके अनन्तर (ततः) तिस स्थानसे ( ऊर्ध्वः ) ऊपर ( उदेत्य ) उदयको प्राप्त होकर ( नैव ) नहीं ( उदेता ) उदयको प्राप्त होगा ( न ) नहीं ( अस्तम् एता ) अस्तको प्राप्त होगा ( एकलः, एव ) अकेला ही ( मध्ये ) मध्यमें ( स्थाता ) स्थित होगा ( तत् ) उसके विषयमें ( एषः ) यह ( श्लोकः ) श्लोक है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—प्राणियोंको अपने २ कर्मोंका फल देना रूप अनुग्रह करनेके अनन्तर ब्रह्मरूप हो अपनी महिमा में प्रकाश पाकर, जिनके लिये सूर्य उदय होता है उन प्राणियोंका अभाव होनेके कारण अपनी महिमामें स्थित होकर न फिर उदय ही पावेगा और न अस्तको ही प्राप्त होगा किंतु अद्वितीय होकर आत्मस्वरूप में ही स्थित होगा। ब्रह्मलोकमें सूर्यका उदय और अस्त नहीं होता है, तहाँ ही किसी उपासकने यह मन्त्र कहा है, कि-॥१॥

**न वै तत्र निम्लोच नोदियाय कदाचन। देवास्तेनाहं सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥ २ ॥**

अन्वय और पदार्थ—( तत्र ) तिस ब्रह्मलोकमें ( वै ) निश्चय ( न ) नहीं है ( कदाचन ) कभी ( निम्लोच न ) अस्त

नहीं होता है ( उदियाय न ) उदय नहीं होता ( तेन ) तिससे (देवाः) हे देवताओं ! (सत्येन) सत्य करके (अहम्) मैं (ब्रह्मणा) ब्रह्मसे ( मा) नहीं ( विराधिषि ) विरोध करूँ ॥ २ ॥

( भावार्थ)-उस ब्रह्मलोकमें निःसंदेह सूर्य रात्रि दिन से मनुष्यकी आयुका नाश नहीं करता है। तहां किसी भी कारणसे कभी भी सूर्यका अस्त नहीं होता है, तथा उदय भी नहीं होता है, हे देवताओं !! मैं सत्य कहता हूं, उस सत्य के प्रभाव से मैं ब्रह्म की प्राप्तिसे विलग न होऊँ ॥ २ ॥

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ— (यः) जो (एताम्) इस ( ब्रह्मोपनिषदम् ) वेदके रहस्यको ( एवम् ) इसप्रकार (वेद) जानता है ( अस्मै) इसके लिये ( वै ह ) निश्चय ( न ) नहीं (उदेति) उदय होता है ( न ) नहीं ( निम्लोचति ) अस्त होता है ( अस्मै) इस के लिये ( सकृत् ) एकसाथ ( दिवा ह, एव ) दिन ही (भवति) होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जो इस वेदके रहस्य रूप मधुविद्याको इस प्रकार जानता है, उस उपासकके लिये निःसन्देह सूर्यका उदय तथा अस्त नहीं होता है, किन्तु उसके लिये सदा दिन ही रहता है ॥ ३ ॥ विराठ्को॥

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्मप्रोवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) उस ( ह ) प्रसिद्ध ( एतत् ) इसको ( ब्रह्मा ) ब्रह्मा ( प्रजापतये ) प्रजापतिके अर्थ ( उवाच ) कहता हुआ ( प्रजापतिः ) प्रजापति (मनवे) मनुके अर्थ (मनुः) मनु ( प्रजाभ्यः ) प्रजाओंके अर्थ कहता हुआ ( तत् ) उस (ह) प्रसिद्ध ( एतत् ) इस ( ब्रह्म ) ब्रह्मको ( पिता ) अरुणि नामका पिता ( ज्येष्ठाय ) बड़े ( उद्दालकाय ) उद्दालक नामवाले ( आरुणये ) आरुणी ( पुत्राय ) पुत्रके अर्थ (प्रोवाच) कहता हुआ ॥

( भावार्थ )—यह प्रसिद्ध मधुविज्ञान ब्रह्माने प्रजापति से,प्रजापतिने मनुसे और मनुने अपनी सन्तानोंसे कहा इस ब्रह्मविज्ञानको अरुणि मुनिने अपने बड़े पुत्र उद्दालक से कहा ॥ ४ ॥

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्रणाय्याय वान्तेवासिने ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( वाव ) प्रसिद्ध ( तत् ) वह (इदम्) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म ( पिता ) पिता ( ज्येष्ठाय ) बड़े ( पुत्राय ) पुत्रको ( वा ) या ( प्रणाय्याय ) योग्य ( अन्तेवासिने ) विद्यार्थीको ( प्रब्रूयात् ) कहै ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—यह प्रसिद्ध ब्रह्मविज्ञान पिता बड़े पुत्र से और गुरु योग्य शिष्यसे कहै ॥ ५ ॥

नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यदि ) जो ( अस्मै ) इसको ( अद्भिः ) समुद्ररूप जलसे (परिगृहीताम्) परिवेष्टित ( धनस्य ) पूर्णाम् ) धनसे भरी हुई ( इमाम्—अपि ) इस वसुधाको भी ( दद्यात् ) देय ( तदा—अपि ) तो भी ( अन्यस्मै ) और ( कस्मै-

चन ) किसीको भी ( न ) नहीं देय (एतत् एव यह ही (ततः) तिससे ( भूयः ) अधिक है ( इति ) इस कारणसे ॥ ६ ॥

( भावार्थ)—यदि आचार्यको कोई समुद्रसे घिरी और धन से भरी हुई यह समस्त पृथिवी मधुविद्याके बदले में देय तो भी उसको यह मधुविद्या न देय क्योंकि—यह मधुविद्या उस धन भरे भूमण्डलसे भी अधिक मूल्यका पदार्थ है ॥ ६ ॥

तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः

**गायत्री वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किञ्च वाग् वै गायत्री वाग्वा इदꣳ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ—( इदम् ) यह (सर्वम्) सब (भूतम्) प्राणिसमूह ( यत् किञ्च ) जो कुछ ( इदम् ) यह है ( वै ) निश्चय ( गायत्री ) गायत्री है ( वाक्--वै ) वाणी ही ( गायत्री ) गायत्री है ( वाक् वै ) वाणी ही ( इदम् ) इस ( सर्वम् ) सब (भूतम् ) प्राणिसमूहको ( गायति) कहती है (च) और (त्रायते) रक्षा करती है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—यह सकल प्राणियोंका समूह अथवा यह जो कुछ चराचर है, यह सब गायत्री हीं है क्योंकि गायत्रीका कारण शब्दरूप वाणी है, वह गायत्री ही है वह गायत्रीका कारणरूप वाणी ही इन सब भूतोंका, यह गौ है, यह घोड़ा है, इस प्रकार वर्णन करती है और इससे भय न कर, ऐसे कथनके द्वारा उनकी भयसे रक्षा करती है। वाणी और गायत्रीमें भेद न होनेके कारणसे वाणी जो कुछ कहती वा रक्षा करती है वह मानो गायत्री ही कहती और रक्षा करती है ॥ १ ॥

**या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याᳬं हीदᳬं सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते २**

अन्वय और पदार्थ ( वै ) निश्चय ( या ) जो ( सा ) वह ( गायत्री ) गायत्री है ( इयम्-वाव ) यह ही (सा) वह (या-इयम् ) जो यह ( पृथिवी ) पृथिवी है ( अस्याम्- हि ) इसमें ही ( इदम् ) यह (र्वं स भूतम् ) सब प्राणिसमूह ( प्रतिष्ठितम् ) स्थित है ( एताम्-एव ) इसको ही ( न--अतिशीयते ) अतिक्रमण नहीं करते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो सर्वभूतरूप प्रसिद्ध गायत्री है वह यही है जो कि यह पृथिवी है, सकल भूत इस पृथिवीके आश्रय से स्थित हैं, कोई भी इस पृथिवीके आश्रयको त्यागकर स्थित नहीं रह सकता, इस कारण सकल भूतोंके संबन्ध से गायत्री पृथिवी है ॥ २ ॥

**या वै सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमास्मिन् हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ३ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( या ) जो ( सा ) वह ( पृथिवी ) पृथिवी है ( इयम् वाव ) यह ही ( सा ) वह है ( यत् इदम् ) जो यह ( अस्मिन् पुरुषे) इस पुरुषमें (शरीरम्) शरीर है (अस्मिन् हि ) इसमें ही ( इमे प्राणाः ) यह प्राण ( प्रतिष्ठिताः ) स्थित हैं ( एतत्--एव ) इसको ही ( न अतिशीयन्ते ) उल्लंघन नहीं करसकते ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जो यह प्रसिद्धपृथिवीरूप गायत्री है यही वह है। जो यह इस पुरुषमें शरीर है। इस शरीरमें ये भूत शब्दसे कहे जाने वाले प्राण स्थित हैं और ये प्राण

इस शरीरको छोड़कर नहीं रहसकते, इसकारण सकल भूतरूप प्राणोंके संबन्ध से गायत्री हृदय है ॥ ३ ॥

यद्वै तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे हृदयमस्मिन् हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ- ( वै ) निश्चय ( यत् ) जो ( तत् ) वह ( पुरुषे ) पुरुषमें ( शरीरम् ) शरीर है (इदम् वाव) यह ही ( तत् ) वह है ( अस्मिन् ) इस ( पुरुषे ) पुरुषमें ( यत् इदम् ) जो यह ( अन्तः हृदयम् ) भीतर हृदय है ( अस्मिन् हि ) इसमे ही ( इमे प्राणाः ) ये प्राण ( प्रतिष्ठिताः ) स्थित हैं ( एतत् एव ) इसको ही ( न अतिशीयन्ते ) उल्लंघन करके स्थित नहीं रह सकते ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जो यह पुरुषमें गायत्रीरूप शरीर है, यही पुरुषका शरीरके भीतरका हृदय है, क्योंकि इस हृदयमें प्राण वा सब इन्द्रियें प्रतिष्ठित हैं और वह इस हृदयकमलको त्यागकर नहीं रहसकतीं, इसकारण सकल भूतरूप प्राणोंके सम्बन्धसे गायत्री हृदय है ॥ ४ ॥

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सा ) वह (एषा) यह (गायत्री) गायत्री ( चतुष्पदा ) चार चरणवाली ( षड्विधा ) छः प्रकार की है ( तत्-एतत् ) सो यह ( ऋचा ) मन्त्रने ( अभ्यनूक्तम् ) कहा है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-वह यह गायत्री जिनमें छः अक्षर होते हैं ऐसे चार पदों वाली और वाणी, भूत, पृथिवी,

शरीर, हृदय और प्राणरूप छःप्रकार वाली है। यह बात आगेके ऋक्- मन्त्रोंसे भी प्रकाशित होती है ॥ ५ ॥

तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषःपादो-
ऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ॥६॥

अन्वय और पदार्थ-( तावान् ) उतना ( अस्य ) इस गायत्री नामक ब्रह्मका ( महिमा ) विभूतिविस्तार है (च) और (पूरुषः ) पुरुष ( ततः ) तिससे (ज्यायान् ) महान् है ( सर्वा भूतानि ) सकल भूत ( अस्य ) इसका ( पादः ) एक पाद है ( अस्य ) इसका ( अमृतम् ) अमृतरूप ( त्रिपाद् ) तीन पाद ( दिवि ) द्युलोकमें स्थित है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-यह जो गायत्रीरूप ब्रह्मके चार पद और छः प्रकार कहे यह सब उसकी विभूतिका विस्तार है, पुरुष इस गायत्रीकी विभूतिसे अतिमहान् है,सकल लोक इस पुरुषका एक पाद है और इसके अमृतरूप तीन पाद स्वर्गलोक या प्रकाशमय आत्मस्वरूपमें स्थित हैं ॥६॥

यद्वै तद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादा-
काशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( यत् ) जो ( तत् ) वह ( वाव ) प्रसिद्ध ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) ऐसा कहा है (तत्) वह ( इदम् ) यह है ( यत् ) जो ( अयम् ) यह ( पुरुषात् ) पुरुषसे बहिर्धा ) बाहर ( आकाशः ) आकाश है ( यः ) जो ( सः ) वह ( पुरुषात् ) पुरुषसे ( बहिर्धा, वै ) बाहर ( आकाशः ) आकाश है ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-जिसमें अमृत तत्व प्रधान है ऐसा जो त्रिपाद ब्रह्म गायत्रीके द्वारा कहा है वह यही है। पुरुष

के बाहर बाह्य इन्द्रियोंका विषय जो जागरितस्थानरूप महाकाश है वह भी यह ब्रह्म ही है ॥ ७ ॥

**अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः ॥ ८ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( अयम् वाव ) यह ही ( सः ) वह है ( यः, अयम् ) जो यह ( पुरुषे-अन्तः ) पुरुषके शरीरके भीतर ( आकाशः ) आकाश है ( यः ) जो ( वै ) निश्चय ( सः ) वह ( पुरुषे अन्तः ) पुरुषके भीतर ( आकाशः ) आकाश है ॥ ८ ॥

( भावार्थ )-पुरुषके शरीरके भीतर जो आकाश है वह भी यह ब्रह्म ही है अर्थात् अन्तरिन्द्रियका विषयी-भूत स्वप्नस्थानरूप शरीराकाश भी वह ब्रह्म ही है ॥८॥

**अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्त-देतत्पूर्णमप्रवर्त्ति पूर्णामप्रवर्त्तिनीᳪश्रियं लभते य एवं वेद ॥ ९ ॥**

अन्वय और पदाथ--( अयम्, वाव ) यह ही ( सः ) वह है ( यः अयम् ) जो यह ( हृदये अन्तः ) हृदयके भीतर ( आकाशः ) आकाश है ( तत् ) वह ( एतत् ) यह ( पूर्णम् ) सर्वव्यापक है ( अप्रवर्त्ति ) जन्ममरणरहित है ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( पूर्णाम् ) पूर्ण ( अप्रवर्त्ति-नीम् ) नाश रहित ( श्रियम् ) विभूतिको ( लभते ) पाता है ९

( भावार्थ )-पुरुषके हृदयके भीतर वर्त्तमान इन्द्रियों के अगोचर सुषुप्तस्थानरूप जो हृदयाकाश है वह, भी यह ब्रह्म ही है, यह ब्रह्म पूर्ण और जन्मनाशसे रहित है, जो ब्रह्मको ऐसा जानता है वह पूर्ण और अविनाशी ऐश्वर्यको पाता है ॥ ९ ॥

तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः स योऽस्य प्राङ् सुषिः स प्राणस्तच्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽन्नाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्य ) तिस ( ह ) प्रसिद्ध ( एतस्य ) इस हृदयके ( वै ) निश्चय (पञ्च ) पांच (देवसुषयः) देवताओंसे अधिष्ठित छिद्र हैं ( अस्य ) इसका (यः) जो (प्राङ्) पूर्वका ( सुषिः ) छिद्र है ( सः ) वह ( प्राणः ) प्राण है ( तत् ) वह ( चक्षुः ) चक्षु है ( सः ) वह (आदित्यः) आदित्य है ( तत् ) वह ( एतत् ) यह (तेजः ) तेज है (अन्नाद्यम्) अन्नको भक्षण करनेवाला ( इति ) ऐसा जानकर ( उपासीत ) उपासना करै ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( तेजस्वी ) तेजस्वी ( अन्नादः ) अन्नका भोक्ता ( भवति ) होता है ॥१॥

( भावार्थ )-इस हृदयके पांच प्राण और आदित्य आदि देवताओंसे रक्षित परमात्मा की प्राप्तिके द्वाररूप छिद्र हैं। उस परमात्माके स्थानरूप इस हृदयकमलका जो पूर्वकी ओरका छिद्र है उसमें जो स्थित है वह प्राण है। जो वायु हृदयके पूर्वके छिद्रसे चलता है वह प्राण कहलाता है उसका और चक्षुका सम्बन्ध है, चक्षुका अधिष्ठाता आदित्य है, वह प्राण परमात्माका द्वारपाल है इस कारण परमात्मा को पानेका अभिलाषी पुरुष ऐसे इस प्राणको तेजःस्वरूप और अन्नको भक्षण करनेवाला जानकर उपासना करै। जो ऐसा जानकर उपासना करता है, वह तेजस्वी और अजीर्णरोगसे रहित होता है। प्राण चक्षु इन्द्रिय और सूर्यका परस्पर सम्बन्ध है, इसकारण इन तीनोंका उपा-

सनाके लिये अभेद कहा है, यही बात आगेके मन्त्रोंमें समझो । प्राणका उपासक तेजस्वी और अजीर्ण रोगसे रहित होता है यह उपासनाका गौण फल है, और उपासनाके द्वारा वशमें किया हुआ प्राणरूप द्वारपाल परमात्माकी प्राप्तिका हेतु होता है, यह मुख्य फल है । इसी प्रकार गौण और मुख्य फलका भेद अगले मन्त्रोंमें भी समझना चाहिये ॥ १ ॥

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रं स चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत श्रीमान् यशस्वी भवति य एवं वेद ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यः ) जो ( अस्य ) इसका ( दक्षिणः ) दक्षिणकी ओरका ( सुषिः ) छिद्र है (सः) वह ( व्यानः ) व्यान है ( तत् ) वह ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र है ( सः ) वह ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा है ( तत् ) वह ( एतत् ) यह ( श्रीः ) विभूति है ( च ) और ( यशः-च ) यश भी है ( इति ) ऐसा जानकर ( उपासीत ) उपासना करै ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( श्रीमान् ) ऐश्वर्यवान् ( यशस्वी) कीर्त्तिमान् ( भवति ) होता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-इस हृदयके दक्षिणकी ओरका जो द्वार है, उसमें स्थित जो वायु है वह व्यान है, वह श्रोत्र है, वह चन्द्रमा है, वह व्यान विभूति तथा कीर्त्ति है ऐसा जानकर उपासना करै, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह श्रीमान् और कीर्त्तिमान् होता है ॥ २ ॥

अथ योऽस्य प्रत्यङ् सुषिः सोऽपानः सा वाक् सोऽग्निस्तदेतद् ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपासीत

ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यः ) जो ( अस्य ) इसका ( प्रत्यक् ) पश्चिमका ( सुषिः ) छिद्र है ( सः ) वह ( अपानः ) अपान है ( सा ) वह ( वाक् ) वाणी है ( सः ) वह ( अग्निः ) अग्नि है ( तत् ) वह ( एतत् ) यह ( ब्रह्मवर्चसम् ) स्वाध्यायसे उत्पन्न होनेवाला तेजःस्वरूप ( अन्नाद्यम् ) अन्नको भक्षण करनेवाला है ( इति ) ऐसा जानकर ( उपासीत ) उपासना करै ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( ब्रह्मवर्चस्वी ) ब्रह्म तेजसे युक्त ( अन्नादः ) अन्नका भक्षण करनेवाला ( भवति होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )- इस हृदयका जो पश्चिमकी ओरका द्वार है, उसमें रहनेवाला जो वायु है वह अपान है, वह वाणी है, वह अग्नि है। इस अपानको जो स्वाध्याय से उत्पन्न हुआ तेजःस्वरूप और अन्नको भक्षण करने वाला जानकर उपासना करता है वह स्वाध्यायसे उत्पन्न हुए ब्रह्मतेजवाला और प्रदीप्त जठराग्निवाला होता है ॥ ३ ॥

अथ योऽस्योदङ् सुषिः स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तदेतत्कीर्त्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्त्तिमान् व्युष्टिमान् भवति य एवं वेद ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( अस्य ) इसका ( यः ) जो ( उदङ् ) उत्तरका ( सुषिः ) छिद्र है ( सः ) वह ( समानः ) समान है ( तत् ) वह ( मनः ) मन है ( सः ) वह ( पर्जन्यः ) मेघ है ( तत् ) सो ( एतत् ) यह ( कीर्त्तिः ) कीर्त्ति है ( च ) और ( व्युष्टिः, च ) कान्ति भी है ( इति ) ऐसा जान कर ( उपासीत ) उपासना करै ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा

( वेद ) जानता है ( कीर्त्तिमान् ) कीर्तिवाला ( व्युष्टिमान् ) कान्तिवाला ( भवति ) होता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-इस हृदयका जो उत्तरकी ओर द्वार है, उसमें स्थित जो वायु वह समान है, वह अन्तःकरण है, वह वृष्टिका देवता पर्जन्य है, ऐसे इस समानको यश और कान्तिरूप जानकर उपासना करै, जो ऐसा जान कर उपासना करता है वह कीर्त्तिमान् और कान्तिमान् होता है ॥ ४ ॥

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौ- जस्वी महस्वान् भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यः ) जो ( अस्य ) इसका ( ऊर्ध्वः ) ऊपरका ( सुषिः ) द्वार है ( सः ) वह ( उदानः ) उदान है ( सः ) वह ( वायुः ) वायु है ( सः ) वह ( आकाशः ) आकाश है ( तत् ) सो ( एतत् ) यह ( ओजः ) ओज है ( च ) और ( महः-च ) मह भी है ( इति ) ऐसा जानकर ( उपासीत ) उपासना करै ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( ओजस्वी ) ओजवाला ( च ) और ( महस्वान् ) महत्त्ववाला ( भवति ) होता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-और इस हृदयका जो ऊपरका द्वार है, उसमें रहनेवाला जो वायु है वह उदान है, वह वायु है, वह आकाश है, वही मनोबल और ज्ञानेन्द्रियोंका बल है ऐसा जानकर उपासना करै, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह मनके और ज्ञानेन्द्रियोंके बलको पाता है ५

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्

स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्येत स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेद॥६॥

अन्वय और पदार्थ—( वै ) निश्चय (ते) वह (एते ) ये ( पञ्च ) पांच ( ब्रह्मपुरुषाः ) परमात्माके पुरुष ( स्वर्गस्य-लोकस्य ) स्वर्गलोकके ( द्वारपाः ) द्वारपाल हैं ( सः ) वह ( यः ) जो ( एतान् ) इन ( पञ्च ) पांच ( ब्रह्मपुरुषान् ) ब्रह्मपुरुषोंको ( स्वर्गस्य-लोकस्य ) स्वर्गलोकके ( द्वारपान् ) द्वार पाल ( एवम् ) इसप्रकार ( वेद ) जानता है ( अस्य ) इसके ( कुले ) कुलमें ( वीरः ) वीर ( जायते ) होता है ( यः, एतान् पञ्च, ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य, लोकस्य, द्वारपान्, एवं, वेद ) जो इन पाँच ब्रह्मपुरुषोंको स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं ऐसा जानता है वह ( स्वर्गम् - लोकम् ) स्वर्गलोकको ( प्रतिपद्यते ) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-जो ये प्रसिद्ध हृदयमेंके परमात्माके पांच पुरुष हैं ये स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं, जो इन पाँच ब्रह्म-पुरुषोंको स्वर्गलोकके द्वारपाल जानकर उपासना करता है, उसके कुलमें वीर पुरुष उत्पन्न होता है और वह स्वर्ग-लोकको पाता है, बहिर्मुख होकर प्रवृत्त हुए इन चक्षु, श्रोत्र, वाणी मन और प्राणसे हृदयमेंके ब्रह्मकी प्राप्तिके द्वार ढके हुए हैं तथा विषयोंसे हटेहुए इन ही करणोंसे हृदयमेंके ब्रह्मकी प्राप्तिके द्वार समाधि आदिके द्वारा उघड़ जाते हैं, इसकारण ही इनको द्वारपाल कहा है॥६॥

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा

दृष्टिर्यत्रैतदस्मिञ्छरीरे संस्पर्शेनोष्णिमानं विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णावपि गृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद् दृष्टञ्च श्रुतञ्चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ (अथ) और (अतः) इस (दिवः) द्युलोक से (परः) उत्कृष्ट (यत्) जो (ज्योतिः) ज्योति (दीप्यते) दीप्त होता है (विश्वतः) विश्वके (पृष्ठेषु) ऊपर के (सर्वतः) सबके (पृष्ठेषु) ऊपरके (उत्तमेषु) उत्तम (अनुत्तमेषु) अनुत्तम (लोकेषु) लोकों में [दीप्यते] दीप्त होता है (इदं वाव) यह ही [ब्रह्म] ब्रह्म है (अस्मिन् पुरुषे अन्तः) इस पुरुषके भीतर (तत्) वह (इदम्) यह (यत्) जो (ज्योतिः) ज्योति है (तस्य) उसकी (एषा) यह (दृष्टिः) दर्शन है (यत्र) जिस कालमें (अस्मिन् शरीरे) इस शरीरमें (संस्पर्शेन) स्पर्शके द्वारा (उष्णिमानम्) गरमी को (विजानाति) जानता है (एतत्) यह है (तस्य) उसका (एषा) यह श्रुतिः) श्रवण है (यत्र) जिस कालमें (कर्णौ) कान (अपिगृह्य) ढक कर (निनदम् इव) रथकी घरघराहट से शब्दको (नदथुः-इव) बैलके डकरानेकेसे शब्दको (ज्वलतः अग्नेः इव) बलते हुए अग्निकेसे शब्दको (उपशृणोति) सुनता है (एतत्) यह है (तत्) सो (एतत्) इसको (दृष्टम्) दृष्ट है (च) और (श्रुतम् च) सुना हुआ भी है (इति) ऐसा जानकर (उपासीत) उपासना करै (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (चक्षुष्यः) दर्शनीय (भवति) होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (श्रुतः) विख्यात [भवति) होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-इस स्वर्गलोक से ऊपर जो परम ज्योति

प्रकाशती है और जो परम ज्योति विश्वसे ऊपर वा संसाररूप सबसे ऊपर तथा जिनसे कोई उत्तम नहीं ऐसे सत्य लोक आदि उत्तम लोकोंमें प्रकाशती है वह ही परमज्योति इस पुरुषके शरीर के भीतर जो ज्योति है उस ज्योतिका यह स्पर्शसे होने वाला ज्ञान है। जब इस शरीरमें स्पर्शसे रूपके साथ रहने वाली इस उष्णताको जानता है तब जीवके शरीर में सद्भावको जानता है इसप्रकार उष्णता परमात्माका तथा जीवका लिङ्ग है। उस ज्योतिका यह श्रवणका उपाय है कि-जब पुरुष ज्योतिके लिङ्गको सुनना चाहता है तब दोनों अंगुलियोंसे दोनों कानोंको बन्द करके रथ के घोष की समान, बैलके रंभानेकी समान और बलते हुए अग्निके शब्द की समान शब्द शरीरके भीतर होता है उसको यह सुनता है। जो इस ज्योतिको दृष्ट कहिये त्वचा और नेत्रसे अनुभव किया हुआ,मानकर तथा श्रुत कहिये कानोंसे सुना हुआ मानकर उपासना करता है वह दर्शनीय और प्रसिद्ध होता है ॥ ७ ॥

तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिंल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब (खलु) निश्चय ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( तज्जलान् ) यह जगत् ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, उसमें ही लय होता है और उसमें ही स्थित है ( इति) ऐसा जान ( शान्तः ) शान्त हुआ ( उपासीत ) उपासना करे

( अथ ) और ( खलु ) निश्चय ( पुरुषः ) पुरुष ( क्रतुमयः ) निश्चयरूप है ( अस्मिन् लोके ) इस लोकमें ( पुरुषः ) पुरुष ( यथाक्रतुः ) जैसे निश्चय वाला ( भवति ) होता है ( तथा ) तैसा ( इतः ) इस लोकसे ( प्रेत्य ) जाकर ( भवति ) होता है ( सः ) वह ( क्रतुम् ) आगे कहे हुए निश्चयको (कुर्वीत) करे १

( भावार्थ )-यह सब नामरूपात्मक ब्रह्म निश्चय ही ब्रह्म है, क्योंकि-यह जगत् उस ब्रह्ममेंसे ही उपजा है, उसमें ही लय पावेगा और उसमें ही स्थित है। यह सब ब्रह्म ही है, इसलिये राग द्वेष आदि से रहित होकर उस ब्रह्मकी आगे कहेहुए गुणोंसे उपासना करै, ऐसा ही है, इसके अन्यथा नहीं है, ऐसी अविचल वृत्ति रक्खै, क्योंकि-जीव निश्चयरूप है, जीव इस शरीरमें जैसे निश्चय वाला रहेगा, इस शरीरको त्यागनेके अनन्तर तैसा ही होजायगा। इसप्रकार निश्चयके अनुसार फल होता है, इसलिये पुरुषको चाहिये, कि-आगे कहा हुआ निश्चय रक्खै ॥ १ ॥

मनोमयःप्राणशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्व कर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( मनोमयः ) मनोमय ( प्राणशरीरः) प्राणरूप शरीरवाला ( भारूपः ) प्रकाशस्वरूपवाला ( सत्यसङ्कल्पः ) सत्य सङ्कल्पवाला ( आकाशात्मा ) आकाशकी समान स्वरूपवाला ( सर्वकर्मा ) सब जगत् जिसका कर्म है ऐसा ( सर्वकामः ) सकल कामवाला ( सर्वगन्धः सकल गन्धवाला (सर्वरसः ) सकल रसवाला ( इदम्, सर्वं-अभ्यात्तः ) इस सब जगत्के प्रति व्याप्त ( अवाकी ) वाणीरहित ( अनादरः ) संभ्रमरहित है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वह परमात्मा मनोमय कहिये मनकी प्रवृत्ति निवृत्तिके अनुसार प्रतीत होने वाला, प्राणरूप कहिये लिङ्ग विज्ञान और क्रियाशक्ति रहित शरीरवाला चेतनरूप, प्रकाशस्वरूपवाला अर्थात् सर्वव्यापक अत्यन्त सूक्ष्म और रूप आदि रहित, सकल जगत् जिसका कर्म है ऐसा सकल जगत्का कर्त्ता, दोषरहित सकल कामवाला सकल गन्धवाला, सकल रसोंवाला इस सब जगत्में व्याप्त वाणी आदि सब इन्द्रियोंसे रहित तथा आप्त-काम होनेसे अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिमें अपेक्षा न रखनेवाला है ॥ २ ॥

एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वैष म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान् पृथिव्या ज्याया-नन्तरिक्षाऽज्ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः

अन्वय और पदार्थ—( एषः ) यह ( मे ) मेरा ( आत्मा ) आत्मा ( अन्तर्हृदये ) हृदयके भीतर ( व्रीहेः ) व्रीहिसे ( वा ) या ( यवात् ) यवसे ( वा ) या ( सर्षपात् ) सरसोंसे ( वा ) या ( श्यामाकात् ) समेंसे ( वा ) या ( श्यामाकतण्डुलात् ) समेके चावलसे ( अणीयान् ) सूक्ष्म है ( एषः ) यह ( मे ) मेरा ( आत्मा ) आत्मा ( अन्तर्हृदये ) हृदयके भीतर ( पृथिव्याः ) पृथिवीसे ( ज्यायान् ) बड़ा है ( अन्तरिक्षात् ) अन्तरिक्षसे ( ज्यायान् ) बड़ा है ( दिवः ) द्युलोकसे ( ज्यायान् ) बड़ा है ( एभ्यः ) इन ( लोकेभ्यः ) लोकोंसे ( ज्यायान् ) बड़ा है ॥ ३ ॥

( भावार्थ ) यह मेरे हृदयके भीतर वर्त्तमान आत्मा व्रीहिसे, जौसे, सरसोंसे, समेसे और समेके तण्डुलसे भी अतीव सूक्ष्म है इससे सिद्ध हुआ कि-यह आत्मा अणुपरि

माणवाला है इस भावको हटानेके लिये कहते हैं, कि यह हृदयके भीतर वर्त्तमान मेरा आत्मा पृथिवीसे भी बड़ा है अन्तरिक्षसे भी बड़ा है स्वर्गसे भी बड़ा है और सब लोकोंसे भी बड़ा है ॥ ३ ॥

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्मान्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्साऽस्तीति हस्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सर्वकर्मा ) सकल कर्मवाला ( सर्वकामः ) सकल कामवाला ( सर्वगन्धः ) सकल गन्धोंवाला ( सर्वरसः ) सकल रसोंवाला ( इदं सर्वं अभ्यात्तः ) इस सबमें व्याप्त ( अवाकी ) वाणी रहित ( अनादरः ) संभ्रमरहित ( एषः ) यह ( मे ) मेरा ( आत्मा ) आत्मा ( अन्तर्हृदये ) हृदयके भीतर है ( एतत् ) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( एतत् ) इस ब्रह्मको ( इतः ) इस शरीरसे ( प्रेत्य ) प्रयाण करके ( अभिसंभवितास्मि ) मैं अवश्य ही प्राप्त होने वाला हूं ( इति ) ऐसा ( यस्य ) जिसको ( अद्धा ) निश्चय है ( विचिकित्सा ) सन्देह ( न ) नहीं ( अस्ति ) है [ सः तत् आप्नोति ] वह उसको प्राप्त होजाता है ( इति ह ) ऐसा ( शाण्डिल्यः ) शाण्डिल्य ( आह स्म ) कहता हुआ ॥४॥

( भावार्थ )—सकल कर्म वाला, दोष रहित सकल काम वाला सुखकारी सकल गंधवाला सुखदायक सकल रसोंवाला, इस सबमें व्याप्त वाणीरहित और किसीसे आदरकी अपेक्षा न रखने वाला यह मेरा आत्मा हृदय के भीतर विद्यमान है, यह ब्रह्म है, इस ब्रह्मको इस शरीर से वियोग होनेके अनन्तर पाकर मैं अवश्य ही

प्राप्त होनेवाला हूं ऐसा निश्चय जिसको होगया है तथा इस निश्चयके फलमें जिसको सन्देह नहीं है वह विद्वान् ईश्वरभावको अवश्य ही प्राप्त होता है, इस प्रकार प्रसिद्ध शाण्डिल्य ऋषिने यह विद्या कही है ॥ ४ ॥

तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः

**अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलꣳ स एष कोशो वसुधानस्तस्मिन् विश्वमिदꣳ श्रितम् ॥ १ ॥**

**अन्वय और पदार्थ**-( अन्तरिक्षोदरः ) अन्तरिक्षरूप छिद्र-वाला ( भूमिबुध्नः ) भूमिरूप मूलवाला ( कोशः ) कोश ( न ) नहीं ( जीर्यति ) नष्ट होता है ( हि ) निश्चय ( दिशः ) दिशायें ( अस्य ) इसके ( स्रक्तयः ) कोने हैं ( द्यौः ) स्वर्गलोक (अस्य) इसका ( उत्तरम् ) ऊपरका ( बिलम् ) छिद्र है ( सः ) वह ( एषः ) यह ( कोशः ) कोश ( वसुधानः ) धनरक्षाका स्थान है ( तस्मिन् ) तिसमें (इदम्) यह ( विश्वम् ) सकल ( श्रितम् ) आश्रित है ॥ १ ॥

( **भावार्थ** )-जिसमें अन्तरिक्ष ही छिद्र है और पृथिवी जिसकी मूल है ऐसा यह कोश ( भण्डार ) सहस्र युग पर्यन्त जीर्ण नहीं होता। प्रसिद्ध सब दिशायें इस कोश के कोने हैं, स्वर्गलोक इस कोश का ऊपर का छिद्र है, ऐसा यह कोश वसुधान है अर्थात् इसमें प्राणियों का कर्मफल रूप धन सुरक्षित रहता है इसमें साधनों सहित सकल कर्मफल स्थित है ॥ १॥

**तस्य प्राची दिग् जुहूर्नाम, सहमाना नाम दक्षिणा, राज्ञी नाम प्रतीची सुभूता नामो-**

दीची तासां वायुर्वत्सः स य एतमेवं वायुं दिशा वत्सं वेद न पुत्ररोदꣳरोदिति सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदꣳ रुदम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ )--( तस्य ) इसकी ( प्राची दिक् ) पूर्वदिशा ( जुहू नाम ) जुहू नामवाली है ( दक्षिणा ) दक्षिण दिशा ( सहमाना नाम ) सहमाना नाम वाली है ( प्रतीची ) पश्चिम दिशा ( राज्ञी नाम ) राज्ञी नामवाली है (उदीची )उत्तर दिशा (सुभूता नाम ) सुभूता नाम वाली है ( वायुः ) वायु ( तासाम् ) उनका ( वत्सः ) वत्स है ( यः ) जो ( एतम् ) इस इस (वायुम्) वायुको ( एवम् ) इसप्रकार (दिशाम्) दिशाओं का ( वत्सम् ) वत्स ( वेद ) जानता है ( सः ) वह (पुत्ररोदम्) पुत्रके निमित्त विलापसे युक्त (न) नहीं ( रोदिति ) रोता है ( सः ) वह ( अहम् ) मैं ( एतम् ) इस (वायुम्) वायुको (एवम्) इसप्रकार ( वत्सम् ) वत्स (वेद) जानता हूं ( पुत्ररोदम्) पुत्रके निमित्त विलापसे युक्त ( मा रुदम् ) न रोऊँ ॥ २ ॥

( भावार्थ)-कर्मकांडी लोग पूर्व दिशाकी ओरको मुख कर के होम करते हैं।इसकारण इस कोशकी पूर्व दिशाका नाम जुहू है। दक्षिणदिशामें यमपुरीमें पहुंचे हुए पुरुष पापकर्मों के फलोंको सहते हैं,इसलिये उस कोशकी दक्षिण दिशाका नाम सहमाना है, क्योंकि-पश्चिम दिशामें सायङ्कालके समय राग कहिये लालिमाका योग होताहै,इसकारण उस कोशकी पश्चिम दिशाका नाम राज्ञी है । उत्तर दिशामें महेश्वर और कुवेर आदिकी प्रभुता है, इसकारण उस कोशकी उत्तर दिशाका नाम सुभूता है,वायु इन दिशाओं का वत्स है जो पुत्रका दीर्घजीवन चाहनेवाला इसप्रकार वायुको सब दिशाओंका वत्स और अमृतरूप जानकर उपासना करता है वह पुत्रके लिये रुदन नहीं करता है

अर्थात् उसके पुत्रका मरण नहीं होता है, मैं पुत्रका दीर्घजीवन चाहता हूं और मैं इस वायुकी दिशाओंको वत्स तथा अमृत जानकर उपासना करता हूं, इसलिये मुझे पुत्रके लिये रुदन न करना पड़े ॥ २॥

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना ॥ ३ ॥ यानी पुत्रके ही तीन नाम लेते हैं ॥

अन्वय और पदार्थ—( अमुना, अमुना, अमुना ) अमुकके साथ अमुकके साथ अमुकके साथ ( अरिष्टम् ) अविनाशी ( कोशम् ) कोशको (प्रपद्ये) शरणमें जाता हूं ( अमुना, अमुना, अमुना ) अमुकके साथ, अमुकके साथ, अमुकके साथ (प्राणम्) प्राणको ( प्रपद्ये ) शरणमें जाता हूं ( अमुना, अमुना, अमुना ) अमुकके साथ, अमुकके साथ, अमुकके साथ, ( भूः ) भूको ( प्रपद्ये ) शरणमें जाता हूं ( अमुना, अमुना, अमुना, ) अमुकके साथ, अमुकके साथ, अमुकके साथ ( भुवः ) भुवको (प्रपद्ये) शरणमें जाता हूं। ( अमुना, अमुना, अमुना ) अमुकके साथ अमुकके साथ, अमुकके साथ ( स्वः ) स्वर्को ( प्रपद्ये ) शरणमें जाता हूं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—मैं पुत्रकी आयुके लिये अमुकके अमुकके अमुकके साथ अविनाशी कोशरूप पुरुषका आश्रय लेता हूं। अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ प्राणका आश्रय लेता हूं। अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ भूलोकका आश्रय लेता हूं अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ भुवर्लोकका आश्रय लेता हूं अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ स्वर्लोकका आश्रय लेता हूं ॥ ३ ॥

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किञ्च तमेव तत्प्रापत्सि ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सः ) वह ( प्राणम् प्रपद्ये ) प्राण की शरण लेता हूं ( इति ) ऐसा ( यत् ) जो ( अवोचम् ) कहा था ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( भूतम् ) भूतसमूह ( वै ) निश्चय ( प्राणः ) प्राण है ( तत् ) तिससे ( इदम् ) यह ( यत् किञ्च ) जो कुछ है ( तमेव ) उसको ही ( प्रापत्सि ) शरण गया हूं ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-मैं प्राणका आश्रय लेता हूं ऐसा जो कहा उसका कारण यह है, कि—यह सब चराचर विश्व प्राण ही है इसलिये ही मैंने उसकी शरण ली है ॥ ४ ॥

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और (यत्) जो ( भूः प्रपद्ये ) भूको शरणमें जाता हूं ( इति ) ऐसा ( अवोचम् ) कहा था ( तत् ) सो ( पृथिवीम् ) पृथिवीको ( प्रपद्ये ) शरण जाता हूं ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्षको ( प्रपद्ये ) शरण जाता हूं (दिवम्) स्वर्गको ( प्रपद्ये ) शरण जाता हूं ( इति, एव ) ऐसा ही (अवोचम्) कहा था ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-मैंने जो भूलोकका आश्रय लेता हूं ऐसा कहा था, उसके द्वारा पृथिवीकी शरण हूं, अन्तरिक्षकी शरण हूं और स्वर्गकी शरण हूँ, यह ही कहा था ॥४॥

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इति, अग्निं, प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ।६।

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत्) जो ( भुवः,

प्रपद्ये ) भुवर्लोकका आश्रय लेता हू (इति, अवोचम् ) ऐसा कहा था ( तत् ) सो (अग्निम् प्रपद्ये) अग्निकी शरण लेता हूं (वायुम्, प्रपद्ये ) वायुकी शरण लेता हूं ( आदित्यम्, प्रपद्ये ) आदित्यकी शरण लेता हूं ( इति एव ) ऐसा ही ( अवोचम् ) कहा था ।६।

( भावार्थ )-और भुवर्लोककी शरण लेता हूं, ऐसा जो कहा था उससे यह समझना, कि-मैं अग्निकी शरण लेता हूं, वायुकी शरण लेता हूं और आदित्यकी शरण लेता हूं ॥ ६ ॥

अथ यदवोचं स्वः प्रपद्य इति, ऋग्वेदं प्रपद्ये, यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत् ) जो ) स्वः, प्रपद्ये ) स्वर्लोककी शरण लेता हूं ( इति ) ऐसा ( अवोचम् ) कहा था ( तत् ) सो ( ऋग्वेदम्, प्रपद्ये ) ऋग्वेदकी शरण लेता हूं ( यजुर्वेदम्, प्रपद्ये ) यजुर्वेदकी शरण लेता हूं ( सामवेदम्, प्रपद्ये ) सामवेदकी शरण लेता हूं ( इति, एव ) ऐसा ही ( अवोचम् ) कहा था ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-मैं स्वर्लोकका आश्रय लेता हूं ऐसा जो कहा था उससे ऋग्वेदकी शरण लेता हूं, यजुर्वेदकी शरण लेता हूं सामवेदकी शरण लेता हूं ऐसा कहा है ॥७॥

तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणाः वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( पुरुषः,वाव ) पुरुष ही ( यज्ञः ) यज्ञ है, ( तस्य ) उसके ( यानि ) जो ( चतुर्विंशतिवर्षाणि ) चौबीस वर्ष हैं ( तत् ) सो ( प्रातःसवनम् ) प्रातःसवन है ( गायत्री ) गायत्री ( चतुर्विंशत्यक्षरा ) चौबीस अक्षरोंकी है ( प्रातःसवनम् ) प्रातःसवन ( गायत्रम् ) गायत्रीसे सम्बन्धवाला है ( वसवः ) वसु ( अस्य ) इसके ( अन्वायत्ताः ) अनुगत हैं ( एते ) ये ( प्राणाः वाव ) प्राण ही ( वसवः ) वसु हैं ( हि ) क्योंकि-( इदम् ) इस ( सर्वम् ) सबको ( वासयन्ति ) वास कराते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )--पुरुष ही यज्ञ है, पुरुषकी आयुके पहिले चौबीस वर्षोंको पुरुषका प्रातः सवन अर्थात् प्रातःकाल का यज्ञकर्म कहते हैं, क्योंकि--चौबीस अक्षरोंवाली गायत्री है और गायत्रीके सम्बन्धवाला प्रातःकालका यज्ञकर्म है। इस पुरुषयज्ञके, वह प्रातःकालके यज्ञप्रति विधिपूर्वक अनुष्ठान किये हुए बाह्य यज्ञके प्रातःकालके यज्ञकी समान वसु स्वामिरूपसे अनुगत हैं। यहां अग्नि आदि वसु नहीं हैं किन्तु वाक् आदिरूप और वायुरूप प्राण ही वसु हैं क्योंकि--ये प्राण पुरुष आदि सकल प्राणियोंके समूहको वास कराते हैं ॥ १ ॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातः सवनं माध्यन्दिनꣳ सवनमनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तम् ) उसको ( चेत् ) यदि ( एतस्मिन्, वयसि ) इस अवस्थामें ( किञ्चित् ) कुछ ( उपतपेत् )

सन्ताप देय ( सः ) वह ( अनुयात् ) कहै ( प्राणाः, वसवः ) हे प्राणरूप वसुओं ! ( इदम् ) यह ( मे ) मेरा ( प्रातःसवनम् ) प्रातःसवन ( माध्यन्दिनम्, सवनम्, अनुसन्तनुत ) मध्यन्दिन सवनके प्रति एकीभूत करो ( इति ) इससे ( अहम् ) मैं (यज्ञः) यज्ञ ( प्राणानाम्, वसूनाम्, मध्ये ) प्राणरूप वसुओंके मध्यमें ( मा विलोप्सीय ) विच्छेदको न प्राप्त होऊँ ( ततः ) उस दुःख से ( उदेति एव ह ) अवश्य ही उत्तीर्ण होता है ( अगदः, ह, भवति ) नीरोग भी अवश्य होता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—पुरुषकी आयुके इन चौबीस वर्षोंके भीतर यदि कोई प्राणान्तकारी रोग उत्पन्न होजाय तो वह इस मंत्रके मूलका पाठ करता हुआ इसप्रकार प्रार्थना करै, कि--हे प्राणरूप वसुओं ! यह मेरी प्रातः सवनरूप प्रथम वय है इससे माध्यन्दिन सवनरूप मध्यम अवस्था पर्यन्त रक्षा करो, मैं प्राणरूप वसुओंमें यज्ञरूप हूं, मैं उन प्राणोंसे वियुक्त न होऊँ, इसप्रकार प्रार्थना करनेसे उस प्राणान्तकर दुःखसे उत्तीर्ण होकर अवश्य ही नीरोग होजाता है ॥ २ ॥

**अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति ॥ ३ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यानि ) जो ( चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि ) चौवालीस वर्ष हैं ( तत् ) वह (माध्यन्दिनम्, सवनम् ) मध्यदिनका यज्ञकर्म है ( त्रिष्टुप् ) त्रिष्टुप् छन्द ( चतुश्चत्वारिंशदक्षरा ) चौवालीस अक्षरका है ( माध्यन्दिनम्,

सवनम् ) मध्य दिनका यज्ञ कर्म ( त्रैष्टुभम् ) त्रिष्टुप् के सम्बन्ध वाला है ( अस्य ) इसके (तत्) उसके प्रति (रुद्राः अन्वायत्ताः) रुद्र अनुगत हैं ( प्राणाः, वाव ) प्राण ही ( रुद्राः ) रुद्र हैं (हि) क्योंकि ( एते हि ) ये ही ( इदं, सर्वम् ) इस सबको रोदयन्ति रुलाते हैं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )--और जो चौवालीस वर्ष हैं वह मध्य दिनका यज्ञकर्म है, क्योंकि--चौवालीस अक्षर वाला त्रिष्टुप् है और मध्यदिनके यज्ञ कर्मका त्रिष्टुप्से संबन्ध है, इसके उस मध्यदिनके यज्ञकर्मके अनुगत स्वामी रुद्र हैं, यहाँ पूर्वोक्त प्राण ही रुद्र हैं, क्योंकि--ये प्राण उस अवस्थामें क्रूर होनेके कारण सबोंको रुलाते हैं ॥ ३ ॥

तञ्चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तम् ) उसको ( चेत् ) यदि ( एतस्मिन्, वयसि ) इस अवस्थामें ( किञ्चित् ) कोई रोग ( उपतपेत् ) सन्ताप देय (सः) वह ( प्रब्रूयात् ) कहै ( प्राणाः, रुद्राः ) हे प्राणरूप रुद्रों ! ( इदम् ) इस ( मे ) मेरे ( माध्यन्दिनम्, सवनम् ) मध्यदिनके सवनको ( तृतीयसवनम्, अनुसंतनुत ) तीसरे सवनके प्रति एकीभूत करो ( इति ) इससे ( अहम्, यज्ञः ) मैं यज्ञ ( प्राणानाम्, रुद्रानाम्, मध्ये ) प्राणरूप रुद्रोंके मध्यमें ( मा विलोप्सीय ) विच्छेदको न प्राप्त होऊँ ( इति ) ऐसा हो ( ततः, उदेति, एव, ह ) उससे अवश्य ही सन्तापके पार होता है ( अगदः, ह, भवति ) अवश्य ही नीरोग होता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—इसके अनन्तर पुरुषकी आयुके दूसरे भाग चौवालीस वर्षके भीतर यदि कोई प्राणघातक रोगका दुःख आपड़े तो इस मन्त्रके मूलका पाठ करता हुआ इसप्रकार प्रार्थना करै, कि-हे प्राणरूप रुद्रगणो ! यह मेरी माध्यन्दिन सवनरूप मध्यम अवस्था है, मेरी तृतीय सवनरूप अन्तिम अवस्था पर्यंत रक्षा करो, मैं प्राणरूप रुद्रोंमें भगवद्यज्ञ हूं, मैं लुप्त न होऊँ । ऐसी प्रार्थना करनेसे प्राणांतकर दुःखके पार होता हुआ नीरोग होजाता है ॥ ४ ॥

अथ यान्यष्टचत्वारिंशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवन-मष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती, जागतं तृतीय-सवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावा-दित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यानि ) जो ( अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि ) अड़तालीस वर्ष हैं ( तत् ) वह ( तृतीयसवनम् ) तीसरा सवन है ( अष्टाचत्वारिंशदक्षरा ) अड़तालीस अक्षरका ( जगती ) जगती छन्द है (तृतीयसवनम्) तीसरा सवन ( जागतम् ) जगती छन्दके सम्बन्ध वाला है । ( तत् ) सो ( आदित्याः ) आदित्य ( अस्य ) इसके ( अन्वा-यत्ताः ) अनुगत हैं ( प्राणाः, वाव ) प्राण ही ( आदित्याः ) आदित्य हैं ( एते, हि ) ये ही ( इदम् ) इस ( सर्वम् ) सबको ( आददते ) ग्रहण करते हैं ॥ ५ ॥

( भावार्थ ) पुरुषकी आयुके तीसरे अड़तालीस वर्ष को अर्थात् एक सौ सोलह वर्षकी आयु पर्यंतके समय को तृतीय सवन कहते हैं। तृतीय सवन सम्बन्धी स्तोत्र आदिका जगती छन्द है, उस जगती छन्दमें अड़तालीस

अक्षर होते हैं। तृतीय सवनके स्तोत्र आदिका जगती छन्द होने से तृतीय सवन जागत नामसे कहा जाता है तृतीय सवनके देवता आदित्य हैं। वह आदित्य तृतीय सवनके अनुगत हैं। ये सब प्राण ही आदित्य हैं। प्राण शब्द समूह आदि सबको ग्रहण करते हैं, इसकारण ही आदित्य कहलाते हैं ॥ ५ ॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात्प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ६

अन्वय और पदार्थ-( तम् ) उसको ( चेत् ) यदि ( एतस्मिन् वयसि ) इस अवस्थामें ( किञ्चित् ) कुछ ( उपतपेत् ) सन्ताप देय ( सः ) वह ( ब्रूयात् ) कहै ( प्राणाः आदित्याः ) हे प्राणरूप आदित्यों ! ( इदम् ) इस ( मे ) मेरे ( तृतीयसवनम् ) तीसरे सवनको ( आयुः, अनु ) आयुके प्रति ( सन्तनुत ) एकीभूत करो ( इति ) इससे ( अहं, यज्ञः ) मैं यज्ञ ( प्राणानाम् आदित्यानाम् मध्ये ) प्राणरूप आदित्योंके मध्यमें ( मा विलोप्सीय ) विच्छेदको न प्राप्त होऊँ ( इति ) ऐसा हो ( ततः, उदेति, एव, ह ) उससे अवश्य ही सन्तापके पार होता है। ( अगदः, एव, ह, भवति ) अवश्य ही नीरोग होता है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-पुरुषकी आयुके इस तीसरे भाग अड़तालीसवर्षके भीतर यदि कोई मरणकी शङ्काका दुःख उपस्थित होय तो मूलोक्त इस मंत्रको पढ़ता हुआ इस प्रकार प्रार्थना करै, कि-हे प्राणरूप आदित्यों ! यह मेरी तृतीय सवनरूप अन्तिम अवस्था है, मुझे इस तृतीय सवनरूप अन्तिम अवस्थाके शेषपर्यन्त रचा करो अर्थात्

पूर्ण आयु देकर यज्ञको समाप्त करो जिससे कि-मैं यज्ञ प्राणरूप आदित्योंसे विच्छेद न पाऊँ। इस जप तथा ध्यानसे प्राणान्तकर दुःखके पार होजाता है और नीरोग होकर जीवित रहता है ॥ ६ ॥

**एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महीदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्स ह षोडशं वर्षशतं ०जीवाति य ए एवं वेद ॥ ७ ॥** प्रंजीविति यही संबंध है।

अन्वय और पदार्थ-( तत् एतत् ) उस इसको ( विद्वान् ) जाननेवाला ( ऐतरेयः, ह, महीदासः ) इतराका पुत्र प्रसिद्ध महीदास ( सः ) वह तू ( किम् ) किसकारणसे ( मे ) मुझे ( एतत् ) यह ( उपतपसि ) दुःख देता है ( यः, अहम् ) जो मैं ( अनेन ) इससे ( न ) नहीं ( प्रेष्यामि ) मरणको प्राप्त होऊँगा ( इति ) ऐसा ( आह, स्म ) कहता हुआ ( ह ) प्रसिद्ध है (सः) वह ( षोडशम् ) सोलह ( वर्षशतम् ) सौ वर्ष ( अजीवत् ) जीया ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( सः, ह ) वह ही ( षोडशम् ) सोलह ( वर्षशतम् ) सौ वर्ष ( जीवति ) जीवित रहता है ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-इतराके पुत्र महादास नामक ऋषिने इस पुरुषयज्ञकी रीति और वसु आदि देवताओंके समीप की हुई प्रार्थनाके द्वारा तिस२ अवस्थामें प्राप्त हुए प्राणान्तकर रोगको दूर करनेकी रीतिको जानकर ऐसा कहा था, कि-हे रोग ! तू मुझे यह दुःख क्यों देता है ? मैं यज्ञपुरुष हूं, तेरे इस दुःख देनेसे मेरा मरण नहीं होगा इसलिये तेरा यह परिश्रम वृथा है। ऐसा निश्चय प्राप्त करके वह एक सौ सोलह वर्ष पर्यन्त जीवित रहे थे

और भी जो कोई इस यज्ञकी इसप्रकार उपासना करेगा वह रोगादि दुःखसे रहित होकर एक सौ सोलह वर्षकी आयु पर्यन्त जीवित रह सकता है ॥ ७ ॥

तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः ।

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षा ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यत् ) जो ( अशिशिषति ) खाना चाहता है (यत्) जो ( पिपासति ) पीना चाहता है (यत्) जो ( न ) नहीं ( रमते ) अनुभव करता है ( ताः ) वह सब ( अस्य ) इसकी ( दीक्षा ) दीक्षा है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—वह पुरुष जो खाना चाहता है, जो पीना चाहता है और इष्ट आदिकी अप्राप्तिके कारणसे जो सुखका अनुभव नहीं करता है, यह सब उसकी यज्ञकी दीक्षा है ॥ १ ॥

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति २

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और (यत्) जो (अश्नाति) खाता है (यत्) जो (पिबति) पीता है (यत्) जो (रमते ) सुखका अनुभव करता है ( तत् ) सो ( उपसदैः ) उपसदोंकी समानता को ( एति ) पाता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—और जो खाता है, जो पीता है, जो सुखका अनुभव करता है, सो उपसदोंके साथ समानता को पाता है । सोमयागमें उपसद व्रत किया जाता है, उसमें जैसे दूध पीनेसे स्वस्थता होती है तैसे ही अशन आदिमें भी है, इसलिये अशन आदि और उपसदोंकी समानता है ॥ २ ॥

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति ॥ ३ ॥

जिन ऋकु मंत्रोंका गान नहीं कियाजाता उन्हें शस्त्र कहते हैं

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यत् ) जो (हसति) हँसता है ( यत् ) जो ( जक्षति ) भक्षण करता है ( यत् ) जो ( मैथुनम् ) मैथुनको ( चरति ) करता है ( तत् ) सो ( स्तुतशस्त्रैः, एव ) स्तुति किये हुए स्तोत्रोंके साथ समानताको ही ( एति ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-अब जो हंसता है, जो भक्षण करता है और जो मैथुन करता है सो शब्दवान्पनेकी समानता से स्तुति किये हुए स्तोत्रोंके साथ समानपनेको ही पाता है ॥ ३ ॥

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यत् ) जो ( तपः ) तप ( दानम् ) दान ( आर्जवम् ) सरलता ( अहिंसा ) अहिंसा ( सत्यवचनम् ) सत्यवचन ( इति ) ये हैं ( ताः ) वह (अस्य) इसकी ( दक्षिणाः ) दक्षिणा हैं ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—अब जो तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्यवचन ये शुभ क्रिया हैं, ये धर्मके पुष्टकारीपने की समतासे उस पुरुष यज्ञकी दक्षिणा हैं ॥ ४ ॥

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवावभृथः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्मात् ) तिससे ( सोष्यति ) प्रसूत होगी ( असोष्ट ) प्रसूत हुई ( इति ) ऐसा ( आहुः ) कहते हैं ( पुनः ) फिर ( अस्य ) इसका ( उत्पादनम् एव ) उत्पादन ही ( तन्मरणम्, एव ) वह मरण ही ( अवभृथः ) यज्ञान्त स्नान है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-सवन शब्दका अर्थ सन्तान उत्पन्न करना

और सोमको कूटना है, इसलिये प्रसूत होगा अर्थात् पुत्र को जन्म देगा वा सोमको कूटेगा तथा प्रसूत हुआ अर्थात् पुत्रको जन्म दिया वा सोमको कूटा, ऐसा कहते हैं, फिर इस पुरुषरूपनामक यज्ञका विधियज्ञकी समान जो प्रसूत होगा, इत्यादि शब्दसे सम्बन्धीपना है वह उसकी उत्पत्ति ही है और समाप्तिकी समतासे वह मरण ही इस यज्ञ पुरुष अवभृथ नामक यज्ञान्त स्नान है ॥ ५ ॥

**तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत् त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसꣳशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥६॥**

अन्वय और पदार्थ—( ह ) प्रसिद्ध ( तत् ) उसे ( एतत् ) इसको ( आङ्गिरसः ) आङ्गिरस गोत्र वाला ( घोरः ) घोर नामक ऋषि ( देवकीपुत्राय ) देवकीके पुत्र ( कृष्णाय ) कृष्ण को ( उक्त्वा ) कहकर ( उवाच ) बोला ( सः ) वह ( अन्तवेलायाम् ) मरण समयमें ( एतत् ) इन ( त्रयम् ) तीनको ( प्रतिपद्येत ) जपै-( अक्षितम् , असि) क्षय रहित है ( अच्युतम् असि ) नाशरहित है ( प्राणसंशितम्, असि ) सूक्ष्म प्राण है ( इति ) इसप्रकार ( तत्र ) तिस पर ( एते ) ये ( द्वे ) दो ( ऋचौ ) मन्त्र ( भवतः ) हैं ( सः ) वह ( अपिपासः, एव ) पियास रहित ही ( बभूव ) हुआ ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-आङ्गिरस गोत्रवाले घोर नामक ऋषिने देवकीके पुत्र कृष्णको प्रणाम करके कहा कि-आयुर्यज्ञ की रीतिको जाननेवाला पुरुष मरणके समय आदित्यमें स्थित प्राणको एककी समान करके "अक्षितमसि" 'अच्युतमसि" "प्राणसंशितमसि" इन तीन मंत्रोंका

जप करै। इनका अर्थ यह है, कि-तू क्षतरहित है, तू नाशरहित है और तू अति सूक्ष्म प्राण वा प्राणसे भी अधिक सुखदाता है, इसप्रकार दीक्षित होकर घोर ऋषि का शिष्य पिपासारहित हुआ था, श्रीभगवान्‌की उपासनासे उनका साक्षात्कार और उनके साक्षात्कारसे उन की प्राप्ति होनेमें दो मंत्र कहे हैं॥ ६ ॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसः। उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरं स्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति

अन्वय और पदार्थ-( प्रत्नस्य ) पुरातन ( रेतसः ) कारण के ( तमसः परि ) अज्ञानके पार ( आदित् ) आदित्यमें स्थित ( उत् ) उत्तम ( ज्योतिः ) ज्योतिको ( पश्यन्तः ) देखतेहुए ( उत्तरम् ) उत्कृष्ट ज्योतिको ( पश्यन्तः ) देखतेहुए ( देवत्रा ) सब देवताओंमें ( देवम् ) प्रकाशवाले ( स्वः ) अपने ( उत्तमं ) उत्कृष्ट ( सूर्यम् ) सूर्यरूप ( ज्योतिः ) ज्योतिको ( वयम् ) हम ( अगन्म ) प्राप्त हुए॥ ७॥

( भावार्थ )-जिन्होंने इन्द्रियोंको विषयोंसे हटालिया है, तथा जिनके अन्तःकरण ब्रह्मचर्य आदि निवृत्तिके साधनोंसे शुद्ध होगये हैं ऐसे हम, पुरातन कारणरूप सर्व व्यापक परम प्रकाशका और अज्ञानसे पर आदित्य में स्थित दिव्य ज्योतिका अनुभव करते हुए तथा सकल देवताओंको प्रकाश देनेवाली अपनी सूर्यरूप उत्तम ज्योतिको हम प्राप्त होगये ॥ ७ ॥

तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः समाप्त

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदेवतमा-

काशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधि-
दैवतं च ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( मनः ) अन्तःकरण ( ब्रह्म ) ब्रह्म ( इति ) ऐसी ( उपासीत ) उपासना करै (इति) यह ( अध्यात्मम् ) अध्यात्म है ( अथ ) अब ( अधिदैवतम् ) अधिदैव उपासना कहते हैं (आकाशः) आकाश ( ब्रह्म ) ब्रह्म है (इति) इस प्रकार ( अध्यात्मम् ) अध्यात्म ( च ) और ( अधिदैवतम्, च ) आधिदैविक भी ( उभयम् ) दोनों ( उपदिष्टम् ) उपदेश किये हुए ( भवति ) होते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-परमात्मा अंतःकरणसे साक्षात् करने योग्य है, इस कारण अंतःकरण परमात्मा है, इसप्रकार उपासना करै। यह सूक्ष्मशरीरके संबन्ध वाली आध्यात्मिक उपासना है। अब देवता विषयक उपासनाको कहते हैं, कि-आकाश सर्वव्यापक, सूक्ष्म और उपाधिरहित होनेसे आकाश ब्रह्म है, ऐसी उपासना करै। इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों परमात्मदृष्टि के विषय कहे हैं ॥ १ ॥

तदेतच्चतुष्पाद् ब्रह्म वाक् पादः प्राणः पाद-
श्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवत-
मग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः पादो
दिशः पाद इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चै-
वाधिदैवतं च ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) वह ( एतत् ) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म ( चतुष्पाद ) चार पाद वाला है ( वाक् ) वाणी (पादः)

पाद है ( प्राणः, पादः ) प्राण पाद है (चक्षुः, पादः) चक्षु पाद है ( श्रोत्रम्, पादः ) श्रोत्र पाद है ( इति, अध्यात्मम् ) यह अध्यात्म है ( अथ, अधिदैवतम् ) अब अधिदैवत कहते हैं ( अग्निः पादः) अग्नि पाद है ( वायुः, पादः ) वायु पाद है ( आदित्यः, पादः ) आदित्य पाद है ( दिशः, पादः ) दिशायें पाद हैं (इति) इसप्रकार ( अध्यात्मम् ) अध्यात्म ( च ) और ( अधिदैवतम्, च, एव ) अधिदैवत भी ( उभयम् ) दोनों ( उपदिष्टम् ) उपदेश कियेहुए ( भवति ) होते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वाणी, प्राण, चक्षु और श्रोत्र ये चार अध्यात्म मनरूप ब्रह्मके चार पाद हैं और अग्नि, वायु, आदित्य और दिशायें ये चार अधिदैवत आकाशरूप ब्रह्मके चार पाद हैं, इसप्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनोंका उपदेश होगया ॥ २ ॥

**वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( वाक्, एव ) वाणी ही ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मका ( चतुर्थः, पादः ) चौथा पाद है ( सः ) वह ( अग्निना ज्योतिषा ) अग्निरूप ज्योतिसे ( भाति ) प्रकाशित होता है ( च ) और ( तपति, च ) तपता भी है ( यः ) जो ( एवम् ) इसप्रकार ( वेद ) जानता है [ सः ] वह ( कीर्त्या ) कीर्त्तिसे ( यशसा ) यशसे ( च ) और ( ब्रह्मवर्चसेन ) ब्रह्मतेजसे (भाति) प्रकाशित होता है ( च ) और ( तपति ) तपता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-वाणी ही मनोरूप ब्रह्मका तीन पादकी अपेक्षा चौथा पाद है, वह पाद अग्निरूप ज्योतिसे वक्तव्यके लिये प्रकाशित होता है और बोलनेमें गति पाता

है, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह कीर्त्तिसे यशसे और ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होता है तथा तपता है जैसे गौ चरणोंसे गमन करती है तैसे ही मन वाणी, घ्राण, नेत्र और श्रोत्रके द्वारा उन इन्द्रियोंके विषयोंमेंको गमन करता है इसकारण वाणी आदिको मनोरूप ब्रह्म का पाद कहा है और अग्नि, वायु, आदित्य तथा दिशा ये आकाशरूप ब्रह्मके, गौके उदरमें लगे हुए चरणोंकी समान, उदरमें लगे हुएसे प्रतीत होते हैं, इसकारण उन को आकाशरूप ब्रह्मके पाद कहा है ॥ ३ ॥

प्राण-यहभी पाठहै

घ्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ— ( घ्राणः,एव ) घ्राण ही (ब्रह्मणः) ब्रह्मका ( चतुर्थः, पादः ) चौथा पाद है ( सः ) वह ( वायुना, ज्योतिषा ) वायुरूप ज्योतिके द्वारा ( भाति ) प्रकाशित होता है ( च ) और ( तपति च ) तपता भी है ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है [ सः ] वह ( कीर्त्या ) कीर्त्तिसे ( यशसा ) यशसे ( च ) और ( ब्रह्मवर्चसेन ) ब्रह्मतेजसे ( भाति ) प्रकाशित होता है ( च ) और ( तपति ) तपता है ४

( भावार्थ )-घ्राण ही ब्रह्मका चौथा पाद है, वह वायु में स्थित ज्योतिके द्वारा दीप्ति पाता है और ताप देता है, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह कीर्त्ति,यश और ब्रह्मतेजसे यश दीप्ति पाता है और ताप देता है ॥

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥५॥

अन्वय और पदार्थ ( चक्षुः, एव ) चक्षु ही ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मका ( चतुर्थः ) चौथा ( पादः ) चरण है ( सः ) वह ( आदित्येन, ज्योतिषा ) आदित्यरूप ज्योतिके द्वारा ( भाति ) प्रकाशित होता है ( च ) और ( तपति, च ) तपता भी है (यः) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) मानता है [ सः ] वह ( कीर्त्या ) कीर्त्तिसे ( यशसा यशसे ( च ) और ( ब्रह्मवर्चसेन ) ब्रह्मतेजसे ( भाति ) प्रकाशित होता है ( च ) और ( तपति ) तपता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ ) चक्षु ही ब्रह्मका चौथा पाद है, वह आदित्यमें स्थित ज्योतिके द्वारा रूपके निमित्त प्रकाशित होता है और तपता है, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह कीर्त्ति, यश और वेदादिके अध्ययनसे उत्पन्न हुए तेजसे दीप्ति पाता है और ताप देता है ॥५॥

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स दिग्भिर्ज्योतिषा
भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या
यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद, य एवं वेद॥६॥

अन्वय और पदार्थ–( श्रोत्रम्, एव ) श्रोत्र ही (ब्रह्मणः) ब्रह्मका ( चतुर्थः ) चौथा ( पादः ) चरण है ( सः ) वह ( दिग्भिः, ज्योतिषा ) दिशारूप ज्योतिके द्वारा ( भाति ) प्रकाशित होता है ( च ) और ( तपति, च ) तपता भी है (यः) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है [ सः ] वह (कीर्त्या) कीर्त्तिसे ( यशसा ) यशसे ( च ) और ( ब्रह्मवर्चसेन ) ब्रह्मतेजसे ( भाति ) प्रकाशित होता है ( च ) और ( तपति ) तपता है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—श्रोत्र ही ब्रह्मका चौथा पाद है, वह दिशाओंमें स्थित ज्योतिके द्वारा शब्द ग्रहणके लिये

प्रकाशित होता है और ताप देता है, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह कीर्त्ति यश और ब्रह्मतेजके द्वारा दीप्ति पाता है और ताप देता है ॥ ६ ॥

तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः समाप्तः

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत् । तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्त्तत तत्सम्वत्सरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत, ते आण्डकपाले रजतञ्च सुवर्णञ्चाभवताम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आदित्यः ) आदित्य ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) ऐसा ( आदेशः ) उपदेश है ( तस्य ) उसका उपव्याख्यानम् ) व्याख्यान [ क्रियते ] कियाजाता है ( इदम् ) यह ( अग्रे आगे ( असत्, एव ) असत् ही ( आसीत् ) था (तत्) वह ( सत् ) सत् ( आसीत् ) था ( तत् ) वह ( समभवत् ) भलेप्रकार हुआ ( तत् ) वह ( आण्डम् ) अण्डरूप ( निरवर्त्तत) हुआ ( तत् ) वह ( संवत्सरस्य ) सम्वत्सरकी ( मात्राम् ) परिमाणको ( अशयत ) सोता रहा ( तत् ) वह ( निरभिद्यत ) फूटा ( ते ) वह ( आण्डकपाले ) अण्डेके दो कपाल ( रजतम्) चांदी ( च ) और ( सुवर्णम् च ) सोना भी ( अभवताम् ) हुए ॥ १ ॥

( भावार्थ )—आदित्यकी ब्रह्मरूपसे उपासना करे ऐसा उपदेश दिया जाचुका है, अब उसकी व्याख्या की जाती है । यह सकल जगत् सृष्टि होनेकी पूर्व अवस्थामें असत् कहिये नामरूपसे रहित और स्पन्दन शून्य था, फिर उसने स्पन्दन पाया और कुछ २ प्रवृत्तिवाला हुआ फिर किञ्चिन्मात्र नाम रूपकी प्रकटताके द्वारा अंकुरित

हुए बीजकी समान क्रमसे स्थूल हुआ, तदनन्तर पञ्चीकरण हुआ जलसे अण्डा उत्पन्न हुआ वह अण्ड एक वर्षभर तक तैसा ही पड़ा रहा वर्षभरके अनन्तर वह ऊपर से फटकर दो टुकड़े होगया उन दोनों भगोंमेंसे एक भाग रजत ( चांदी ) और दूसरा भाग सुवर्ण होगया ॥ १ ॥

तद्यद्रजतं सेयं पृथिवी यत्सुवर्णं सा द्यौर्यज्जरायु ते पर्वता यदुल्वꣳ स मेघो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳस समुद्रः २

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) वह ( यत् ) जो (रजतम्) रजत है ( सो ) वह ( इयम् ) यह ( पृथिवी ) पृथिवी है (यत्) जो ( सुवर्णम् ) सुवर्ण है ( सा ) वह ( द्यौः ) स्वर्ग है ( यत् ) जो ( जरायु ) जरायु है ( ते वह (पर्वता) पहाड़ हैं ( यत् ) जो ( उल्वम् ) सूक्ष्मांश है ( सः ) वह ( मेघः, नीहारः ) मेघसहित नीहार है ( याः ) जो ( धमनयः ) नाड़ी हैं ( ताः ) वह (नद्यः) नदी हैं ( यत् ) जो ( वास्तेयम् ) मूत्र स्थानमेंका ( उदकम् ) जल है ( सः ) वह ( समुद्रः ) समुद्र है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उन दोनों कपालोंमेंका जो रजतरूप कपाल है वही यह पृथिवी है, जो सुवर्णरूप कपाल है वह स्वर्ग है । उस अण्डेके भीतर गर्भवेष्टनका जो स्थूल अंश है वही ये पहाड़ हैं और जो सूक्ष्म अंश है वह मेघ सहित कुहरा है. जो नाड़ियें हैं, वही ये नदियें हैं और उस गर्भमेंके मूत्राशयका जो जल है वही यह समुद्र है ॥ २ ॥

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि

सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयम्प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) इसके अनन्तर ( यत् ) जो ( तत् ) वह ( अजायत ) उत्पन्न हुआ ( सः ) वह ( असौ ) यह ( आदित्यः ) आदित्य है ( जायमानम् ) उत्पन्न हुए (तम्) उसके प्रति ( उलूलवः ) बड़े भारी नाद वाले ( घोषाः ) शब्द ( च ) और ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) भूत ( च ) और ( सर्वे ) सब ( कामाः ) विषय ( उदतिष्ठन् ) उत्पन्न हुए ( तस्मात् ) तिससे ( तस्य, उदयम्, प्रति ) उस के उदयके निमित्त ( प्रत्यायनम्, प्रति ) वारंवार आगमनके निमित्त ( उलूलवः ) बड़े भारी नाद वाले ( घोषाः ) शब्द (च) और ( भूतानि ) भूत ( च ) और ( सर्वे ) सब ( कामाः ) विषय ( अनूत्तिष्ठन्ति ) उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )--उस अण्डेके फूटजाने पर उस अण्डेमें जो गर्भरूप था वह उत्पन्न हुआ वही आदित्य है, उस जन्मेहुए आदित्यके प्रति उत्सवके लिये बड़े २ नादरूप शब्द उत्पन्न हुए तथा सकल स्थावर जङ्गरूप भूत तथा स्त्री वस्त्र आदि सकल विषय उत्पन्न हुए इसी कारण अब भी उस आदित्यके उदय के समय और अस्तके समय बड़े २ नादरूप शब्द सकल भूत और सब विषय उठते हैं ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनᳫँ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--( यः ) जो ( एवम् ) इसको ( एवम् ) ऐसा ( विद्वान् ) जानताहुआ ( आदित्यम् ) आदित्यको ( ब्रह्म इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह ( तद्भावम्, प्रतिपद्यते ) उस ही भावको पाता है ( यत् ) जो ( एनम् ) इसको ( अभ्याशः, ह ) शीघ्र ही ( साधवः ) निर्दोष ( घोषाः ) शब्द ( आगच्छेयुः ) आते हैं ( च ) और ( उपनिम्रेडेरन् ) समीपमें आकर सुख भी देते हैं ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जो इस तत्त्वको जानकर आदित्यकी ब्रह्मदृष्टिसे उपासना करता है वह उस भावको पाता है तथा उसको उपभोगमें पापके सम्पर्कसे रहित शब्द प्राप्त होते हैं अर्थात् चारों ओर उसकी निर्मल कीर्त्ति फैलजाती है ; तथा उस कीर्त्तिके कारणसे उसको आनन्द प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

इति श्री सामवेदीयछान्दोग्योपनिषदन्वयपदार्थ भाषाभावार्थ-सहितस्तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डस्तृतीयाध्यायश्च समाप्तः

# ❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

ॐ जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चके सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--( ह ) प्रसिद्ध ( जानश्रुतिः ) जनश्रुत राजाका ( पौत्रायणः ) पुत्रका पौत्र ( श्रद्धादेयः ) श्रद्धाके साथ दान करनेवाला ( बहुदायी ) बहुत देनेवाला ( बहुपाक्यः ) जिसके घर बहुतसा पाक होता है ऐसा ( आस ) था ( सः ) वह ( ह ) प्रसिद्ध [ राजा ] राजा ( सर्वतः ) सर्वत्र ( मे, एव,

अत्स्यन्ति ) मेरा ही खायँगे ( इति ) ऐसा विचार कर ( सर्वतः ) सर्वत्र ( आवसथान् ) सदाव्रतके स्थानोंको ( मापयाञ्चक्रे ) बनवाता हुआ ॥ १ ॥

( भावार्थ )-जनश्रुत राजाके पुत्र का पौत्र एक जानश्रुति नामका राजा था, वह बड़ी श्रद्धाके साथ बहुतसा दान दिया करता था, उसके यहां अतिथियोंके ,निमित्त बहुतसा भोजन पकाया जाता था, उस राजाकी यह इच्छा थी ग्राम और नगरोंमें ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, यति मेरा ही भोजन पाया करें, इसलिये उसने जहाँ तहाँ सर्वत्र ऐसी धर्मशालायें बनवादी थीं, कि-जिनमें आकर लोग ठहरें, और भोजन पावें ॥ १ ॥

अथ ह हꣳसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवꣳ हꣳसो हꣳसमभ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अनन्तर ( ह ) प्रसिद्ध ( हंसाः ) हंस ( निशायाम् ) रात्रिमें ( अतिपेतुः ) उड़ने लगे ( तत् , ह ) उस समय ही ( हंसः ) हंस ( हंसम् ) दूसरे हंसको ( एवम् ) इस प्रकार ( अभ्युवाद ) बोला ( हो हो अयि ) भो भो अरे ( भल्लाक्ष, भल्लाक्ष ) हे मन्दद‍ृष्टिवाले! हे मन्दद‍ृष्टिवाले (जानश्रुतेः, पौत्रायणस्य) जनश्रुत राजाके पुत्रके पौत्रका ( दिवा समम् ) दिनकी समान ( ज्योतिः ) प्रकाश ( आततम् ) फैला हुआ है ( तत् ) उसको ( मा प्रसांक्षीः ) मत स्पर्श कर ( तत् ) वह ( त्वा ) तुझको ( मा, प्रधाक्षीः ) न भस्म करै ( इति ) इस प्रकार ॥ २ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर राजाके दानगुणसे प्रसन्न

हुए ऋषियोंने वा देवताओंने हंसोंका रूप धारण किया और जिस प्रकार राजाकी दृष्टि उनके ऊपर पडै तैसे वह रात्रिमें उडने लगे, उस समय पीछेका हंस आगेके हंस से कहने लगा, कि-अरे ओ मन्ददृष्टि वाले ! जनश्रुत राजाके पुत्रके पौत्रका दिनकी समान तेज फैल रहा है उसको स्पर्श न कर, कहीं ऐसा न हो कि--उसको स्पर्श करके भस्म होजाय ? ॥ २ ॥

तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एनमेतत्सन्तꣳ सयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्व इति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ह ) कहते हैं कि—( तम्, उ ) उसको ( परः ) अगला हंस ( प्रत्युवाच ) उत्तरमें बोला (अरे) ओ ( एतत ) इस महलमें ( सन्तम् ) विद्यमान ( कम्, उ ) खोटे माहात्म्य वाले ( एनम् ) इसको ( सयुग्वानम् ) गाडीके जुए पर बैठे हुए ( रैक्वम्, इव ) रैक्वकी समान ( आत्थ ) कहता है ( इति ) इस प्रकार कहा हुआ दूसरा हंस बोला (यः) जो ( सयुग्वा, रैक्वः ) गाड़ीवाला रैक्व है [ सः ] वह ( कथम्, नु ) कौन और कैसा है ? ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—यह सुनकर अगले हंसने कहा, कि-तुझे धिक्कार है, जो तू इस महल पर सोते हुए जान श्रुतिको गाड़ीवाले रैक्वकी समान बताता है । यह सुन कर पिछले हंसने कहा, कि-वह रैक्व कौन है और उसका कैसा प्रभाव है ॥ ३ ॥ [कृत नामक पासा ॥]

यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यथा ) जैसे ( विजिताय ) विजय पाये हुए ( कृताय ) कृतके लिये ( अधरेयाः ) नीचेके भाग ( संयन्ति ) अन्तर्गत होते हैं (एवम्) ऐसे ही ( प्रजाः ) प्रजायें ( यत्किञ्च ) जो कुछ ( साधु ) शुभकर्म ( कुर्वन्ति ) करती हैं ( तत् ) वह ( सर्वम् ) सब ( एनम्, अभिसमेति ) इस रैक्वके पुण्यमें अन्तर्गत होता है ( सः ) वह (यत्) जो ( वेद ) जानता है ( यः ) जो ( तत् ) उसको ( वेद ) जानता है ( सः ) वह (मया) मैंने (एतत्) यह (उक्तः) कहा है (इति) इस प्रकार ॥४॥

( भावार्थ ) जैसे विजय पाये हुए पासेके चार अङ्क-वाले कृत ( करबट ) के नीचेके तीन भाग अर्थात् तीन अङ्कवाला त्रेता दो अङ्क वाला द्वापर और एक अङ्कवाला कलि ये पासेके तीन भाग अन्तर्गत होते हैं, इसीप्रकार प्रजायें जो कुछ शुभ कर्म करतीं हैं वह सब शुभकर्म और उनका फल इस रैक्वके धर्म और उसके फलके अन्तर्गत है, यह रैक्व जिस जानने योग्य ( वेद्य ) पदार्थको जानता है, उस वेद्यको जो जानता है उसको भी सब प्राणियोंके धर्मका समूह और उसका फल रैक्वकी समान प्राप्त होता है, उस विद्वान्को ही मैंने इस प्रकार कहा है

**तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह सञ्जिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारेह सयुग्वान-मिव रैक्वमात्थेति यो नु कथं सयुग्वा रैक्व इति५**

अन्वय और पदार्थ—( ह ) कहते हैं, कि-( तत्, उ ) उसको ही ( जानश्रुतिः, पौत्रायणः ) जनश्रुत राजाके पुत्रका पौत्र ( उपशुश्राव ) समीपमें ही सुनता हुआ ( सः ) वह (सञ्जिहानः एव ) शय्याको त्यागते ही ( क्षत्तारम् ) वन्दीजनको ( उवाच, ह ) कहता हुआ ( अरे, अङ्ग ) अरे प्रिय ( सयुग्वानम्

इव रैक्वम् ) गाडीवालेकी समान रैक्वको ( इति ऐसा (आत्थ) कह (यः) जो सयुग्वा,रैक्वः ) गाडीवाला रैक है ( कथम्, नु ) वह कैसा है ( इति ) इस प्रकार ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-हंसकी इस बातको जनश्रुतके पुत्र का पौत्र जानश्रुति सुनरहा था, सुने हुए इन वचनोंका वारंवार स्मरण करते हुए उसने रात्रि बितायी, फिर प्रातःकालके समय बन्दीजनोंकी स्तुतियुक्त वाणीसे निद्रा का त्याग करते ही उसने बन्दीजनोंसे कहा,कि- हे प्यारे! प्रसिद्ध गाड़ीवाले रैक्वके पास जाकर कहो, कि-मैं उस से मिलना चाहता हूं, उन बन्दीजनोंने कहा,कि-हे राजन्! वह गाड़ीवाला रैक्व कौन है और कैसा है ? ॥५॥

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनᳪ सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-चौथे मन्त्रके अनुसार जानो ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-राजाने उत्तर दिया, कि-जैसे सदाचरण के द्वारा सत्ययुगको वशमें कर लेनेसे त्रेता आदि सब युगोंको जीत लिया जाता है तैसे ही ये सब लोग जो कुछ पुण्यकर्म करते हैं संवर्ग विद्याका जानने वाला रैक उस सबको जानता है.मैंने हंसके मुखसे रैकका यह परिचय पाया है ॥ ६ ॥

स ह क्षत्ताऽन्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तᳪ होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्च्छेति ७

अन्वय और पदार्थ-(ह) कहते हैं, कि-(सः) वह (क्षत्ता) बन्दीजन ( अन्विष्य ) खोजकर ( न ) नहीं ( अविदम् ) पाता हुआ (इति ) ऐसा कहता हुआ ( प्रत्येयाय ) लौट आया ( तम्,

ह ) उसको ही (उवाच) बोला (अरे ) हे क्षत्तः ( यत्र ) जहां (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मवेत्ताकी अन्वेषणा) खोज कीजाती है(तत्)तहां ( एनम् ) इसको ( अऽऋच्छ) प्राप्त हो ( इति ) इस प्रकार ॥७॥

( भावार्थ ) वह बन्दीजन अनेकों ग्राम और नगरोंमें ढूंढकर लौट आया और राजासे कहने लगा, कि--मुझे रैक्व नहीं मिला, राजाने उससे फिर कहा कि-अरे ! जहां अरण्य आदि एकान्त स्थानमें ब्रह्मवेत्ताओंको खोजना चाहिये उन ही सब स्थानोंमें जाकर खोज कर ॥ ७ ॥

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश तꣳ हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व इत्यहꣳ ह्यरा इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रत्येयाय ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( शकटस्य ) गाड़ीके ( अधस्तात् ) नीचे ( पामानम् ) खुजली को ( कषमाणम् उप ) खुजलाते हुएके समीप ( उपविवेश ) बैठ गया ( तत्, ह ) उस को ही (अभ्युवाद ) कहने लगा ( भगवः ) हे भगवन् (त्वम्, नु) क्या आप ही ( सयुग्वा, रैक्वः ) शकटवाले रैक्व हैं ( इति ) इसप्रकार ( अरे ) हे ( अहम्, हि ) मैं ही हूं (इति) ऐसा (प्रतिजज्ञे, ह ) प्रतिज्ञा करता हुआ ( सः ) वह (क्षत्ता ) बन्दीजन ( अविदम् ) मैंने जानलिया ( इति ) ऐसा मानकर (प्रत्येयाय ) लौट आया ॥ ८ ॥

( भावार्थ )-बन्दीजन राजाकी आज्ञानुसार फिर खोजनेको चल दिया और एक निर्जन स्थानमें गाड़ीके नीचेके स्थानमें बैठे हुए तथा शरीरको खुजलाते हुए एक मुनिको देख उनके पास जाकर बैठ गया और फिर उनसे प्रश्न किया, कि-हे भगवन् ! क्या आप ही गाड़ी

वाले रैक्व हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, कि—हां मैं ही शकटी रैक्व हूं, तब वन्दीजनने समझा कि—मैंने रैक्व को पहचान लिया और राजाके पासको लौट आया, तथा राजाको उनके पानेका समाचार दिया ॥ ८ ॥

चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खंडः समाप्तः

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳ हाभ्युवाद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तदु, ह ) तब ( जानश्रुतिः,पौत्रायणः ) जनश्रुतके पुत्रका पौत्र ( गवाम् , षट्शतानि ) छः सौ गौएं ( निष्कम् ) सुवर्णका हार ( अश्वतरीरथम् ) खच्चरियों से जुता हुआ रथ ( तत् ) इसको ( आदाय ) लेकर ( तम्, प्रतिचक्रमे ) उन मुनिके पासको चलदिया ( तम् ) उनको ( अभ्युवाद ह ) कहता हुआ ॥ १ ॥

( भावार्थ )—उस समय जनश्रुतके पुत्रका पौत्र जानश्रुति लोकोंके द्वारा मुनिके गृहस्थकी बातोंको जान कर छः सौ गौएँ, एक सोनेका हार और एक खच्चरियों से जुता हुआ रथ लेकर रैक्वके पास गया और उनसे कहने लगा ॥ १ ॥

रैक्वेमानि षट्शतानि गवामयं निष्कोयमश्वतरीरथोऽनु म एतां भगवो देवताꣳ शाधि यां देवतामुपास्स इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदाथ—( रैक ) हे रैक ( इमानि ) ये ( गवाम् ) गौओंके ( षट्शतानि ) छः सैकड़े ( अयम् ) यह ( निष्कः ) सुवर्णहार ( अयम् ) यह ( अश्वतरीरथः ) खच्चरियोंसे जुता रथ [ गृह्यताम् ] ग्रहण करिये (भगवः) हे भगवन् !

( याम्, देवताम् ) जिस देवताको ( उपास्से ) उपासना करते हो (एताम्) इस (देवताम्) देवताको (मे) मेरे अर्थ (अनुशाधि) उपदेश करो (इति) इस प्रकार ॥ २ ॥

(भावार्थ)—हे भगवन्! ये छः सौ गौएँ, एक सुवर्णका हार और एक खिच्चरियोंसे जुता हुआ रथ, यह सब ग्रहण करिये और आप जिस देवताकी उपासना करते हैं उसका मुझे उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तम्, उ, ह ) उस राजाके प्रति ( परः ) वह रैक्व ( प्रत्युवाच ) बोला (शूद्र) हे शूद्र (हारेत्वा) हारोंसे युक्त ( गोभिः सह ) गौओंके साथ रथ ( तव-एव ) तेरा ही ( अस्तु ) हो (इति) इसप्रकार (जानश्रुतिः, पौत्रायणः) जनश्रुतके पुत्रका पौत्र ( पुनः, एव ) फिर भी ( तदु ह ) उस रैक्के लिये ( गवाम्, सहस्रम् ) सौ गौएँ ( निष्कम् ) सुवर्ण का हार ( अश्वतमीरथम् ) खच्चरियोंका रथ ( दुहितरम् ) पुत्री ( तत् ) यह सब ( आदाय ) लेकर ( प्रतिचक्रमे ) फिर उन रैक्व मुनिके पास गया ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-रैक्व मुनिने कहा कि-अरे! ( शोकेन आद्रुत शूद्र ) शोकसे व्याकुल होनेके कारण शूद्र नाम के योग्य राजन्! तू इन सबको लेकर लौट जा, यह सब अपने पास ही रख, तब राजा लौट आया और विचार करके एक सहस्र गौएँ एक सोनेका हार, एक खचरियों से जुता रथ और अपनी पुत्रीको लेकर मुनिके पास फिर

गया। क्षत्रिय जातिके राजा जानश्रुतिको शूद्र शब्दसे संबोधन करनेमें रैक्व ऋषिके दो अभिप्राय कल्पना किये जा सकते हैं-तू हंसोंके वचन सुन शोक पाकर मेरे पास आया है, एक कारण यह है और दूसरा हेतु शूद्र कहनेका यह है, कि-तू थोड़ा धन देकर उत्तम विद्या पानेका अनुचित यत्न करता है, राजाने ऋषिके कथन में दूसरे हेतुको समझा, इसलिये वह फिर पुत्री सहित बहुतसा धन लेकर आया ॥ ३ ॥

तꣳ हाभ्युवाद रैक्वेदꣳ सहस्रं गवामयं निष्को-ऽयमश्वतरीरथ इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्से-ऽन्वेव मा भगवः शाधीति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तम् . ह ) उसके प्रति ( अभ्युवाद ) बोला ( रैक्व ) हे रैक्व ( इदम् ) यह ( गवाम् ) गौओं का ( सहस्रम् ) सहस्र ( अयम् ) यह ( निष्कः ) सुवर्णहार ( अयम् ) यह ( अश्वतरीरथः ) खच्चरियों का रथ ( इयम् ) यह ( जाया ) स्त्री ( अयम् ) यह ( ग्रामः ) ग्राम ( यस्मिन् ) जिसमें ( आस्से ) रहते हो ( भगवः ) हे भगवन् ( अनु-एव ) पीछेसे ही ( मा ) मुझको ( शाधि ) उपदेश दीजिये ( इति ) इस प्रकार ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-राजा जानश्रुति रैक्वसे कहने लगा, कि-हे रैक्व ! यह सहस्र गौएँ, यह हार, यह खच्चरियों का रथ, यह आपकी धर्मपत्नी बननेके लिये मेरी पुत्री तथा जिसमें आप रहते हैं यह ग्राम मैं आपको अर्पण करता हूँ हे भगवन् ! इस सबको ग्रहण करके पीछेसे मुझे उपदेश दीजिये ॥ ४ ॥

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचा ऽऽजहारेमाः

शूद्रानेनैव मुखेनालपयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्या ह ) उसके ( मुखम् ) मुख को ( उपोद्गृह्णन् ) जानते हुए ( उवाच ) बोले ( शूद्र ) हे शूद्र ( इमाः ) इनको ( आजहार ) लाया है ( अनेन-एव ) इस ही ( मुखेन ) साधनसे ( आलपयिष्यथाः ) कह रहा है ( ते ह ) वह ( एते ) यह ( महावृषेषु ) महापवित्र देशोंमें ( रैक्वपर्णा नाम ) रैक्वपर्ण नामसे प्रसिद्ध थे ( तत्र ) जहां ( उवास ) रहता था ( तस्मै ) इस रैक्वको [ अदात् ] राजाने दे दिये ( तस्मै ह ) तिस राजाके अर्थ ( उवाच ) उपदेश करता हुआ ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—रैक्वने देखा, कि-ऐसी सुन्दर कन्या और गौ आदि पदार्थ दक्षिणामें देनेको लाया है जो कि पर्याप्त है तथा यह राजा विद्यादानका पात्र भी है, यह जानकर कहा, कि-हे शोकविद्रुत ! तू जो ये गौएं तथा बहुतसा धन लाया है, यह ठीक है, इस उपायसे ही तू मुझसे विद्याका दान करनेको कहरहा है । महापवित्र देशरूप जिन ग्रामोंमें यह ऋषि रहते थे वह ग्राम रैक्वपर्ण नामसे प्रसिद्ध थे वह ग्राम राजाने रैक्वको दे दिये तब राजाको मुनिने विद्याका उपदेश दिया ॥ ५ ॥

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ।

संग्रसन कारनेसे ॥

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वायुः, वाव ) वायु ही ( संवर्गः ) संवर्ग है ( वै ) निश्चय ( यदा ) जब ( अग्निः ) अग्नि ( उद्वा-

यति ) शान्त होता है ( वायुम् , एव ) वायुको ही ( अप्येति ) प्राप्त होता है ( यदा ) जब ( सूर्यः ) सूर्य (अस्तम् , एति) अस्त को प्राप्त होता है ( वायुम् , एव ) वायुको ही अप्येति ) प्राप्त होता है ( यदा ) जब ( चन्द्रः ) चन्द्रमा (अस्तम्, एति) अस्त को प्राप्त होता ( वायुम्, एव ) वायुको ही ( अप्येति ) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—बाहरी वायु ही ( अग्नि आदिको भले प्रकार से निगलजानेके कारण ) संवर्ग ( भले प्रकारसे निगलजाने वाला ) है। जब यह प्रसिद्ध अग्नि शान्त होता है तब वायुमें ही लीन होता है अर्थात् वायुके स्वभावको पाता है। प्रलयकालमें जब सूर्य अस्त होता है तब वह उस वायुमें ही लीन होता है और प्रलयकाल में जब चन्द्रमा अस्त होता है तो वायुमें ही लीन होता है॥१॥

यदाप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति, वायुर्ह्येवै-
तान्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदेवतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यदा ) जब ( आपः ) जल (उच्छुष्यन्ति ) सूखते हैं ( वायुम्, एव, अपियन्ति ) वायुमें ही लीन होते हैं ( हि ) क्योंकि-(वायुः, एव) वायु ही (एतान् सर्वान्) इन सबोंको (संवृङ्क्ते) निगल जाता है ( इति ) इसप्रकार (अधिदैवतम् ) अधिदैवत कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जल जब सूखते हैं तो वायुमें ही लीन होते हैं, क्यों कि-वायु ही अग्नि आदि इन सबोंको ग्रस जाता है, इस लिये वह संवर्ग गुणवाला वायु उपास्य है इस प्रकार अधिदैवत कहिये देवताओंमें संवर्गकी उपासना कही ॥ २ ॥

अथाध्यात्मम् । प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणँ श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान् सर्वान् संवृङ्क्त इति

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अब ( अध्यात्मम् ) अध्यात्म कहाजाता है ( प्राणः वाव ) प्राण ही ( संवर्गः ) संवर्ग है ( सः ) वह ( यदा ) जब ( स्वपिति ) सोता है (वाक्) वाणी (प्राणम्, एव, अप्येति ) प्राणमें ही लीन होती है (चक्षुः) चक्षु ( प्राणम् ) प्राण में लीन होता है (श्रोत्रम्) श्रोत्र (प्राणम्) प्राणमें लीन होता है ( मनः ) मन ( प्राणम् ) प्राणमें लीन होता है ( हि ) निश्चय (प्राणः एव) प्राण ही ( एतान् ) इन (सर्वान्) सबको ( संवृङ्क्ते ) ग्रस लेता है ( इति ) इसप्रकार ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-अब सूक्ष्म शरीरमें सम्वर्गकी उपासना कहते हैं कि-मुख्य प्राण ही संवर्ग है।यह पुरुष जब सोता है तो वाणी प्राणमें ही लीन होती है, चक्षु प्राणमें ही लीन होता है, श्रोत्र प्राणमें ही लीन होता है, मन प्राण में ही लीन होता है, क्योंकि—प्राण वाणी आदि सबको ही निगल जाता है, इसकारण संवर्ग गुण वाले प्राणकी उपासना करनी चाहिये॥ ३॥

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( तौ ) वह ( एतौ ) यह ( द्वौ ) दो ( संवर्गौ ) संवर्ग हैं ( देवेषु ) अग्नि आदि देवताओंमें ( वायुः, एव ) वायु ही है ( प्राणेषु ) वाक् आदि इन्द्रियोंमें ( प्राणः ) प्राण है ॥ ४ ॥

( भावार्थ)-वायु और प्राण ये दो ही संवर्ग हैं।

कपिगोत्रम्



वायु अग्नि आदि देवताओंमें संवर्ग है और प्राण वाणी आदि इन्द्रियोंमें संवर्ग है ॥ ४ ॥

अथ ह शौनकञ्च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अब ( शौनकम् ) शुनकके पुत्र ( कापेयम् ) कापेय ( च ) और ( काक्षसेनिम् ) कक्षसेन के पुत्र ( अभिप्रतारिणम् च ) अभिप्रतारी भी (परिविष्यमाणौ) भोजन परोसेहुए उन दोनोंसे ( ब्रह्मचारी ) ब्रह्मचारी (बिभिक्षे ) भिक्षा मांगता हुआ (तस्मै, उ, ह) उस ब्रह्मचारी को ( न ) नहीं ( ददतुः ) देते हुए ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-अब वायु और प्राणकी स्तुतिके लिये आख्यायिका कहते हैं, कि-शुनकका पुत्र कापेय और कक्षसेनका पुत्र अभिप्रतारी ये दोनों भोजनको बैठे और रसोइयेने इनको भोजन परोसा इतनेमें ही एक ब्रह्मचारीने आकर इनसे भिक्षा माँगी, परन्तु ब्रह्मचारीमें ब्रह्मवेत्तापनके चिह्न देख उसकी परीक्षा करनेके लिये इन्होंने भिक्षा देनेका निषेध कर दिया ॥ ५ ॥

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स-जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन् बहुधा वसन्तं यस्मै वा एत-दन्नं तस्मा एतन्न दत्तमिति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ— सः ह ) वह ( उवाच ) बोला ( महात्मनः ) बड़े आकार वाले चतुरः ) चारको ( भुवनस्य, गोपाः ) भुवनोंका रक्षक ( सः ) वह ( एकः, देवः ) एक देवता

निगलानेवाला।



( जगार ) निगल गया ( कापेय ) हे कापेय ( बहुधा ) अनेक प्रकारसे ( वसन्तम् ) वसते हुए ( तम् ) उसको (मर्त्याः) मनुष्य ( न ) नहीं ( अभिपश्यन्ति ) देखते हैं ( अभिप्रतारिन् ) हे अभिप्रतारिन् ( वै ) निश्चय ( यस्मै, एव ) जिसके लिये ही एतत् अन्नम् ) यह अन्न है ( तस्मै ) उसके लिये ( एतत् ) यह ( न) नहीं ( दत्तम् ) दिया ( इति ) इस प्रकार ॥ ६ ॥

( भावार्थ )----उस समय वह ब्रह्मचारी कहने लगा, कि--भू आदि भुवनोंका रक्षक जो एक प्रजापति देवता पीछे कहे हुए महा प्रभावशाली अग्नि वायु चन्द्रमा और सूय इन चार देवताओंका ग्रास करता है वह अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत इन बहुतसे प्रकारोंसे संसारमें बस रहा है तो भी मनुष्य उसको नहीं देख पाते। हे कापेय! हे अभिप्रतारिन्! तुम जिसके इस अन्नका भोजन करते हो क्या उसको जानते हो ? तुमने उसको यह अन्न नहीं दिया ? ॥६॥

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां जनिता प्रजानाꣳहिरण्यदंष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीत्ति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( शौनकः ) शुनकका पुत्र ( कापेयः ) कापेय ( तदु ह ) उसका ( प्रतिमन्वानः ) विचार करता हुआ (प्रत्येयाय) उसके समीप गया। (देवानाम्) देवताओंका (आत्मा) आत्मा रूप (प्रजानाम्) प्रजाओंका (जनिता) उत्पादक (हिरण्यदंष्ट्रः ) अभग्नदाढ़वाला ( बभसः ) भक्षण करनेके स्वभाववाला ( अनसूरिः ) चेष्टा करानेवाला और ज्ञानी है ( यत् )

क्योंकि ( अनद्यमानः ) उसका कोई भक्षण नहीं कर सकता ( अनन्नम् ) दूसरेके अभक्ष्यको ( अत्ति ) खाता है ( इति ) इस कारण ( वै ) निश्चय ( अस्य ) इसके ( महान्तम् ) बड़े भारी ( महिमानम् ) ऐश्वर्यको ( आहुः ) कहते हैं ( ब्रह्मचारिन् ) हे ब्रह्मचारी ( वयम् ) हम ( इदम् ) इसको ( आ उपास्महे ) चारों ओरसे उपासना करते हैं [ भृत्याः ] हे सेवकों ! ( अस्मै ) इसको ( भिक्षाम् , दत्त ) भिक्षा दो ( इति ) ऐसा कहा ॥७॥

( भावार्थ )–शुनकपुत्र कापेयने ब्रह्मचारीके इस प्रकार प्रश्न करने पर देवताके विषयमें विचार किया और फिर ब्रह्मचारीके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा, कि–हे ब्रह्मचारिन् ! जो देवताओंका आत्मा,प्रजाओंका उत्पादक, परिश्रम न मानकर सबका संहार करने वाला, भक्षण करनेके स्वभाव वाला, चेष्टा कराने वाला,ज्ञानी, जिसको कोई भक्षण नहीं कर सकता ऐसा और जिसको कोई न भक्षण करसके ऐसे अग्नि वाक् आदि अभक्ष्य का भक्षण करने वाला है, उसकी बड़ी भारी विभूति है उसकी ही हम सब प्रकारसे उपासना करते हैं । फिर कापेयने अपने सेवकों को आज्ञा दी, कि-इस ब्रह्मचारी को अन्न दो ॥ ७ ॥

तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतꣳ सैषा विराडन्नादी तयेदꣳ सर्वं दृष्टꣳ सर्वमस्येदं दृष्टं भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—( ते ) वह सेवक ( तस्मै उ, ह ) उस ब्रह्मचारीको ( ददुः ) देते हुए ( वै ) निश्चय ( एते )

यह ( अन्ये, पञ्च ) अलग पांच ( अन्ये पञ्च ) और अलग पांच ( दश, सन्तः ) दश होते हुए ( तत् ) यह सब कृतम् ( कृत ) है ( तस्मात् ) उस दश संख्या वालेसे ( सर्वासु ) सब ( दिक्षु ) दिशाओंमें ( अन्नम् ) अन्न ( दशकृतम् ) दशका किया हुआ है ( सा ) वह ( एषा ) यह ( विराट् ) विराट् ( अन्नादी ) अन्नको भक्षण करने वाली है ( तया ) उससे ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( दृष्टम् ) देखा हुआ होता है ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( तस्य ) उसका ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( दृष्टम् ) देखा हुआ ( भवति ) होता है ( अन्नादः ) अन्नका भक्षण करने वाला ( भवति ) होता है ॥ ८ ॥

( भावार्थ )-इस प्रकार आज्ञा पाकर सेवकोंने ब्रह्मचारीको भिक्षा दी। अग्नि आदिक चार और वायु यह वाक् आदिसे अन्य पांच हैं तथा उनसे अन्य वाक् आदि पांच हैं ये सब मिलकर दश होते हैं और कृत ( चार, तीन, दो और एक ऐसे अङ्कों वाला जुआ खेलनेका पासा वा अक्ष ) कहलाता है इससे सब दिशाओंमें अग्नि आदि और वाक् आदि देवता ही पूर्ण अन्न हैं । यह प्रसिद्ध अन्न देवता है विराट् विष्णु ही इस अन्नका भोक्ता है और विराट् शब्दसे कहा जाने वाला विष्णु देवता ही इस सबको देखता है। जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह अन्नका भोक्ता होता है और सबके तत्त्वको देख पाता है ॥ ८ ॥

चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

**सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किङ्गोत्रो न्वहमस्मीति ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ--( जाबालः ) जबालाका पुत्र ( सत्य-

कामः ) सत्यकाम ( जबालाम् ) जबाला नामवाली ( मातरम् ) माताको ( आमन्त्रयाञ्चक्रे ) कहता हुआ ( भवति ) हे पूज्य मातः ! ( ब्रह्मचर्यम्, विवत्स्यामि ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरुकुलमें वसूंगा ( अहम् ) मैं ( किङ्गोत्रः, नु ) किस गोत्रका ( अस्मि ) हूं (इति) इसप्रकार ॥ १ ॥

( भावार्थ )-जबालाके पुत्र सत्यकामने अपनी माता जबालासे कहा, कि-हे पूज्यमाता ! मैं वेद पढ़नेके लिये ब्रह्मचारी बनकर गुरुकुलमें वास करना चाहता हूं, बताओ मैं किस गोत्रमें उत्पन्न हुआ हूँ ॥ १ ॥

**सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाऽहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ॥ २ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( सा ) वह ( एनम् ) इसको ( उवाच ) बोली ( तात ) हे तात ( त्वम् ) तू ( यद्गोत्रः ) जिस गोत्रका ( असि ) है ( एतत् ) यह ( अहम् ) मैं ( न ) नहीं ( वेद ) जानती हूं ( बहु ) बहुत ( चरन्ती ) सेवा करती हुई ( परिचारिणी ) अतिथि सेवामें लगी रहकर हा ( यौवने ) युवावस्थामें ( त्वाम् ) तुझको ( अलभे ) पाती हुई ( सा, अहम् ) ऐसी मैं ( यद्गोत्रः ) जिस गोत्रका ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( एतत् ) इसको ( न ) नहीं ( वेद ) जानती हूं ( अहम् तु) मैं तो (जबाला नाम ) जबाला नामवाली ( अस्मि ) हूं ( त्वम् ) तू ( सत्यकामः ) सत्यकाम नाम वाला ( असि ) है (सः) वह तू (जाबालः सत्यकामः ) जबालाका पुत्र सत्यकाम [अस्मि] हूं ( इति, एव ) ऐसा ही ( ब्रुवीथाः ) कहना ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जबालाने कहा, कि--हे बेटा ! तू किस गोत्रमें उत्पन्न हुआ है, यह मैं नहीं जानती क्योंकि। मैं यौवनकालमें पतिके घर जो अतिथि आते थे उनकी सेवाके बहुतसे काममें लगी रहती थी, इसकारण मैंने तेरे पिता से गोत्र आदि नहीं बूझा था और ज्यों ही युवावस्थामें तू उत्पन्न हुआ कि-तेरे पिताका मरण होगया, इसप्रकार अनाथ होनेके कारण तू किस गोत्रका है इस बातको मैं नहीं जासकी, परन्तु मेरा नाम जबाला और तेरा नाम सत्यकाम है, तुझसे यदि आचार्य बूझें तो कहना कि--मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ ॥ २ ॥

स ह हारिद्रुतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( ह ) प्रसिद्ध ( हारिद्रुतम् ) हरिद्रुतके पुत्र ( गौतमम् ) गौतमको ( एत्य ) प्राप्त होकर ( उवाच ) बोला ( भगवति ) श्रीमान्के यहां (ब्रह्मचर्यं, वत्स्यामि) ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करूँगा ( इति ) इसकारणसे ( भगवन्तम् ) श्रीमान्को ( उपेयाम् ) प्राप्त हुआ हूं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-माताकी बात सुनकर सत्यकामने हरिद्रुतके पुत्र गौतमके समीप जाकर कहा, कि-हे भगवन्! मैं ब्रह्मचर्य धारण करके विद्याध्ययन करनेके लिये आपके समीप रहनेकी इच्छासे आया हूं ॥ ३ ॥

तꣳ होवाच किंगोत्रो नु सोम्यासीति सहोवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरꣳ सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला

तु नामाऽहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहꣳ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( किंगोत्रः, नु ) किस गोत्रवाला ( असि ) है (इति) ऐसा ( तम् ) उसको ( उवाच ) बोला ( सः ) वह ( उवाच ) बोला ( भोः ) हे महाराज ( यद्गोत्रः ) जिस गोत्रका ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूं ( एतत् ) यह ( अहम् ) मैं ( न ) नहीं ( वेद ) जानता हूं ( मातरम् ) माताको ( अपृच्छम् ) प्रश्न करता हुआ ( सा ) वह ( मा, प्रति ) मुझसे ( अब्रवीत् ) कहती हुई (बहु, चरन्ती) अधिक सेवा करती हुई ( परिचारिणी ) सेवामें चित्त वाली ( अहम् ) मैं ( यौवने ) युवावस्थामें ( त्वाम् ) तुझको (अलभे)पाती हुई ( सा ) वह ( अहम् ) मैं ( यद्गोत्रः ) जिस गोत्र का ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( एतत् ) यह ( न ) नहीं ( वेद ) जानती हूं ( अहम्, तु ) मैं तो ( जबाला, नाम ) जबाला नाम वाली ( अस्मि ) हूं ( त्वम् ) तू ( सत्यकामः, नाम ) सत्यकाम नाम वाला ( असि ) है ( इति ) इस प्रकार ( भोः ) हे भगवन् ( सः ) वह ( अहम् ) मैं ( जाबालः ) जबालाका पुत्र ( सत्यकामः ) सत्यकाम ( अस्मि ) हूं ( इति ) इस प्रकार ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—गौतमने कहा, कि-हे प्रियदर्शन ! तेरा क्या गोत्र है ? सत्यकामने उत्तर दिया, कि-हे भगवन! मैं नहीं जानता, कि-मेरा क्या गोत्र है। मैंने अपनी मातासे गोत्रके विषयमें प्रश्न किया था, उसने उत्तर दिया, कि मैं स्वामीके घर अतिथिसेवाका काम बहुत किया करती थी, सेवामें चित्त लगा रहनेके कारण मैंने तेरे पितासे व्यवसाय और लज्जाके कारण गोत्र आदि नहीं बूझा था, तू युवावस्थामें उत्पन्न हुआ और उसी

अवसरमें तेरे पिताका मरण होगया, इस कारण मैं दुःखमें पड़गयी और शोकविह्वल होनेके कारण मैंने दूसरोंसे भी तेरा गोत्र आदि नहीं बूझा, इस कारण मैं तेरे गोत्रको नहीं जानती, परंतु मेरा नाम जबाला है और तेरा नाम सत्यकाम है । सो हे भगवन्! मैं जबाला का पुत्र सत्यकाम हूं ॥ ४ ॥

तँ होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधँ सोम्याऽऽहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति, ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्त्तयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रँ सम्पेदुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तम् ) उसको ( उवाच ) बोला ( अब्राह्मणः ) जो ब्राह्मण न हो वह ( एतत् ) यह ( विवक्तुम्, न, अर्हति ) स्पष्टरूपसे नहीं कहसकता ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( समिधम् ) समिधाको ( आहर ) ला ( त्वा ) तुझको ( उप, नेष्ये ) उपनीत करूँगा (सत्यात्) सत्यसे ( न ) नहीं ( अगाः) हटा ( इति ) इसकारण ( तम् ) उसको ( उपनीय ) गायत्रीका उपदेश देकर ( कृशानाम्, अबलानाम् ) कृश और बलहीनोंमें से ( चतुःशता गाः निराकृत्य ) चारसौ गौओंको निकालकर ( सोम्य ) हे प्रिय दर्शन ( इमाः अनुसंव्रज ) इनके पीछे२ जा ( इति ) ऐसा ( उवाच ) बोला ) ( ताः ) उनको ( अभिप्रस्थापयन् ) विदा करता हुआ ( असहस्रेण ) विना सहस्रके ( न, आवर्त्तय ) लौटाकर न लाना (इति) ऐसा (उवाच बोला (सः)

वह ( वर्षगणम् ) वर्षोंके समूह तक ( प्रोवास ) बाहर ही रहा ( ताः ) वह ( यदा ) जब (सहस्रम् ) सहस्र ( सम्पेदुः) हुई ॥५

( भावार्थ )—उससे गौतमने कहा, कि—ब्राह्मणसे भिन्न जातिवाला मनुष्य ऐसा सरल और अर्थ भरा वचन स्पष्ट रूपसे नहीं कहसकता, क्योंकि—ब्राह्मण स्वभावसे ही सरल होता है, दूसरा स्वभावसे सरल नहीं होता, इसप्रकार तू सत्यसे नहीं डिगा है, इस कारण हे प्रियदर्शन ! मैं तेरा उपनयन कराऊँगा, तू होमके लिये समिधायें लेआ, फिर उसको गायत्रीका उपदेश देकर कृश और बलहीन गौओंमेंसे चारसौ गौएं उसको देकर कहा, कि-हे सोम्य ! इनके पीछे२ जा और जबतक ये एक सहस्र न हो जायँ तबतक लौटाकर न लाना, वह उनको लेकर उपद्रवरहित तृणोंवाले वनमें बहुत वर्षोंतक रहा जबतक कि वह सहस्र न हुईं ॥५॥

चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्र ँ्स्मः प्रापय न आचार्यकुलम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) इसके अनन्तदर ( एनम् ) इसको ( सत्यकाम ३ ) हे सत्यकाम ( इति ) इसप्रकार (वृषभः) वृषभ ( अभ्युवाद ) बोला ( भगवः ) हे भगवन् ( इति ) ऐसा ( प्रतिशुश्राव ) प्रत्युत्तर देता हुआ ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( सहस्रम् ) सहस्र संख्याको ( प्राप्ताः स्मः ) प्राप्त होगये हैं ( नः ) हमें (आचार्यकुलम् , प्रापय) आचार्य कुलमें पहुंचाओ ।

( भावार्थ )-तदनन्तर एकदिन जिसमें वायु देवता का प्रवेश हुआ था ऐसे एक वृषमने कहा कि-हे सत्यकाम ! इसने उत्तर दिया, कि-हां भगवन् ! उसने कहा,

कि-हे सोम्य! हमारी संख्या सहस्र होगयी, अब हमें आचार्यकुलमें पहुँचा ॥ १ ॥

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( च ) और (ते) तेरे अर्थ (ब्रह्मणः) ब्रह्मके ( पादम् ) पादको ( ब्रवाणि ) कहता हूं ( इति ) इस प्रकार [ ब्रुवति ] कहने पर ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) इस प्रकार कहने पर ( तस्मै) तिसके अर्थ ( उवाच ) बोला ( प्राची, दिक् ) पूर्व दिशा ( कला ) चतुर्थांश है ( प्रतीची, दिक् ) पश्चिम दिशा ( कला ) चतुर्थांश है ( दक्षिणा, दिक् ) दक्षिण दिशा ( कला ) चतुर्थांश है ( उदीची, दिक् ) उत्तर दिशा ( कला ) चतुर्थांश है ( सोम्य) हे प्रियदर्शन ( वै ) निश्चय ( एषः ) यह ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मका ( प्रकाशवान्नाम ) प्रकाशवान् नाम वाला ( चतुष्कलः ) चार कलावाला ( पादः ) पाद है ॥२॥

( भावार्थ )—और मैं तुझसे ब्रह्मका पाद कहता हूं ऐसा कहने पर सत्यकामने कहा, कि-हे भगवन्! मुझ से कहिये, तब वृषभ उससे कहने लगा, कि-पूर्वदिशा ब्रह्मके पादका चौथा भाग है, पश्चिमदिशा चौथा भाग है, दक्षिणदिशा चौथा भाग है और उत्तरदिशा चौथा भाग है, हे प्रियदर्शन! यह ही चार अवयवों वाला ब्रह्मका पाद है और उसका नाम प्रकाशवान् है ॥ २ ॥

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः

प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (एतम्) इस ( चतुष्कलम् ) चार कलावाले ( पादम् ) पादको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जाननेवाला (प्रकाशवान् , इति ) प्रकाशवान् है इसप्रकार ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह (अस्मिन् , लोके) इसलोकमें (प्रकाशवान्) प्रकाशवाला (भवति) होता है ( यः ) जो ( एतम् ) इस ( ब्राह्मणः ) ब्रह्मके ( चतुष्कलम् ) चार कलावाले ( पादम् ) पादको ( एवम् ) इसप्रकार (प्रकाशवान्. इति ) प्रकाशवान् है ऐसा ( विद्वान ) जानता हुआ ( उपास्ते ) उपासना करता है [ सः ] वह ( प्रकाशवतः ) प्रकाशवाले ( लोकान् ) लोकोंको ( जयति ) जीतता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—जो ब्रह्मके इस चार कलावाले पादको इसप्रकार जानता हुआ, वह प्रकाशवान् है, ऐसा मान कर उपासना करता है वह इस लोकमें प्रसिद्ध होता है जो ब्रह्मके इस चार भागवाले पादको इसप्रकार जानता हुआ वह प्रकाशवान् है ऐसा मानता हुआ उपासना करता है, वह मरणके अनन्यर देवता आदिके संबन्ध वाले प्रकाशवान् लोकोंको पाता है ॥३ ॥

चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ।

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥ समिधमाधाय ॥

अन्वय और पदार्थ—( अग्निः ) अग्नि ( ते ) तेरे अर्थ ( पादम् ) पादको ( वक्ता ) कहेगा ( इति ) इस प्रकार कहा ( सः ) वह ( श्वोभूते ) दूसरे दिन ( गाः ) गौओंको ( अभिप्रस्तापयाञ्चकार ) आचार्यके घरके लिये हांकता हुआ ( ताः ) वह ( यत्र ) जहां ( अभिसायम्, बभूवुः ) सायङ्कालके समयको प्राप्त हुईं ( तत्र ) तहां ( गाः ) गौओंको ( उपरुध्य) रोककर ( अग्निम् ) अग्निको ( उप, समाधाय ) स्थापित करके ( समिधम् ) समिधाको ( आदाय ) धारण करके ( अग्नेः ) अग्निके ( पश्चात् ) पश्चिममें ( प्राङ् ) पूर्वाभिमुख होकर ( उपोपविवेश ) समीपमें बैठा ॥ १ ॥

( भावार्थ )-अग्नि तुझे ब्रह्मके दूसरे पादका उपदेश देगा, ऐसा कहकर वह वृषभ चुप होगया। वृषभकी इस बातको सुनकर सत्यकाम दूसरे दिन गौओंको हांककर आचार्यके घरकी ओरको चल दिया, जाते२ जहां सन्ध्या का समय हुआ तहां ही सत्यकामने सब गौओंको एक स्थान पर रोक दिया और अग्नि स्थापन कर अग्निके पश्चिममें पूर्वाभिमुख बैठ गया ॥ १ ॥

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तम् ) उसको ( अग्निः ) अग्नि ( सत्यकाम ३, इति ) हे सत्यकाम ऐसा कह कर ( अभ्युवाद ) पुकारता हुआ ( भगवः, इति ) हे भगवन् ! ऐसा कह कर ( प्रतिशुश्राव ) उत्तर सुनाता हुआ ॥ २ ॥

( भावार्थ )—उसको हे सत्यकाम ! कहकर अग्निने पुकारा तब सत्यकामने हां भगवन् ! कह कर उनको उत्तर दिया ॥ २ ॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे

भगवानिति तस्मै होवाच पृथिवी कलाऽन्त-
रिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य
चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( मे ) तेरे अर्थ ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( पादम् ) पादको ( ब्रवाणि ) कहता हूं ( इति ) ऐसा कहने पर ( भगवान् ) श्रीमान् ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहें ( इति ) ऐसा कहने पर ( तस्मै ) तिसके अर्थ (उवाच) बोला (पृथिवी) पृथिवी (कला) कला है (अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष ( कला ) कला है ( द्यौः ) स्वर्ग ( कला ) कला है ( समुद्रः ) समुद्र ( कला ) कला है ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( वै ) निश्चय एषः ) यह (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (अनन्तवान्नाम) अनन्तवान् नामका ( चतुष्कलः ) चार कला वाला ( पादः ) पाद है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-हे प्रियदर्शन ! तुझसे ब्रह्मका दूसरा पाद कहता हूँ, सत्यकामने कहा-हां भगवन् ! कहिये तब अग्नि उससे कहने लगा, कि-पृथिवी कला है, अन्तरिक्ष कला है, स्वर्ग कला है और समुद्र कला है, हे सोम्य! इन चार कलाओंका ब्रह्मका एक पाद है और इस पाद का नाम अनन्तवान् है ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽ
नन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्य
नन्तवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्च
तुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदाथ—( यः ) जो ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( एतम् ) इस ( चतुष्कलम् ) चार कलावाले ( पादम् ) पादको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जानता हुआ (अनन्तवान्, इति)

अन्तवान् नहीं है ऐसा जानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह ( अस्मिन्, लोके ) इस लोकमें ( अनन्तवान् ) विच्छेद रहित सन्तान वाला ( भवति ) होता है ( यः ) जो ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( एतम् ) इस ( चतुष्कलम् ) चार कला वाले ( पादम् ) पादको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जानता हुआ ( अनन्तवान् ) अनन्तवान् है ( इति ) ऐसा जानकर (उपास्ते ) उपासना करता है [ सः ] वह ( अनन्तवतः ) अन्तरहित ( लोकान् ) लोकोंको (जयति ) जीतता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—जो ब्रह्मके इस चार कलावाले पादको इस प्रकार जानता हुआ 'अनन्तवान्' ऐसा मानकर उपासना करता है वह इस लोकमें विच्छेदरहित सन्तान वाला होता है । जो ब्रह्मके इस चार कलावाले पादको इसप्रकार जानता हुआ इसका अन्त नहीं होता ऐसा जानकर उपासना करता है वह मरणको प्राप्त होकर अक्षय लोकोंमें पहुँचता है ॥ ४ ॥

चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

हँ्ँसस्ते पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमादाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हंसः) हंस ( ते ) तेरे अर्थ (पादम् पादको ( वक्ता ) कहेगा ( इति ) ऐसा कहने पर ( सः ) वह (श्वोभूते) दूसरे दिन ( गाः ) गौओंको (अभिप्रस्थापयाञ्चकार)
( श्वाभूते ) दूसरे दिन (गाः) गौओंको [अभिप्रस्थापयाञ्चकार)
आचार्यके स्थानकी ओरको हांकता हुआ ( ताः ) वह ( यत्र ) जहां ( अभिसायम्, बभवुः ) सायंकाल हुआ तहां इकट्ठी हो

गयीं ( तत्र ) तहां ( अग्निम् ) अग्निको (उपसमाधाय) स्थापित करके ( गाः ) गौओंको ( उपरुध्य ) रोककर ( समिधम् ) समिधाको ( आदाय ) ग्रहण करके ( अग्नेः ) अग्निके ( पश्चात् ) पश्चिममें ( प्राङ् ) पूर्वाभिमुख ( उपोपविवेश ) स्थित होगया १

( भावार्थ )-हंस रूप सूर्य तुझे तीसरे पादका उपदेश देंगे ऐसा कहकर अग्नि चुप होरहा, तब वह सत्यकाम दूसरे दिन नित्य कर्मसे निबट गौओंको लेकर आचार्य के घरकी ओरको चल दिया, वह गौएं जहां सन्ध्या हुई तहां इकट्ठी होकर खड़ी होगयीं तहां सत्यकाम भी अग्नि की स्थापना कर तथा गौओंको रोककर समिधा ले अग्नि के पश्चिममें पूर्वाभिमुख होकर अग्निके वचनका चिन्तवन करता हुआ उन दोनोंके समीपमें बैठगया ॥ १ ॥

तꣳहꣳस उपनिपत्याभ्यु वाद सत्यकाम ३इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ- हंसः) हंस ( तम्, उपनिपत्य ) उसके समीपमें उड़कर उसके समीपमें आकर ( सत्यकाम ३ ) हे सत्यकाम (इति ) ऐसा ( अभ्युवाद ) संबोधित करता हुआ ( भगवः इति, ) हे भगवन्, इसप्रकार प्रतिशुश्राव ) प्रत्युत्तर देता हुआ ॥ २ ॥

( भावार्थ )-हंस उड़ता हुआ उसके समीपमें आ बैठा और उसको पुकारा, कि-हे सत्यकाम सुन, सत्यकामने प्रत्युत्तर दिया, कि-हे भगवन् ! कहिये ॥ २ ॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( ते ) तेरे अर्थ ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( पादम् ) पादको ( ब्रवाणि ) कहता हूं ( इति ) ऐसा कहने पर ( भवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये ( इति ) ऐसा सत्यकामके कहने पर ( तस्मै ) उसको ( उवाच ) बोला ( अग्निः ) अग्नि ( कला ) कला है ( सूर्यः ) सूर्य ( कला ) कला है ( चन्द्रः ) चन्द्रमा ( कला ) कला है ( विद्युत् ) बिजली ( कला ) कला है ( सोम्य ) हे प्रिय दर्शन (वै) निश्चय ( एषः ) यह ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मका ( ज्योतिष्मान् नाम ) ज्योतिष्मान् नामका ( चतुष्कलः ) चार कला वाला ( पादः ) पाद है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—हंसने कहा, कि हे सोम्य ? मैं तुझसे ब्रह्मके तीसरे पादको कहूंगा । सत्यकामने कहा, कि-हे भगवन् ! कहिये ! हंसने कहा, अग्नि एक कला, सूर्य एक कला चन्द्रमा एक कला और बिजली एक कला इस प्रकार हे सोम्य ! ये चार कलायें ब्रह्मका एक पाद है और इस पादका नाम ज्योतिष्मान् है ॥ ३ ॥

**स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानास्मिन् लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ॥४॥**

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( एतम् ) इस ( चतुष्कलम् ) चार कलावाले ( पादम् ) पादको ( विद्वान् ) जानता हुआ (ज्योतिष्मान्, इति ) ज्योतिष्मान है ऐसा ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह ( अस्मिन्, लोके ) इस लोकमें ( ज्योतिष्मान् ) प्रकाशवाला (भवति ) होता है ( यः ) जो ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( एतम् ) इस ( चतुष्कलम् )

गा उपरुध्य समिधमाधाय



चार अवयव वाले ( पादम् ) पादको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जानता हुआ ( ज्योतिष्मान् , इति ज्योतिष्मान् है, ऐसा ( उपास्ते ) उपासना करता है [ सः ] वह ( ज्योतिष्मतः ) प्रकाशवाले ( लोकान् ) लोकोंको ( जयति ) जीतता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जो इसको ऐसा जानकर ब्रह्मके इस ज्योतिष्मान् नामक चतुष्कल पदकी उपासना करता है वह इस लोकमें प्रकाशवाला होता है और मरकर चन्द्र सूर्य आदिके प्रकाशवाले लोकोंमें जाता है ॥ ४ ॥

चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

**मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभि प्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥१॥**

अन्वय और पदार्थ—( मद्गुः ) मद्गुरूप प्राण ( ते ) तेरे अर्थ ( पादम् ) चौथे पादको ( वक्ता ) कहेगा ( इति ) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( श्वोभूते ) प्रातःकाल होने पर ( गाः ) गौओंको ( अभिप्रस्थापयाञ्चकार ) हांकता हुआ ( ताः ) वह गौएं ( यत्र ) जहां ( सायं बभूवुः ) सायंकालके समय इकट्ठी हुईं ( तत्र ) तहां ( अग्निम् ) अग्निको ( उपसमाधाय ) स्थापित करके ( गाः ) गौओंको ( उपरुध्य , रोककर ( समिधम् ) समिधाको ( आदाय ) लेकर ( अग्नेः ) अग्निके ( पश्चात् ) पश्चिममें ( प्राङ् ) पूर्वाभिमुख ( उपोपविवेश ) समीपमें बैठगया ॥१॥

( भावार्थ —प्राणने जलमुरगका रूप धारण करके सत्यकामसे कहा, कि-मैं तुझे ब्रह्मके चौथे पादका उपदेश देगा, ऐसा कह कर हंस चुप होगया तदनन्तर दूसरे दिन सत्यकामने फिर गौओंको आचार्यके घरकी ओरको हांक दिया, वह गौएँ चलते २ जहां सांझ हुई तहां इकट्ठी होकर खड़ी हो गयीं तहां अग्निको स्थापना

करके और गौओंको रोककर समिधायें लिये हुए सत्यकाम अग्निके पश्चिममें पूर्वाभिमुख होकर हंसके वचनको स्मरण करता हुआ गौएँ और अग्नि के समीपमें बैठ गया ॥ १ ॥

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( मद्गुः ) जल मुरगरूप प्राण ( उपनिपत्य ) उड़कर आ ( तम् ) उसको ( अभ्युवाद ) पुकारता हुआ ( सत्यकाम ) सत्यकाम ( इति ) इस प्रकार (भगवः, इति) हे भगवन् इस प्रकार ( प्रतिशुश्राव ) प्रत्युत्तर देता हुआ ॥ २॥

( भावार्थ )-जलमुरगका रूप धारण किये हुए प्राण उसके पास आबैठा और कहने लगा, कि-हे सत्यकाम ! सुन। सत्यकामने उत्तर दिया, कि-हां कहिये सुनता हूं।

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ! ( ते ) तेरे अर्थ ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( पादम् ) पादको ( ब्रवाणि ) कहता हूं ( इति ) मद्गुके ऐसा कहने पर ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे ) अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा कहने पर ( तस्मै ) तिसके अर्थ ( उवाच ) बोला (प्राणः) प्राण (कला) कला है ( चक्षुः ) चक्षु ( कला ) कला है ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र ( कला ) कला है ( मनः ) मन ( कला ) कला है ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( वै ) निश्चय ( एषः ) यह (आयतनवान्नाम ) आयतनवान् नामका ( चतुष्कलः ) चार कला वाला ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मका ( पादः ) पाद है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-हे प्रियदर्शन ! तुझसे ब्रह्मका पाद कहता हूं, ऐसा जलमुरगरूप प्राणने कहा, सत्यकामने कहा, कि-हे भगवन् ! मुझसे कहिये, तब उससे जलमुरगने कहा, कि-नासिका सहित प्राण कला है, चक्षु कला है, श्रोत्र कला है और मन कला है, हे सोम्य ! इन चार कलाओंमें ब्रह्मका एक पाद है, इस पादका नाम आयतनवान् है। सब करणोंके ग्रहण किये हुए भागोंका आयतन कहिये स्थान मन है, वह मन जिस पादमें है वह पाद आयतनवान् कहलाता है ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्त आयतनवानस्मिन् लोके भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( एतम् ) इस ( चतुष्कलम् ) चार कला वाले ( पादम् ) पादको ( एवम् ) इस प्रकार ( आयतनवान्, इति ) आयतन वाला है ऐसा जान कर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह ( अस्मिन् लोके ) इस लोकमें ( आयतनवान् ) आश्रय वाला ( भवति ) होता है ( यः ) जो ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मके ( चतुष्कलम् ) चार कला वाले ( एतम् ) इस ( पादम् ) पादको ( एवम् ) इस प्रकार ( विद्वान् ) जानता हुआ ( आयतनवान्, इति ) आयतन वाला है, इस प्रकार ( उपास्ते ) उपासना करता है [ सः ] वह ( आयतनवतः ) आयतन वाले ( लोकान् ) लोकोंको ( जयति ) जीतता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जो ब्रह्मके इस पादको इसप्रकार जानता

हुआ ब्रह्मके आयतनवान् चतुष्कल पादकी उपासना करता है वह इस लोकमें आश्रयवाला होता है और मरकर अवकाशवाले लोकोंमें जाता है । ॥ ४ ॥

चतुर्थाध्यायास्याष्टमः खण्डः समाप्तः

**प्राप हाचार्यकुलं तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ—( आचार्यकुलम् ) आचार्यके घरको ( प्राप ) पहुंचगया ( तम् ) उसको ( आचार्यः) आचार्य (सत्यकाम ) हे सत्यकाम ( इति ) ऐसा ( अभ्युवाद ) पुकार कर कहता हुआ ( भगवः इति ) हे भगवन् ऐसा ( प्रतिशुश्राव ) प्रत्युत्तर देता हुआ ॥ १ ॥

( भावार्थ )-सत्यकाम इस प्रकार ब्रह्मका उपदेश पाता पाता आचार्यके घर आपहुँचा, आचार्यने सत्यकामको देखकर कहा, कि-हे सत्यकाम ! सुन !सत्यकाम ने कहा, कि-भगवन् ! कहिये, सुनता हूं ॥ १ ॥

**ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाँस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् ॥ २ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( वै ) निश्चय ( ब्रह्मवित्, इव ) ब्रह्मवेत्तासा ( भासि ) प्रतीत होता है ( त्वा ) तुझको ( कः, नु ) किसने ( अनुशशास ) उपदेश दिया है ( इति ) ऐसा कहा ( मनुष्येभ्यः ) मनुष्योंसे ( अन्ये ) दूसरोंने ( इति ) ऐसा ( प्रतिजज्ञे ) प्रत्युत्तर दिया ( तु ) परन्तु ( भगवान्, एव ) आप ही ( मे ) मेरे ( कामे ) इच्छाके विषय में ( ब्रूयात् ) कहै ॥ २ ॥

(भावार्थ) ब्रह्मज्ञानी प्रसन्न इन्द्रियोंवाला हँसते हुए

मुख वाला चिन्ता रहित और कृतार्थ होता है, सत्य कामकी मुखमुद्रा ऐसी ही देखकर आचार्यने कहा कि-हे बेटा ! तू ब्रह्मज्ञानीसा दीखता है, तुझे किसने उपदेश दिया है ? ऐसा आचार्यने बूझा तब सत्यकामने कहा कि मुझे मनुष्योंने नहीं देवताओंने उपदेश दिया है परन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं है इसलिये आप ही मेरी इच्छाके अनुसार उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापतीति तस्मै हैत-देवोवाचात्र ह न किञ्चन वीयायेति वीयायेति ३

अन्वय और पदार्थ-( भगवद्दृशेभ्यः, एव ) आपसरीखों से ही ( मे ) मैंने ( हि ) निश्चयके साथ ( श्रुतम् ) सुना है ( आचार्यात्, एव ) आचार्यसे ही (विदिता) जानी हुई (विद्या) विद्या ( साधिष्ठम् ) परमश्रेष्ठपनेको ( प्रापति ) पाती है ( इति ) ऐसा ( तस्मै ) तिसको ( एतदेव ) यह ही (उवाच) कहता हुआ ( अत्र ) उसमें ( किञ्चन ) कुछ भी ( न ) नहीं ( वीयाय ) हानि हुई ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—क्योंकि-मैंने आप सरीखे ऋषियोंसे सुना है, कि-आचार्यसे सुनी हुई विद्या ही परमोत्तम होती है, सत्यकामके ऐसा कहने पर आचार्यने वह देवताओंकी कही हुई विद्या ही चारों पाद तथा फलोंके साथ कही, उस सोलह कलावाली ब्रह्मविद्यामें से कुछ गया नहीं अर्थात् आचार्यने और देवताओंने इस प्रकार उपदेश दिया, कि-उसका जरासा अंश भी शेष नहीं रहा ॥ ३ ॥

चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्ड समाप्तः ॥

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास तस्य ह द्वादशवर्षाण्यग्नीन् परिचचार स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्त्तय ७ स्तथ्ँ ह स्मैव न समावर्त्तयति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ह ) प्रसिद्ध ( कामलायनः ) कमल का पुत्र ( उपकोसलः ) उपकोसल ( जाबाले ) जाबालाके पुत्र ( सत्यकामे ) सत्यकामके समीप ( ब्रह्मचर्यम्, उवास ) ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक निवास करता हुआ ( सः ) वह ( द्वादशवर्षाणि ) बारह वर्ष पर्यन्त ( तस्य ) उसकी ( अग्नीन्, परिचचार ) अग्नियों की सेवा करता हुआ [ सः ] वह ( अन्यान् ) दूसरे ( अन्तेवासिनः ) विद्यार्थियोंको ( समावर्त्तयन् ) घरको लोट जाने की आज्ञा देता हुआ ( तम् ) उसको (नैव) नहीं ( समावर्त्तयति स्म ) समावर्त्तन करता हुआ ॥ १ ॥

( भावार्थ )-कमलका पुत्र उपकोसल ब्रह्मचारी बन कर जबालाके पुत्र सत्यकामके समीप रहने लगा। उपकोसलने बारह वर्ष पर्यन्त आचार्यकी अग्निकी सेवाकी। इतने समयमें आचार्यने अन्यान्य ब्रह्मचारियोंको वेद पढ़ाकर समावर्त्तन कर घर भेज दिया, परन्तु उपकोसल का समावर्त्तन नहीं कराया ॥ १ ॥

तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन् परिचचारीन्मा त्वाग्नयः परिप्रवोचन् प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै हाप्रोच्यैव प्रवासाञ्चक्रे ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ--( तम् ] उसको ( जाया ) स्त्री ( उवाच ) बोली ( तप्तः ) तप करने वाला ( ब्रह्मचारी ) ब्रह्मचारी ( कुशलम् ] भले प्रकारसे ( अग्नीन् ) अग्नियोंकी (परिचचारीत् ) सेवा करता हुआ ( अग्नयः ) अग्नियें ( त्वा )

तुम्हारी ( मा परिप्रवोचन् ) निन्दा न करें ( इति ) इस कारण ( अस्मै ) इसको ( प्रब्रूहि ) उपदेश दो (तस्मै) उसको (अप्रोच्य, एव ) बिना उपदेश दिये ही ( प्रवासाञ्चक्रे ) परदेशको चले गये ॥ २ ॥

( भावार्थ )—सत्यकामकी स्त्रीने सत्यकामसे कहा, कि-उपकोसलने बड़ा कष्ट सहकर बड़ी उत्तमताके साथ तुम्हारी अग्नियोंकी सेवा की है। इसके सेवा करनेसे प्रसन्न हुए अग्नि, यह मेरे भक्तका समावर्त्तन नहीं करता ऐसा जानकर कहीं आपकी निन्दा न करे, इसलिये अब आप उपकोसलको विद्याका उपदेश दीजिये। स्त्री के ऐसा कहने पर भी सत्यकामने उपकोसलको विद्या का उपदेश नहीं दिया और कहीं परदेशको चले गये २

स ह व्याधिनाऽनशितुं दध्रे तमाचार्यजायोवाच ब्रह्मचारिन्नशान किं नु नाश्नासीति स होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति॥३॥

अन्वय और पदार्थ—( सः वह ( व्याधिना ) व्याधि के कारण ( अनशितुम् ) अनशन करनेको (दध्रे) धारण करता हुआ ( तम् ) उसको ( आचार्यजाया ) आचार्यकी स्त्री (इति) ऐसा ( उवाच ) बोली ( ब्रह्मचारिन् हे ब्रह्मचारी ! (अशान) भोजन कर ( किम् नु ) किस कारण से (न) नहीं (अश्नासि ) भोजन करता है ( सः ) वह ( उवाच ) बोला ( अस्मिन् ) इस ( पुरुषे) पुरुषमें ( इमे ) यह ( कामाः ) इच्छा रूप (नानात्ययाः) नाना प्रकारके दुःख ( बहवः ) बहुत हैं ( व्याधिभिः ) व्याधियोंसे ( प्रतिपूर्णः ) भरा हुआ ( अस्मि ) हूं ( इति ) इस कारण से ( न ) नहीं ( अशिष्यामि ) भोजन करूँगा ॥ ३ ॥

( भावार्थ ]--उस उपकोसलने मानसिक दुःखके कारण से अन्न जलके त्यागका व्रत धारण किया, यह देखकर आचार्यकी स्त्री उससे कहने लगी, कि-अरे ब्रह्मचारी ! भोजन कर, तू भोजन क्यों नहीं करता है ? यह सुनकर उपकोसलने कहा, कि--इस सकल मनोरथोंकी सिद्धि न पानेवाले पुरुषमें नाना प्रकारकी कामनारूप चित्तके अनेकों दुःख होते हैं,वह चित्तको दुःख देने वाली कामनायें मुझमें बहुत भर रही हैं, इस कारण ही मैंने भोजन न करनेका व्रत धारण किया है ॥ ३ ॥

अथ हाग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः ४

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) इसके अनन्तर ( अग्नयः ) अग्नियें ( समूदिरे ) परस्परमें कहनेलगे ( तप्तः ) तप करने वाला ( ब्रह्मचारी ) ब्रह्मचारी ( नः )हमारी ( कुशलम् उत्तम तासे ( पर्यचारीत् ) सेवा करता हुआ ( हन्त ) दयाभावसे ( अस्मै ) इसके अर्थ ( प्रब्रवाम ) उपदेश दें ( इति ) ऐसा निश्चय करके ( तस्मै ) तिसके अर्थ ( ऊचुः ) कहनेलगे ॥४॥

( भावार्थ )-तदनन्तर गार्हपत्य आदि अग्नि आपस में कहनेलगे, कि--इस तपस्वी ब्रह्मचारीने बड़ा क्लेश उठाकर हमारी उत्तमतासे सेवा की है इसलिये इसके ऊपर दया लाकर हमें इसको ब्रह्मविद्याका उपदेश देना चाहिये, ऐसा निश्चय करके वह उपकोसलसे कहनेलगे कि--॥ ४ ॥

प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजा-

नामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( प्राणः ) प्राण ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( कम् ) सुख ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( खम् ) आकाश ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) ऐसा अग्नियोंने कहा ( सः ) वह ( उवाच ) बोला ( अहम् ) मैं ( विजानामि ) जानता हूं ( यत् ) जो ( प्राणः ) प्राण ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( तु ) परन्तु ( कम् ) सुख को ( च ) और ( खम्, च ) आकाशको भी इति ) ब्रह्म है ऐसा ( न ) नहीं ( विजानामि ) जानता हूं ( ते ) वह (वाव) निश्चय ( यत् ) जो ( कम् ) सुख है (तत् -एव) वह ही ( खम्) आकाश है ( यदेव ) जो ही ( खम् ) आकाश है (तत् एव) वह ही ( कम् ) सुख है ( इति ) ऐसा ( ऊचुः ) बोले ( तत् ) उस ( प्राणम् ) प्राणका ( च ) और ( आकाशम्, च ) आकाश को भी ( अस्मै ) इसके अर्थ ( ऊचुः ) कहते हुए ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-- अग्नियोंने उपकोसलको उपदेश दिया कि--प्राण ( बल ) ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, आकाश ( ज्ञान) ब्रह्म है। इस पर उपकोसलने कहा, कि प्राण ब्रह्म है, इस बातको मैं जानता हूँ, परन्तु सुख और आकाश क्रमसे क्षणभंगुर तथा जड़ होनेके कारण कैसे ब्रह्म हो-सकते हैं, यह मैं नहीं जानता। इस पर अग्नि कहनेलगे, कि—जो सुख है वही आकाश है और जो आकाश है वही सुख है। सुखको आकाशका विशेषण कहनेसे सुख युक्त हृदयाकाशरूप ब्रह्मकी अचेतन भूताकाशसे भिन्नता हुई और आकाशको सुखका विशेषण कहनेसे उस ब्रह्म रूप सुखको क्षणभंगुर लौकिक सुखसे भिन्नता हुई।

इसप्रकार इस ब्रह्मचारीसे प्राण और उसके संबन्धवाला सुखयुक्त हृदयाकाश इन दोनोंको एकत्र करके ब्रह्म के संसर्गसे यह ब्रह्म ही है, ऐसा अग्नियोंने कहा ॥ ५॥

चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ —(अथ) इसके अनन्तर (एनम्) इसको (गार्हपत्यः) गार्हपत्य अग्नि ( अनुशशास ) उपदेश करता हुआ ( पृथिवी) पृथिवी( अग्निः ) अग्नि (अन्नम् ) अन्न (आदित्यः) आदित्य (इति) ये चारों मेरा शरीर हैं ( आदित्ये ) सूर्यमें ( यः ) जो ( एषः ) यह ( पुरुषः ) पुरुष ( दृश्यते ) दीखता है ( सः ) वह ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूं ( सः, एव ) वह ही ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूं ( इति ) इसप्रकार ॥ १ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर वह सब अग्नि अलग २ उपदेश देनेलगे उनमें पहिले गार्हपत्य कहनेलगा, कि पृथिवी अग्नि, अन्न और आदित्य ये चार मेरा शरीर हैं अर्थात् मैं चार प्रकारसे स्थित हूं, इन चारों शरीरोंमेंसे इस सूर्य में जो यह पुरुष एकाग्र चित्तवालेको दीखता है वह मैं गार्हपत्य अग्नि हूँ और जो गार्हपत्य अग्नि है वही मैं आदित्यमेंका पुरुष हूँ पृथिवी और अन्नका अग्नि और आदित्यके साथ भोज्यभावसे संबन्ध हैं और भक्षकपन आदि समानधर्मसे अग्नि और सूर्यका अत्यन्त अभेद है, इसलिये पहिले दो अन्न और पिछले दो अन्नाद हैं ॥ १ ॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां

लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्या-
वरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च
लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एतम् ) इसको (एवम्) इसप्रकार ( विद्वान् ) जानताहुआ ( उपास्ते ) उपासना करता है (सः) वह ( पापकृत्याम् ) पापकर्मको (अपहते) विनाश करता है ( लोकी ) अग्निके लोकवाला (भवति ) होता है ( सर्वमायुः) संपूर्ण आयुको ( एति ) प्राप्त होता है ( ज्योग्जीवति ) प्रसिद्धि के साथ जीवित रहता है ( अस्य ) इसके ( अवरपुरुषाः ) वशीभूतजन ( न ) नहीं ( क्षीयन्ते ) क्षयको प्राप्त होते हैं। ( यः ) जो ( एतम् ) इसको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जानता हुआ ( उपास्ते ) उपासना करता है ( तम् ) उसको ( वयम् ) हम ( अस्मिन् ) इस ( च ) और ( अमुष्मिन्, च ) उस भी ( लोके ) लोकमें ( उपभुञ्जामः ) पालन करते हैं ॥२॥

( भावार्थ )—जो इस गार्हपत्य अग्निको इसप्रकार अन्न और अन्नादरूपसे चार भागमें विभक्त जानता हुआ उपासना करता है वह पापकर्मका नाश करता है. अग्निके लोकोंवाला होता है, सौ वर्षकी संपूर्ण आयुको पाता है, प्रसिद्ध होकर जीवित रहता है और इसकी सन्तानमें उत्पन्न हुए पुरुषोंका तथा सेवकोंका नाश नहीं होता है। जो इसको इस प्रकार जानताहुआ उपासना करता है, उसकी हमअग्नि इस लोकमें और परलोकमें रक्षा करते हैं ॥ १ ॥

चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो
नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरु-

षो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाऽहमस्मि ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) इसके अनन्तर ( एनम् ) इसको ( अन्वाहार्यपचनः ) दक्षिणाग्नि ( अनुशशास ) उपदेश देता हुआ ( आपः ) जल ( दिशः ) दिशायें ( नक्षत्राणि ) नक्षत्र ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा ( इति ) ये मेरे शरीर हैं ( चन्द्रमसि ) चन्द्रमामें ( यः ) जो ( एषः ) यह ( पुरुषः ) पुरुष ( दृश्यते ) दीखता है ( सः ) वह ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूं ( सः, एव ) वह ही ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूं ( इति ) इसप्रकार ॥ १ ॥

( भावार्थ )—फिर इसको दक्षिणाग्नि उपदेश देने लगा, कि–जल, दिशायें, नक्षत्र और चन्द्रमा ये चारों मेरे देह हैं उनमें से चन्द्रमामें जो यह पुरुष दीखता है वह मैं ही हूँ और जो दक्षिणाग्नि है वही मैं चन्द्रमामें स्थित पुरुष हूँ । यहां जल और नक्षत्र अन्न है तथा दिशा रूप दक्षिणाग्नि और चन्द्रमा क्रमसे उनके भोक्ता हैं ॥ १ ॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इसका अन्वय पदार्थ और भावार्थ एकादश खण्डके दूसरे मंत्रकी समान जानो क्योंकि दोनों मंत्रोंका एक पाठ है ॥ २ ॥

एकादशाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते

सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--( अथ ) इसके अनन्तर ( एनम् ) इसको ( आहवनीयः ) आहवनीय ( अनुशशास ) उपदेश देता हुआ ( प्राणः ) प्राण ( आकाशः ) आकाश ( द्यौः ) स्वर्ग ( विद्युत् ) बिजली ( इति ) ये मेरे शरीर हैं ( विद्युति ) बिजलीमें ( यः ) जो ( एषः ) यह ( पुरुषः ) पुरुष ( दृश्यते ) दीखता है ( सः ) वह ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूं ( सः, एव ) वह ही ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर इस उपकोसलको आहवनीय अग्नि उपदेश देने लगा, कि प्राण, आकाश, स्वर्ग और बिजली ये चारों मेरे शरीर हैं। बिजलीमें जो यह पुरुष दीखता है वही मैं आहवनीय अग्नि हूँ और जो आहवनीय अग्नि है वही मै बिजलीमेंका पुरुष हूँ। आकाश और स्वग क्रमसे बिजली तथा प्राणरूप आहवनीय अग्नि के आश्रय होनेसे पहिले दो भोग्य और पिछले दो भोक्ता हैं। आकाश बिजलीका आश्रय प्रकट रूपसे दीखता है और आहवनीय अग्निमें होम करनेसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है इसकारण स्वर्गको उसका आश्रय कहा है ॥ १ ॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इसका अन्वय पदार्थ और भावार्थ एकादश खण्डके दूसरे मंत्रकी समान जानो क्योंकि-दोनों मंत्रोंका पाठ एक है ॥ २ ॥

चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः

ते होचुरुपकोसलैषा सोम्य तेऽस्मद्विद्याऽऽत्मविद्या चाचार्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याचार्यस्तमाचार्योऽभ्युवादोपकोसल इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ते ) वह ( ऊचुः ) बोले ( उपकोसल ) हे उपकोसल ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( एषा ) यह ( अस्मद्विद्या ) हमारी विद्या ( च ) और ( आत्मविद्या ) आत्मविद्या ( ते ) तेरे लिये है ( आचार्यः, तु ) आचार्य तो ( ते ) तेरे अर्थ ( गतिम् ) गतिको ( वक्ता ) कहेगा ( इति ) ऐसा उपदेश देनेके अनन्तर ( अस्य ) इसका ( आचार्यः ) आचार्य ( आजगाम ) आगया ( आचार्यः ) आचार्य ( तम् ) उसको ( उपकोसल ) हे उपकोसल ( इति ) इसप्रकार ( अभ्युवाद ) पुकारता हुआ १

( भावार्थ ) तदनन्तर वह सब अग्नि इकट्ठे होकर कहने लगे, कि-हे सोम्य उपकोसल ! यह हमारी अग्नि विद्या तथा प्राण ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है इस प्रकार पहिले कही हुई आत्मविद्या तेरे लिये है और आचार्य तो तुझे विद्याके फलकी प्राप्तिके लिये गतिका उपदेश देंगे ऐसा कहकर अग्नि, चुप होगये। कुछ समय पीछे इसके आचार्य आये और वह कहने लगे, कि—हे उपकोसल ! सुन ॥ १ ॥

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति को नु मानुशिष्याद् भो इतीहापेव निह्नुत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इतीहाग्नीनभ्यूदे किं नु सोम्य किल तेऽवोचन्निति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( भगवः ) हे भगवन् ( इति ) ऐसा ( प्रतिशुश्राव ) प्रत्युत्तर देता हुआ ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ! ( ते ) तेरा ( मुखम् ) मुख ( ब्रह्मविदः, इव ) ब्रह्मज्ञानीकेसा ( भाति ) प्रतीत होता है ( कः, नु ) कौन ( त्वा ) तुझको ( अनुशशास ) उपदेश देता हुआ ( इति ) ऐसा गुरुके कहने पर ( भोः ) हे भगवन् ( माम् ) मुझको ( कः नु ) कौन ( अनुशिष्यात् ) उपदेश देता ( इति ) ऐसा कहकर ( अपनिह्नुते, इव ) मानो उसको अग्नियोंके उपदेशकी बात कहते हुए संकोच हुआ ( नूनम् ) निश्चय ( ईदृशाः ) ऐसे ( इमे ) ये ( इह ) यहां ( अन्यादृशाः ) और प्रकारके थे ( इति ) ऐसा ( अग्नीन् ) अग्नियोंको ( अभ्यूदे ) कहता हुआ ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( किल ) निश्चय ( ते ) वह ( किम्, नु ) क्या ( अवोचन् ) कहते हुए ( इति ) इस प्रकार ॥ २ ॥

( भावार्थ )—उपकोसलने कहा-हे भगवन् ! कहिये मैं सुनता हूं। आचार्यने कहा, कि-हे सोम्य ! तेरा मुख ब्रह्मज्ञानीकेसा प्रसन्न दीख रहा है, तुझे विद्याका उपदेश किसने दिया है ? उपकोसलने कहा कि-हे भगवन् ! जब आप चले गये तो मुझे और कौन उपदेश देता ? इस प्रकार पहिले तो वह अग्नियोंकी उपदेशकी हुई विद्याका परिचय देनेमें लज्जितसा हुआ, परन्तु फिर यह समझकर कि-गुरुसे दुराव करना पापकर्म है, इस लिये कहने लगा, कि—निःसन्देह इन अग्नियोंने मुझे उपदेश दिया है, यह पहिले तो और प्रकारके थे, अब आपके आने पर ये कम्पायमानसे हो रहे हैं, यह बात उसने गद्गद कण्ठसे कही तब आचार्यने कहा कि—हे सोम्य ! उन अग्नियोंने तुझे क्या उपदेश दिया है ? ॥

इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान् वाव किल सोम्य तेऽवोचन्नहन्तु तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवं विदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( इदम् ) यह ( इति ) ऐसा है इस प्रकार ( प्रतिजज्ञे ) प्रत्युत्तर देता हुआ ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन! ( किल ) निश्चय ( लोकान्, वाव ) लोकोंको ही ( ते ) तेरे अर्थ ( अवोचन् ) कहते हुए ( अहम्, तु ) मैं तो ( ते ) तेरे अर्थ ( तत् ) वह ( वक्ष्यामि ) कहूंगा ( यथा ) जैसे ( पुष्करपलाशे ) कमलके पत्तेमें ( आपः ) जल ( न ) नहीं (श्लिष्यन्ते) चिपटते हैं ( एवम् ) इसी प्रकार ( एवंविदि ) ऐसा जानने वाले में ( पापम्, कर्म ) पाप कर्म ( न ) नहीं ( श्लिष्यते ) चिपटता है ( इति ) ऐसा कहने पर ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा कहने पर ( तस्मै ) तिसके अर्थ ( उवाच ) कहते हुए ॥ २ ॥

( भावार्थ )—ऐसा पूछने पर उपकोसलने, जो कुछ अग्नियोंने उपदेश दिया था वह सब क्रमसे सुना दिया, आचार्यने कहा, कि-हे सोम्य ! अग्नियोंने तुझे सब ही लोकोंका उपदेश दिया है उन्होंने पूर्णरूपसे ब्रह्मका उपदेश नहीं दिया है, मैं तुझे पूर्णतया ब्रह्मका उपदेश दूंगा जैसे कमलके पत्तेमें जल नहीं चिपटता है तैसे ही ब्रह्मज्ञानी पुरुषमें पाप लिप्त नहीं होता। उपकोसलने कहा, कि-हे भगवन् ! उपदेश दीजिये, इस पर आचार्य उस को उपदेश देने लगे ॥ २ ॥

चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ।

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन् सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति॥१॥

अन्वय और पदार्थ-( एषः ) यह ( यः ) जो (अक्षिणि) चक्षुमें ( पुरुषः ) पुरुष ( दृश्यते ) दीखता है ( एषः ) यह ( आत्मा ) आत्मा है ( इति ) ऐसा (उवाच) कहते हुए (एतत्) यह ( अमृतम् ) अमृत ( अभयम् ) निर्भय है ( एतत् ) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( यद्यपि ) यद्यपि ( सर्पिः ) घृत ( वा ) वा ( उदकम् ) जल ( सिञ्चति ) सींचता है ( तत् ) वह ( वर्त्मनी ) मार्गोंमें को ( गच्छति ) जाता है ॥ १॥

( भावार्थ )-इन्द्रियोंको तथा अन्तःकरणको नियममें रखने वाले विवेकी पुरुष चक्षुमें जिस द्रष्टा पुरुषको देखते हैं वह प्राणियोंका आत्मा है, यह बात आचार्यने कही, यह आत्मतत्त्व अविनाशी, अभय और अनन्त ब्रह्म है, यह भी कहा कि-तिस पुरुषके स्थानरूप नेत्रमें जो घी वा जल डालते हैं वह इधर उधर कोयोंमें को चला जाता है नेत्रमें चिपटता नहीं, जब स्थानका ही यह प्रभाव है तो फिर उस चक्षुमें रहनेवाले पुरुषके निरञ्जन और निर्लेप होनेमें तो कहना ही क्या है ? ॥ १ ॥

एतꣳ संयद्वाम इत्याचक्षत एतꣳहि सर्वाणि वामानि ~~नयति~~ सर्वाण्येनं वामान्याभिसंयन्ति य एवं वेद ॥ २ ॥ न्यभिसंयन्ति॥

अन्वय और पदार्थ —( एतम् ) इसको ( संयद्वाम इति ) संयद्वाम इस नामसे ( आचक्षते ) कहते हैं ( हि ) क्योंकि-( सर्वाणि ) सब ( वामानि ) मङ्गल ( एतम् ) इसको ( अभि

संयन्ति ) चारों ओरसे प्राप्त होते हैं ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( एनम् ) इसको ( सर्वाणि ) सब ( वामानि ) शुभ ( अभिसंयन्ति ) चारों ओरसे प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )—इस चक्षुमें स्थित पुरुषको ब्रह्मवेत्ता संयद्वाम कहते हैं, क्योंकि—इस पुरुषको चारों ओरसे सब प्रकारके मङ्गल प्राप्त होते हैं, जो ऐसा जानकर उपासना करता है उसको भी चारों ओरसे सकल मङ्गल प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति
सर्वाणि वामानि नयति, य एवं वेद ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--( उ ) और ( एषः, एव ) यह पुरुष ही ( वामनीः ) वामनी है ( एषः, हि ) यह ही ( सर्वाणि ) सब ( वामानि ) वामोंको ( नयति ) प्राप्त कराता है ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( सर्वाणि ) सब ( वामानि ) वामोंको ( नयति ) पाता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-यह पुरुष ही निःसन्देह वामनी कहिये पुण्यकर्मोंके फल प्राप्त करानेवाला है, क्योंकि-यह पुरुष प्राणियोंके सकल पुण्यकर्मोंके फल उनके पुण्यकर्मोंके अनुसार प्राप्त कराता है, ऐसा जानकर जो उपासना करता है वह सकल पुण्यकर्मोंके फलोंको पाता है ॥ ३ ॥

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति
सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( उ ) और ( एषः, एव ) यह ही ( भामनीः ) भामनी है ( हि ) क्योंकि ( सर्वेषु ) सब ( लोकेषु ) लोकोंमें ( भाति ) प्रकाशता है ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा

(वेद) जानता है ( सर्वेषु ) सब ( लोकेषु ) लोकोंमें ( भाति ) प्रकाशता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-यह पुरुष ही निःसन्देह भामनी कहिये प्रकाशरूप है क्योंकि यह पुरुष सब लोकोंमें आदित्य रूपसे प्रकाशता है, ऐसा जो जानकर उपासना करता है वह सब लोकोंमें प्रकाशवान् होता है ॥ ४ ॥

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति, यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाᳬस्तान् मासेभ्यः संवत्सरᳬ सम्वत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्त्तं नावर्त्तन्ते नावर्त्तन्ते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यदु, चैव ) जो ( अस्मिन ) इस पुरुषमें ( शव्यम् ) अन्त्येष्टि क्रियाको ( कुर्वन्ति) करते हैं ( यदि च ) अथवा ( न ) नहीं करते हैं ( अर्चिषम् एव ) अर्चिको ही ( अभिसंयन्ति ) प्राप्त होते हैं ( अर्चिषः ) अर्चिसे ( अहः ) दिनको ( अह्नः ) दिनसे ( आपूर्यमाणपक्षम् ) आपूर्यमाणपक्षको ( आपूर्यमाणपक्षात् ) आपूर्यमाणपक्षसे ( यान् षट् ) जिन छः मास [ सूर्यः ] सूर्य ( उदक् ) उत्तर दिशाको ( एति ) प्राप्त होता है ( तान् ) तिन ( मासान् ) महीनों को ( मासेभ्यः ) मासोंसे ( संवत्सरम् ) संवत्सरको ( संवत्सरात् ) संवत्सरसे ( आदित्यम् ) आदित्यको ( आदित्यात् ) आदित्यसे ( चन्द्रमसम् ) चन्द्रमाको ( चन्द्रमसः ) चन्द्रमासे

( विद्युतम् ) विद्युत्को [ एति ] प्राप्त होता है ( तत् ) तहां ( अमानवः ) मानवी सृष्टिसे भिन्न ( पुरुषः ) पुरुष [ आगच्छति ] आता है ( सः ) वह ( एनान् ) इनको ( ब्रह्म, गमयति ) ब्रह्म लोकमें लेजाता है ( एषः ) यह ( देवपथ ) देवमार्ग ( ब्रह्मपथः ) ब्रह्ममार्ग है ( एतेन ) इस मार्गके द्वारा ( प्रतिपद्यमानाः ) प्राप्त होते हुए पुरुष ( इमम् ) इस ( मानवम् ) मनुकी सृष्टिरूप ( आवर्त्तम् ) संसारचक्रको ( न, आवर्त्तन्ते ) नहीं प्राप्त होते हैं ( न, आवर्त्तन्ते ) नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

( भावार्थ ) अब यदि इस पुरुषमें सुख गुणवाले चक्षु में स्थित पुरुषको संयद्वाम, वामनी और भामनी गुणोंसे युक्त मानकर इसकी उपासना करनेवाले तथा प्राणसहित अग्निविद्याकी उपासना करनेवाले मनुष्यकी मरणके पीछेकी अन्त्येष्टि क्रियाकी जाय चाहे न कीजाय वह सूर्य की किरणोंके अभिमानी अर्चिदेवताको ही प्राप्त होता है, अर्चिसे दिनके अभिमानी देवताको, दिनके अभिमानी देवतासे शुक्लपक्षके अभिमानी आपूर्यमाणपक्ष को, आपूर्यमाणपक्षसे जिन छः महिनेमें सूर्य उत्तरकी ओरको जाता है उन मासोंको कहिये उत्तरायणके देवता को, प्राप्त होता है, उन मासोंसे वर्षके अभिमानी देवता को, उससे आदित्यको, आदित्यसे चन्द्रमाको और चन्द्रमासे विजलीको प्राप्त होता है, तहां ब्रह्मलोकसे कोई मानवी सृष्टिसे बाहरका दिव्य पुरुष आता है और वह इन उपासकोंको सत्यलोकमें स्थित ब्रह्मके समीप पहुँचाता है, यह देवमार्ग है अर्थात् किरण आदिके अभिमानी देवता जिस मार्गमें उपासकोंको लेजानेका काम करते हैं ऐसा मार्ग है, यही ब्रह्ममार्ग कहिये ब्रह्मके पास पहुँचानेवाला मार्ग है, इस मार्गसे ब्रह्मके समीप पहुँच-

नेवाले पुरुष, इस वर्त्तमान मनुकी सृष्टिरूप मानव संसार चक्रमें नहीं आते हैं, [ परन्तु दूसरे कल्पमें फिर लौटकर आते हैं अहंग्रह उपासना न होनेके कारण उनको विदेह कैवल्यकी प्राप्ति नहीं होती ] ॥ ५ ॥

चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निदँ सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक् च वर्त्तनी ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( अयम् ) यह ( पवते ) चलता है ( वै ) निश्चय ( एषः, ह ) यह ही ( यज्ञः ) यज्ञ है ( एषः, ह ) यह ही ( यन् ) चलता हुआ ( इदम् ) इस सर्वम्) सबको ( पुनाति ) पवित्र करता है ( यत् ) जो ( एषः ) यह ( यन् ) चलता हुआ ( इदम् ) इस ( सर्वम् ) सबको ( पुनाति ) पवित्र करता है ( तस्मात् ) तिससे ( एषः, एव ) यह ही ( यज्ञः ) यज्ञ है ( मनः ) मन ( च ) और ( वाक् च ) वाणी भी ( तस्य ) उसके ( वर्त्तनी ) मार्ग हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-जो यह चलता है यह प्रसिद्ध वायु ही यज्ञ है, यह वायु ही चलता हुआ इस सब जगत्को पवित्र करता है, इस पवित्र करनेके कारणसे ही यह यज्ञ है, मंत्रोच्चारणमें प्रवृत्त हुई वाणी और यथार्थ अर्थके ज्ञानमें प्रवृत्त हुआ मन ये दो इस यज्ञके मार्ग हैं? ॥

तयोरन्यतरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा वाचा होताध्वर्युरुद्गाताऽन्यतराँ स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति ॥ २ ॥

अन्वय और पदाथ-( तयोः ) उन दोनोंमें ( अन्यतराम् )

एकको ( ब्रह्मा ) ब्रह्मा ( मनसा ) मनसे ( संस्करोति ) संस्कार युक्त करता है ( अन्यतराम् ) दूसरे एकको ( होता ) होता ( अध्वर्युः ) अध्वर्यु ( उद्गाता ) उद्गाता ( वाचा ) वाणीसे ( संस्करोति ) संस्कारयुक्त करता है ( प्रातरनुवाके ) प्रातःकाल के अनुवाकके ( उपाकृते ) आरम्भ करने पर ( परिधानीयायाः ) परिधानीयाके ( पुरा ) पहिले ( यत्र ) जहां ( सः ) वह ( ब्रह्मा ) ब्रह्मा ( व्यववदति ) बोलता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )–उन दोनोंमेंके एक मन रूप मार्गका, विवेक विज्ञानवाले मनसे मौन धारण किये हुए ब्रह्मा संस्कार करता है और होता, अध्वर्यु तथा उद्गाता ये तीनों वाणीरूप मार्गका मन्त्रोचारणसे संस्कार करते हैं। प्रातः-कालके अनुवाकका आरम्भ करनेके अनन्तर समाप्ति की परिधानीया ऋचाके जपसे पहिले २ वह ब्रह्मा मौन को त्यागकर मन्त्रोच्चारण करनेलगता है ॥ २ ॥

अन्यतरामेव वर्त्तनीᳫँसᳫँस्करोति हीयतेऽन्यतरा स यथैकपाद् व्रजन् रथो वैकेन चक्रेण वर्त्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञᳫँ रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति स इष्ट्वा पापीयान् भवति॥३॥

अन्वय और पदार्थ-( अन्यतराम्, एव ) एकको ही ( संस्करोति) संस्कारयुक्त करता है (अन्यतरा) दूसरा मार्ग (हीयते) नष्ट होजाता है (यथा) जैसे ( एकपाद ) एक पैरवाला (व्रजन्) चलता हुआ ( वा ) या (एकेन) एक ( चक्रेण ) पहियेके साथ ( वर्त्तमानः ) वर्त्तमान ( रथः ) रथ ( रिष्यति ) नष्ट होजाता है ( एवम् ) ऐसे ही ( अस्य ) इसका ( सः ) वह ( यज्ञः ) यज्ञ ( रिष्यति ) नाशको प्राप्त होता है ( रिष्यन्तम् ) नष्ट होते हुए

के ( अनु ) पीछे२ ( यजमानः ) यजमान ( रिष्यति ) नष्ट होता है ( सः ) वह ( इष्ट्वा ) यजन करके ( पापीयान् ) बड़ाभारी पापी (भवति) होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-तब होता, अध्वर्यु और उद्गाता एक वाणीरूप मार्गका ही संस्कार करते हैं और ब्रह्माने जिस को संस्कारयुक्त नहीं किया है ऐसा मनरूप मार्ग नष्ट होजाता है ( छिद्रयुक्त होजाता है )। जैसे एक चरण वाला मनुष्य चलताहुआ अथवा एक पहियेसे चलता हुआ रथ नष्ट होजाता है इसीप्रकार इस यजमानका यज्ञ अयोग्य ब्रह्माके द्वारा मनरूप एक मार्गसे हीन होने के कारण नष्ट होजाता है। उस यज्ञका नाश होनेके अनन्तर ही यज्ञ ही जिसके प्राण हैं ऐसा यजमान नष्ट होता है, वह यजमान ऐसे यज्ञका अनुष्ठान करके पापका भागी होता है ॥ ३॥

अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदत्युभे एव वर्त्तनी संस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अब ( यत्र ) जहाँ (प्रातरनुवाके ) प्रातःकालके अनुवाकका ( उपाकृते ) आरम्भ करने पर ( परिधानीयायाः ) परिधानीयाके ( पुरा ) पहले ( ब्रह्मा ) ब्रह्मा ( न ) नहीं ( व्यववदति ) बोलता है ( उभे, एव ) दोनों ही ( वर्त्तनी ) मार्गोंको ( संस्कुर्वन्ति ) संस्कारयुक्त करते हैं ( अन्यतरा ) दोनोंमेंसे कोई एक भी ( न ) नहीं ( हीयते ) हीन होता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—और जहाँ प्रातःकालके अनुवाकरूप स्तोत्रका आरम्भ होजाने पर, परिधानीया नामवाली

समाप्तिकी ऋचासे पहिले ब्रह्मा बोलता नहीं है, किन्तु मौन रहता है तहाँ सब ऋत्विज् वाम और दक्षिण दोनों ही मार्गोंका संस्कार करते हैं, ऐसा होनेसे दोनोंमेंसे एक मार्ग भी नष्ट नहीं होता है ॥ ४ ॥

स यथोभयपाद् व्रजन् रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्त्तमानः प्रातितिष्ठति, एवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति, यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनु प्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान् भवति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( उभयपाद् ) दोनों पादवाला ( व्रजन् ) चलताहुआ ( सः ) वह ( वा ) या ( उभाभ्याम् ) दोनों ( चक्राभ्याम् ) पहियोंसे ( वर्त्तमानः ) सम्पन्न ( रथः ) रथ ( यथा ) जैसे ( प्रतितिष्ठति ) प्रतिष्ठित होता है ( एवम् ) ऐसे ही ( अस्य ) इसका ( यज्ञः ) यज्ञ ( प्रतितिष्ठति ) प्रतिष्ठित होता है ( प्रतितिष्ठन्तम् ) प्रतिष्ठित होतेहुए ( यज्ञम्, अनु ) यज्ञके पीछे ( यजमानः ) यजमान ( प्रतितिष्ठति ) प्रतिष्ठा पाता है ( सः ) वह ( इष्ट्वा ) यज्ञ करके ( श्रेयान् ) श्रेष्ठ ( भवति ) होता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—जैसे दो पैरसे चलनेवाला खड़ा हो-सकता है और प्रतिष्ठा पाता है अथवा जैसे दोनों पहियों से सम्पन्न रथ खड़ा होसकता है और प्रतिष्ठा पाता है इसीप्रकार यजमानका वह यज्ञ प्रतिष्ठित होता है और यज्ञके प्रतिष्ठित होनेपर यजमानकी भी प्रतिष्ठा होती है, वह यजमान ऐसे मौनके विज्ञानवाले ब्रह्मासे युक्त यज्ञको करके श्रेष्ठ होता है वह कल्याण पाता है ॥ ५ ॥

चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः

—०—

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाᳬ रसान् ।
प्राबृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः १

अन्वय और पदार्थ-( प्रजापतिः ) प्रजापति ( लोकान्, अभ्यतपत् ) लोकोंको उद्देश्य करके तप करता हुआ ( तप्यमानानाम् ) तपे हुए ( तेषाम् ) उनके ( रसान् ) रसोंको (प्राबृहत्) ग्रहण करता हुआ ( पृथिव्याः ) पृथिवी से ( अग्निम् ) अग्नि को ( अन्तरिक्षात् ) अन्तरिक्षसे ( वायुम् ) वायुको ( दिवः ) द्युलोकसे ( आदित्यम् ) आदित्यको ॥ १ ॥

( भावार्थ )-नित्यकर्मके अनुष्ठान को कहकर अब नैमित्तिक कर्मके प्रायश्चित्तविधान का आरम्भ करते हुए पहिले तीन लोकोंमेंसे तीन देवताओंकी उत्पत्ति को कहते हैं-प्रजापतिने लोकोंको उद्देश करके सार ग्रहण करनेकी इच्छासे ध्यानरूप तप किया, उन तपेहुए लोकोंके रस अर्थात् साररूप देवताओंको ग्रहण किया पृथिवीसे अग्निको, अन्तरिक्षसे वायुको और स्वर्गसे आदित्यको ॥

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानाᳬ रसान् प्राबृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( एताः ) इन ( तिस्रः ) तीन ( देवताः ) देवताओंको ( अभ्यतपत् ) तपताहुआ, (तप्यमानानाम् ) तपेजाते हुए ( तासाम् ) उनके ( रसान् ) रसोंको ( प्राबृहत् ) ग्रहण करताहुआ ( अग्नेः ) अग्निसे ( ऋचः ) ऋचाओंको ( वायोः ) वायुसे ( यजूंषि ) यजुओं को ( आदित्यात् ) आदित्यसे ( सामानि ) सामोंको ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उस प्रजापतिने तीनों देवताओंका सार ग्रहण करनेके लिये ध्यानरूप तप किया, ध्यान किये हुए

उन देवताओंके रसोंको (साररूप वेदोंको) ग्रहण किया। अग्निसे ऋचाओंको, वायुसे यजुओंको और आदित्य से सामोंको ग्रहण किया ॥ २ ॥

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्रावृहद् भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( एताम् ) इस ( त्रयीम्, विद्याम् ) त्रयी विद्याको (अभ्यतपत्) तपताहुआ (तप्यमानायाः) तपी जाती हुई ( तस्याः ) तिसके ( रसान् ) रसों को ( प्रावृहत्) ग्रहण करता हुआ ( ऋग्भ्यः ) ऋचाओंसे ( भूः इति ) भू इस के ( यजुर्भ्यः ) यजुओंसे ( भुवः, इति ) भुवर् इसको (सामभ्यः) सामोंसे ( स्वः, इति ) स्वः इसको ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—उसने ऋक् आदि त्रयी विद्याके उद्देश्य से ध्यानरूप तप किया, उस ध्यान की हुई विद्याके रसों को ( साररूप व्याहृतियोंको ) ग्रहण किया। ऋचाओंसे भूः को, यजुओंसे भुवः को और सामोंसे स्वः को ग्रहण किया ॥ ३ ॥

तद्यदृक्तो रिष्येद् भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेनर्चां वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) उसमें ( यदि ) जो (ऋक्तः) ऋचासे ( रिष्येत् ) छिद्र होय [ तर्हि ] तो ( भूः स्वाहा, इति ) भूः स्वाहा इससे ( गार्हपत्ये ) गार्हपत्यमें ( जुहुयात् ) होम करै ( ऋचाम्, एव ) ऋचाओंके ही ( यज्ञस्य ) यज्ञके ( विरिष्टम् ) छिद्रको ( सन्दधाति ) पूर्ण करता है ( ऋचाम् ) ऋचाओंके ( रसेन ) सारसे ( ऋचाम् ) ऋचाओंके ( वीर्येण ) बलसे ( तत् ) उसको [ सन्दधाति ] पूर्ण करता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-उस यज्ञमें यदि ऋचाओंके कारणसे कुछ त्रुटि होजाय तो 'भूः स्वाहा' कहकर गार्हपत्य अग्निमें होम करै, ऋग्वेदके सारभूत भूः स्वाहा इस व्याहृतिके द्वारा प्रायश्चित्तहोम करलेने पर ऋचाओंके कारणसे जो त्रुटि हुई है वह ऋचाओंके ही सार और बलसे पूर्ण होजाती है ॥ ४ ॥

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद् भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयात्तद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति ॥५॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यदि ) जो (यजुष्टः) यजुसे ( रिष्येत् ) छिद्र होय [ तर्हि ] तो ( भुवः, स्वाहा, इति ) भुवः स्वाहा इस व्याहृतिसे ( दक्षिणाग्नौ ) दक्षिणाग्निमें ( जुहुयात् ) होम करै ( यजुषाम् एव ) यजुओंके ही ( रसेन ) सारसे ( यजुषाम् ) यजुओंके ( वीर्येण ) बलसे ( यजुषाम् ) यजुओंके ( यज्ञस्य ) यज्ञके ( तत् ) उस ( विरिष्टम् ) छिद्रको (सन्दधाति) पूर्ण करता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—अब जो यजुके कारण से त्रुटि होजाय तो भुवः स्वाहा ऐसा कहकर दक्षिणाग्नि में होम करै, यह प्रायश्चित्त है। यजुओं के सम्बन्ध वाले यज्ञकी त्रुटि को पूर्ण करने के लिए अध्वर्यु जो पूर्ण करता है वह यजुओं के ही सारसे वा यजुओं के ही बल से पूर्ण करता है ॥ ५ ॥

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदाथ-(अथ)और (यदि)जो (सामतः) सामसे

रिष्येत्) छिद्र होय [तर्हि] तो (स्वः स्वाहा इति) स्वः स्वाहा ऐसा उच्चारण करके ( आहवनीये ) आहवनीय अग्नि में [जुहुयात्] होम करै ( साम्नाम् एव ) सामोंके ही ( रसेन ) सारसे ( साम्नाम् ) सामों के ( वीर्येण) बलसे ( साम्नाम् ) सामों के ( यज्ञस्य ) यज्ञके ( तत् ) उस ( विरिष्टम् ) छिद्रको ( सन्दधाति ) पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-और यदि सामके कारणसे यज्ञमें क्षति हुई हो तो स्वः स्वाहा ऐसा कहकर आहवनीय अग्निमें होम करै, यह व्याहृति प्रायश्चित्त रूप है, सामसम्बन्धी यज्ञके छिद्रको उद्गाता जो पूर्ण करता है वह सामोंके ही सारसे और सामोंके ही बलसे पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

तद्यथा लवणेन सुवर्णं सन्दध्यात्सुवर्णेन रजतꣳ रजतेन त्रपु, त्रपुणा सीसꣳ सीसेन लोहं, लोहेन दारु, दारु चर्मणा ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) सो ( यथा ) जैसे (लवणेन) लवणसे ( सुवर्णम्) सोनेको ( सुवर्णेन ) सोनेसे ( रजतम् ) चांदीको ( रजतेन ) चांदीसे ( त्रपु ) त्रपुको ( त्रपुणा ) त्रपुसे ( सीसम् ) सीसेको ( सीसेन ) सीसेसे ( लोहम् ) लोहको ( लोहेन ) लोहेसे ( दारु ) लकड़ीको (चर्मणा) चमड़ेसे (दारु) लकड़ीके ( सन्दध्यात् ) जोड़ै ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-जैसे सुहागा आदि क्षार पदार्थसे सुवर्ण को, सुवर्णसे चांदीको, चांदीसे त्रपुको, त्रपुसे सीसे को, सीसेसे लोहेको, लोहेसे और चमड़ेसे काठको जोड़ते हैं अर्थात् इनके अवयवोंको परस्पर अच्छे प्रकार से संबद्ध करदेते हैं ॥ ७ ॥

एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या

विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टꣳ सन्दधाति ॥ भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एवम्) इसप्रकार (एषाम्) इन (लोकानाम्) लोकोंके (आसाम्) इन (देवतानाम्) देवताओंके (अस्याः) इस (त्रय्याः) त्रयी (विद्यायाः) विद्या के (वीर्येण) बलसे (यज्ञस्य) यज्ञकी (विरिष्टम्) त्रुटि को (सन्दधाति) पूर्ण करता है (यत्र) जिस यज्ञ में (एवंविद्) ऐसा जानने वाला (ब्रह्मा) ब्रह्मा (भवति) होता है (एषः) यह (यज्ञः) यज्ञ (ह वा) निश्चय (भेषजकृतः) वैद्य के सुधारे हुए रोगी की समान सुधरता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)--इसीप्रकार सकल लोकोंको सकल देवताओंके त्रयी विद्या के और रसरूप व्याहृतियोंके बल से यज्ञकी त्रुटिको ब्रह्मा पूर्ण करता है। जिस यज्ञ में इसप्रकार व्याहृतियों के द्वारा होमरूप प्रायश्चित्त को जाननेवाला ब्रह्मा होता है वह यज्ञ निःसन्देह सुधरता है, जैसे कि--कुशल वैद्यकी औषधसे रोगीका शरीर सुधरता है ॥ ८ ॥

एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवत्येवंविदꣳ ह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा यतो-यत आवर्त्तते तत्तद् गच्छति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जहां (एवंविद्) इसप्रकार जाननेवाला (ब्रह्मा) ब्रह्मा (भवति) होता है (एषः) यह (ह वै) प्रसिद्ध (यज्ञः) यज्ञ (उदक्प्रवणः) उत्तर मार्गकी प्राप्तिका हेतु [भवति] होता है (एवंविदम्) ऐसा जानने वाले (ब्रह्माणं, अनु) ब्रह्मा के प्रति (वै) निश्चय (एषा) यह (ह) प्रसिद्ध (गाथा) गाथा है (यतः,यतः) जहाँ जहाँ (आवर्त्तते)

छिद्र होता है ( तत् तत् ) तहाँ२ ( गच्छति ) प्राप्त होता है ॥९॥

(भावार्थ)-जहाँ इसप्रकार जाननेवाला ब्रह्मा होता है वह प्रसिद्ध यज्ञ उत्तरमार्ग की प्राप्ति कराता है, ऐसा जाननेवाले प्रसिद्ध ब्रह्माके विषयमें ब्रह्माकी स्तुतिसे पूर्ण यह गाथा है। जहाँ २ यज्ञ में त्रुटि होती है तहाँ उस त्रुटि को प्रायश्चित्तसे पूर्ण करके ब्रह्मा कर्त्ताओं की रक्षा करता है ॥ ९ ॥

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक् कुरूनश्वाऽभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानꣳ सर्वाꣳश्चर्त्विजोऽभिरक्षति तस्मादेवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम् ॥ १० ॥

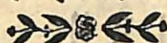
अन्वय और पदार्थ-( मानवः ) मनन करनेवाला (ब्रह्मा) ब्रह्मा नामका ( एकः ) एक ( ऋत्विक्, एव ) ऋत्विक् ही ( कुरून् ) यज्ञकर्त्ताओंको ( अश्वा, अभिरक्षति ) घोड़ेकी समान रक्षा करता है (वै) निश्चय ( एवंविद् ) ऐसा जाननेवाला (ह) प्रसिद्ध ( ब्रह्मा) ब्रह्मा( यज्ञम् ) यज्ञको (यजमानम् ) यजमानको (च)और (सर्वान् ) सब ( ऋत्विजः ) ऋत्विजोंको (अभिरक्षति) रक्षा करता है ( तस्मात् ) तिससे ( एवंविदम्, एव ) ऐसा जाननेवालेको ही ( ब्रह्माणम्, कुर्वीत ) ब्रह्मा करै (अनेवंविदम्) ऐसा न जाननेवालेको ( न ) नहीं (अनेवंविदम्) ऐसा न जानने वालेकोको ( न ) नहीं ॥ १० ॥

( भावार्थ )--मौन होकर श्रीभगवान्का ध्यानरूप मनन करनेवाला एक ब्रह्मा नामका ऋत्विक् ही कर्त्ताओं की रक्षा करता है, जिसप्रकार अपने ऊपर बैठनेवाले योधाओंकी घोड़ा रक्षा करता है। ऐसा जानने वाला प्रसिद्ध ब्रह्मा यज्ञकी, यजमानकी और सब

ऋत्विजों की, उनके कहे हुए दोषों को दूर करके रक्षा करता है, इस लिये इन कही हुई व्याहृति आदि को जानने वाले को ही यजमान ब्रह्मा बनाये, इन बातों को न जानने वाले को ब्रह्मा कभी न बनावे, कभी न बनावे ॥ १० ॥

इति श्री छान्दोग्य उपनिषद् में अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित चतुर्थ अध्याय समाप्त.

# अथ पञ्चमोऽध्यायः



सगुणब्रह्मकी उपासनाकी देवयानमार्गरूप गति कहीजाचुकी अब इस पांचवें अध्यायमें पञ्चाग्निविद्यावाले गृहस्थकी और श्रद्धावान् तथा पञ्चाग्नि विद्यासे अन्य सगुणविद्यामें निष्ठावाले ब्रह्मचारी आदिकोंकी उस ही गतिका अनुवाद करके, दक्षिण दिशासे संबन्ध रखनेवाले केवल कर्मकर्त्ताओंकी धूम आदि लक्षण वाली पुनरावृत्तिरूप दूसरी गति, तथा इन दोनों गतियोंसे भिन्न तीसरी अत्यन्त कष्टरूप संसारकी गति वैराग्यके निमित्त कही जायगी। वाक् आदिके साथ मिलकर काम करनेवाला होनेके कारण समान होकर भी प्राण वाक् आदिमें क्यों श्रेष्ठ है ? और उसकी किसप्रकार उपासना होती है ? यह शङ्का होती है, इस लिये पहले प्राणके श्रेष्ठता आदि गुणोंको दिखानेका आरम्भ करते हैं—

ॐ यो ह वै ज्येष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च वेद, ज्येष्ठश्च ह ।
वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( ह ) प्रसिद्ध ( ज्येष्ठम् ) ज्येष्ठको ( च ) और ( श्रेष्ठम्, च ) श्रेष्ठको भी ( वै ) निश्चय ( वेद ) जानता है [ सः ] वह ( वै ) प्रसिद्ध ( ह )

प्रसिद्ध ( ज्येष्ठः ) ज्येष्ठ ( च ) और ( श्रेष्ठः च ) श्रेष्ठ ॥ ( भवति ) होता है ( प्राणः वाव ) प्राण ही ( ज्येष्ठः ) ज्येष्ठ ( च ) और ( श्रेष्ठः, च ) श्रेष्ठ भी [ अस्ति ] है ॥१॥

( भावार्थ )-जो ज्येष्ठ अवस्थासे ( प्रथम ) को तथा श्रेष्ठ ( गुणोंसे अधिक ) को जानता है, वह निश्चय ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होता है, वाक् आदि इन्द्रियोंमें प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वाव वसिष्ठः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( वै ) निश्चय ( ह ) प्रसिद्ध ( वसिष्ठम् ) अत्यन्त धनवान्को ( वेद ) जानता है [ सः ] वह ( स्वानाम् ) अपनोंमें ( ह ) प्रसिद्ध ( वसिष्ठः ) अतिधनवान् ( भवति ) होता है ( वाग्, वाव ) वाक् ही ( वसिष्ठः ) अत्यन्त धनवान् है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो अतिधनवान्को जानता है वह अपनी ज्ञातिवालोंमें अत्यन्त धनवान् होता है। उत्तम वाणी वाला अधिक धन प्राप्त करता है, इसकारण वाणी ही अत्यन्त धनवान् है ॥ २ ॥

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( वै ) निश्चय ( ह ) प्रसिद्ध ( प्रतिष्ठाम् ) स्थितिको ( वेद ) जानता है [ सः ] वह ( अस्मिन् ) इस ( लोके ) लोकमें ( च ) और ( अमुष्मिन् ) उस ( लोके ) लोकमें ( ह ) प्रसिद्धरूपसे ( प्रतितिष्ठति ) स्थित होता है ( चक्षुः, वाव ) चक्षु ही ( प्रतिष्ठा ) स्थिति है ॥३॥

( भावार्थ )-जो प्रतिष्ठा ( स्थिति ) को जानता है

वह इस लोकमें और परलोकमें स्थित होता है। पुरुष चक्षुसे सम और विषम स्थानमें स्थित होता है, इस कारण चक्षु ही प्रतिष्ठा है ॥ ३ ॥

यो ह वै सम्पदं वेद सᳫं हाऽस्मै कामाः पद्यन्ते दैवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव सम्पत् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यः ) जो ( वै ) निश्चय ( ह ) प्रसिद्ध ( सम्पदम् ) सम्पदाको ( वेद ) जानता है ( अस्मै ) इसके लिये ( ह ) प्रसिद्ध ( दैवाः ) देवसम्बन्धी ( च ) और ( मानुषाः च ) मनुष्यसम्बन्धी भी ( कामाः ) काम ( सम्पद्यन्ते ) सम्पन्न होते हैं ( श्रोत्रम्, वाव ) श्रोत्र ही ( सम्पत् ) सम्पत् है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जो सम्पत्‌को जानता है, उसको स्वर्ग आदिके देव सम्बन्धी विषय और पशु आदि मनुष्य-सम्बन्धी विषय प्राप्त होते हैं। श्रोत्र (कान) से वेद तथा उसके अर्थके विज्ञानको ग्रहण कियाजाता है, उसको ग्रहण करनेपर प्राणी कर्म करता है और उस कर्मसे विषय प्राप्त होते हैं, इसकारण श्रोत्र ही सम्पत् है ॥४॥

यो ह वा आयतनं वेदाऽऽयतनᳫं स्वानां भवति, मनो ह वा आयतनम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( वै ) निश्चय ( ह ) प्रसिद्ध ( आयतनम् ) आश्रयको ( वेद ) जानता है [ सः ] वह ( स्वानाम् ) अपनोंका ( आयतनम् ) आश्रय ( भवति ) होता है ( वै ) निश्चय ( मनः ) मन ( ह ) प्रसिद्ध ( आयतनम् ) आश्रय है ॥

( भावार्थ )-जो आश्रयको जानता है वह अपनी जातिवालोंका आश्रय होता है । भोक्ताको जिनका प्रयोजन होता है और इन्द्रियें जिनको लाती हैं ऐसे

ज्ञानरूप विषयोंका आश्रय मन ही है, इसकारण मन ही प्रसिद्ध आश्रय है ॥ ५ ॥

अथ ह प्राणा अहꣳ श्रेयसि व्यूदिरेऽहं श्रेयानस्म्यहꣳ श्रेयानस्मि ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अब ( ह ) प्रसिद्ध ( प्राणाः ) प्राण ( अहंश्रेयसि ) अपने श्रेष्ठपनेके विषयमें ( अहम् ) मैं ( श्रेयान् ) श्रेष्ठ ( अस्मि ) हूं ( अहम् ) मैं ( श्रेयान् ) श्रेष्ठ ( अस्मि ) हूं ( इति ) इसप्रकार ( व्यूदिरे ) विवाद करनेलगे ॥

( भावार्थ )—ऊपर जो गुण कहे हैं वे मुख्य प्राणमें रहते हैं वाणी आदि एक २ में नहीं रहते हैं, इस तत्त्व को एक उपाख्यानके द्वारा दिखाते हैं, कि-वाक् आदि प्राण, मैं श्रेष्ठ हूं, मैं श्रेष्ठ हूँ इसप्रकार कहकर अपनी २ श्रेष्ठताके विषयमें विवाद करनेलगे ॥ ६ ॥

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन् को नः श्रेष्ठ इति तान् होवाच यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति॥७॥

अन्वय और पदार्थ-( ते ) वे ( ह ) प्रसिद्ध ( प्राणाः ) प्राण ( पितरम् ) पिता ( प्रजापतिम् ) प्रजापतिको ( एत्य ) प्राप्त होकर ( इति ) इसप्रकार ( ऊचुः ) कहनेलगे ( भगवन् ) हे भगवन् ( नः ) हममें ( कः ) कौन ( श्रेष्ठः ) श्रेष्ठ है (तान्) उनको ( ह ) वह प्रसिद्ध प्रजापति ( वः ) तुममेंसे ( यस्मिन्, उत्क्रान्ते ) जिसके निकलने पर ( शरीरम् ) शरीर ( पापिष्ठम् इव ) पापिष्ठकी समान ( दृश्येत ) दीखे ( सः ) वह ( वः ) तुममें ( श्रेष्ठः ) श्रेष्ठ है ( इति ) ऐसा ( उवाच ) बोला ॥७॥

( भावार्थ )—वे प्रसिद्ध प्राण इसप्रकार विवाद करते हुए अपनी श्रेष्ठताको जाननेके लिये प्रजापति रूप पिता

के पास आकर कहनेलगे, कि—भगवन् ? हममें श्रेष्ठ कहिये गुणोंमें बड़ा कौन है ? प्रजापतिने उत्तर दिया, कि-तुममेंसे जिसके शरीरमेंसे निकलजाने पर शरीर अधिक पापिष्ठ (मुरदासा) दीखने लगे,वही तुममें श्रेष्ठ है

सा ह वागुच्चक्राम सा सम्वत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सा ) वह ( ह ) प्रसिद्ध ( वाक् ) वाणी ( उच्चक्राम ) निकल गयी ( सा ) वह ( सम्वत्सरम् ) वर्षभर ( प्रोष्य ) प्रवास करके ( पर्येत्य ) फिर लौट आकर ( मत्, ऋते ) मेरे बिना ( जीवितुम् ) जीनेको ( कथम् ) कैसे ( अशकत ) समर्थ हुए ( इति ) ऐसा ( उवाच ) बोली ( यथा ) जैसे ( कलाः ) गूँगे ( अवदन्तः ) वाणीसे न बोलते हुए ( प्राणेन ) प्राणके द्वारा ( प्राणन्तः ) श्वासोच्छ्वास लेते हुए ( चक्षुषा ) नेत्रसे ( पश्यन्तः ) देखते हुए ( श्रोत्रेण ) कानसे ( शृण्वन्तः ) सुनते हुए ( मनसा) मनसे ( ध्यायन्तः ) ध्यान करते हुए [ जीवन्ति ] जीते हैं ( एवम् ) इसीप्रकार [ वयम्, अजीविष्म ] हम जीवित रहे ( इति ) इस उत्तरको सुनकर ( ह ) वह प्रसिद्ध ( वाक् ) वाणी ( प्रविवेश ) प्रवेश करगयी ॥ ८॥

( भावार्थ )-प्रजापतिके इस उत्तरको सुननेके अनन्तर पहिले वाणी शरीरमेंसे निकली अर्थात् वाणीने अपना व्यापार करना बन्द कर दिया और वह एक वर्ष पर्यन्त बाहर रही अर्थात् अपने व्यापारको बन्द किये

रही और फिर लौटकर कहनेलगी, कि-हे इन्द्रियों! तुमने मेरे बिना किसप्रकार जीवन धारण किया था? अन्य इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि-जैसे गूंगे प्राणी एक वाणीका उच्चारण न करसकने पर भी प्राणके द्वारा श्वास प्रश्वास लेकर, चक्षुके द्वारा देखकर, कानोंके द्वारा श्रवण करके और मनके द्वारा मनन करके जीवित रहते हैं, हमने भी इसीप्रकार जीवन धारण किया था, यह सुनकर वाणीको निश्चय होगया कि-मैं इनमें मुख्य नहीं हूँ और वह फिर शरीरमें प्रवेश करके अपना व्यापार करने लगीं ॥ ८ ॥

चक्षुर्होच्चक्राम तत्सम्वत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथाः यथान्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ—( ह ) प्रसिद्ध ( चक्षुः ) चक्षु ( उच्चक्राम ) बाहर निकलगया ( तत् ) वह ( सम्वत्सरम् ) एक वर्षतक ( प्रोष्य ) प्रवास करके ( पर्येत्य ) लौटके आकर ( मत्, ऋते ) मेरे बिना ( जीवितुम् ) जीनेको ( कथम् ) कैसे ( अशकत ) समर्थ हुए ( इति ) ऐसा ( उवाच ) बोला ( यथा ) जैसे ( अन्धाः ) अन्धे ( अपश्यन्तः ) न देखते हुए ( प्राणेन ) प्राणसे ( प्राणन्तः ) श्वास प्रश्वास लेतेहुए ( वाचा ) वाणीसे ( वदन्तः ) बोलते हुए ( श्रोत्रेण ) कानसे ( शृण्वन्तः ) सुनते ( मनसा ) मनसे ( ध्यायन्तः ) ध्यान करते हुए [ जीवन्ति ] जीते हैं ( एवम् ) ऐसे ही [ वयम् अजीविष्म ] हम जिये थे

( इति ) इस उत्तरको सुनकर ( ह ) वह प्रसिद्ध ( चक्षुः ) चक्षु ( प्रविवेश ) प्रवेश करगया ॥ ९ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर प्रसिद्ध चक्षु शरीरमेंसे निकल गया एक वर्ष पर्यन्त वह बाहर रहकर फिर लौटकर आया और कहनेलगा, कि-हे इन्द्रियों ! तुमने मेरे विना कैसे जीवन धारण किया ? अन्य इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि--जैसे अन्धोंको दीखता तो नहीं परन्तु वे प्राणके द्वारा श्वास प्रश्वास लेतेहुए वाणीके द्वारा बोलते हुए, कानों से सुनते हुए और मनसे मनन करते हुए जीवन धारण करते हैं, इसीप्रकार हमने भी जीवन धारण किया, यह बात सुनकर चक्षुको निश्चय होगया, कि-मैं ही सबमें मुख्य नहीं हूँ और वह फिर शरीरमें घुसकर अपना व्यापार करनेलगा ॥ ९ ॥

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम तत्सम्वत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा वधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—( ह ) प्रसिद्ध ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र ( उच्चक्राम ) शरीरमेंसे निकलगया ( तत् ) वह ( सम्वत्सरम् ) एक वर्षतक ( प्रोष्य ) प्रवास करके (पर्येत्य) फिर लौट आकर ( मत्, ऋते ) मेरे विना ( जीवितुम् ) जीनेको ( कथम् ) कैसे ( अशकत ) समर्थ हुए ( इति ) ऐसा ( उवाच ) बोला ( यथा ) जैसे ( वधिराः ) बहरे ( अशृण्वन्तः ) न सुनते हुए ( प्राणेन ) प्राणके द्वारा ( प्राणन्तः ) श्वास प्रश्वास लेतेहुए ( वाचा ) वाणीसे (वदन्तः) बोलते हुए (चक्षुषा) चक्षुसे (पश्यन्तः) देखते

हुए ( मनसा ) मनसे ( ध्यायन्तः ) ध्यान करते हुए [ जीवन्ति ] जीते हैं ( एवम् ) इसीप्रकार [ वयम्, अजीविष्म ] हम जीवित रहे ( इति ) इस उत्तरको सुनकर ( ह ) वह प्रसिद्ध ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र ( प्रविवेश ) प्रवेश करगया ॥ १० ॥

( भावार्थ )-इसके अनन्तर श्रोत्र शरीरमेंसे निकल गया अर्थात् अपना व्यापार करना छोड़दिया और साल भर तक बाहर रहकर लौटआया तथा अन्य इन्द्रियोंसे कहने लगा, कि-मेरे विना तुमने जीवन धारण कैसे किया ? अन्य इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि-हे श्रोत्र ! जैसे बहिरे प्राणी कानोंसे नहीं सुनसकते, परन्तु प्राणके द्वारा श्वास प्रश्वास लेतेहुए, वाणीसे बोलते हुए, चक्षुसे देखते हुए और मनसे मनन करते हुए अपने जीवनको धारण करते हैं इसीप्रकार हमने भी अपने जीवनको धारण किया, यह सुनकर श्रोत्रको निश्चय होगया कि मैं मुख्य नहीं हूं और वह फिर शरीरमें प्रवेश करके अपना व्यापार करनेलगा ॥ १० ॥

मनो होच्चक्राम तत्सम्वत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ह ) प्रसिद्ध ( मनः ) मन (उच्चक्राम) शरीरमेंसे निकल गया ( तत् ) वह ( सम्वत्सरम् ) वर्षभर पर्यन्त (प्रोष्य ) प्रवास करके (पर्येत्य) फिर लौट आकर (उवाच)बोला (मद्, ऋते) मेरे विना(जीवितुम्) जीनेको (कथम्)कैसे (अशकत )

समर्थ हुए ( इति ) ऐसा ( उवाच ) बोला (यथा) जैसे (बाला) बालक ( अमनसः ) मनोवृत्तिसे शून्य होकर ( प्राणेन ) प्राणके द्वारा ( प्राणन्तः ) श्वास प्रश्वास लेते हुए ( वाचा ) वाणीसे ( वदन्तः ) बोलते हुए ( चक्षुषा ) चक्षुसे ( पश्यन्तः ) देखते हुए ( श्रोत्रेण ) श्रोत्रसे ( शृण्वन्तः ) सुनते हुए [ जीवन्ति ] जीते हैं ( एवम् ) इसीप्रकार [ वयम्, अजीविष्म ] हम जीवित रहे ( इति ) इस उत्तर को सुन कर ( ह ) वह प्रसिद्ध ( मनः ) मन ( प्रविवेश ) शरीर में प्रवेश करगया ॥ ११ ॥

( भावार्थ )—इसके अनन्तर प्रसिद्ध मन शरीरमें से निकलगया, वह एक वर्ष तक बाहर रहकर लौट आया और अन्य इन्द्रियोंसे कहने लगा, कि—तुमने मेरे बिना किसप्रकार जीवन धारण किया ? अन्य इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि—हे मन ! जैसे बालकों में मनकी वृत्ति का अभाव होता है अर्थात् अज्ञ बालक केवल मनके द्वारा मनन करने में असमर्थ होकर भी प्राण के द्वारा श्वास प्रश्वास लेते हुए, वाणी से बोलते हुए, नेत्रसे देखते हुए और कानसे सुनते हुए जीवित रहते हैं, इसीप्रकार हमने भी जीवनको धारण किया था, यह सुन कर मन को निश्चय होगया कि-मैं मुख्य नहीं हूं और वह फिर शरीर में प्रवेश करके अपने काम को करने लगा ॥ ११ ॥

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन् स यथा सुहयः पड्वीशशंकून् संखिदेदेवमितरान् प्राणान् समखिदत्तꣳहाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) इस के अनन्तर ( ह ) प्रसिद्ध ( सः ) वह ( प्राणः ) प्राण ( उच्चिक्रमिषन् ) निकलना

चाहता हुआ ( यथा ) जैसे (सुहयः) श्रेष्ठ घोड़ा ( पड्वीशशंकून् ) पैर बाँधने की कीलों को ( संखिदेत् ) अच्छे प्रकार से उखाड़ डालता है ( एवम् ) इसी प्रकार ( इतरान् ) अन्य ( प्राणान् ) प्राणों को ( समखिदत् ) उखाड़ता हुआ ( अभिसमेत्य ( इकट्ठे होकर ( ह ) प्रसिद्ध ( तम् ) उस प्राणको ( ऊचुः ) कहतेहुए ( भगवन् ) हे भगवन् ( एधि ) प्राप्त हूजिये ( त्वम् ) तुम ( नः ) हममें ( श्रेष्ठः, असि ) श्रेष्ठ हो ( इति ) इस कारण ( मा, उत्क्रमीः ) शरीरमेंसे मत निकलो ॥ १२ ॥

( भावार्थ ) इस प्रकार वाक् आदि इन्द्रियें मुख्य नहीं हैं, इस बातका निश्चय होजाने के अनन्तर प्रसिद्ध मुख्य प्राणने शरीरमें से निकलना चाहा, उस समय, जैसे एक बलवान् घोड़ा परीक्षा करने के लिये चाबुक मारने पर पैर बाँधने के खूँटों को उखाड़ डालता है, इसी प्रकार निकलते हुए प्राणने वाक्आदि अन्य प्राणों को उखाड़ डाला, तब उन सबोंने इकट्ठे होकर उस प्रसिद्ध प्राणसे कहा, कि-हे भगवन् ! आप अपने स्थान पर जाकर स्थित हूजिये, तुम हम सबोंमें श्रेष्ठ हो, इस कारण तुम इस शरीर में से उत्क्रमण न करो ॥ १२ ॥

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठाऽस्मि त्वं तत्प्रतिष्ठाऽसीति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) इस के अनन्तर ( ह ) प्रसिद्ध ( एनम् ) इसके प्रति ( वाक् ) वाणी ( उवाच ) बोली ( तत् ) सो ( अहम् ) मैं ( वसिष्ठः ) धनवान् ( अस्मि ) हूं ( तत ) जो ( वसिष्ठः ) धनवान् ( त्वम् ) तुम ( असि ) हो ( इति ) इस प्रकार ( अथ ) इसके अनन्तर ( एनम् ) इस के

प्रति ( ह ) प्रसिद्ध ( चक्षुः ) चक्षु ( उवाच ) बोला ( यत् ) जो ( अहम् ) मैं ( प्रतिष्ठा, अस्मि ) स्थिति हूँ ( तत् ) वह ( प्रतिष्ठा ) स्थिति ( त्वम्, असि ) तुमहो ( इति ) इसप्रकार ॥

( भावार्थ ) इसके अनन्तर मुख्य और प्रसिद्ध प्राण से वाणी कहने लगी कि—मैं जो धनवान् हूँ वह धनवान्‌पना आपका ही है, तदन्तर इस मुख्य प्राणसे चक्षु ने कहा, कि-मैं जो स्थिति हूँ वह स्थितिरूप भी तुम हो हो ॥ १३ ॥

अथ हैनं श्रोत्रमुवाच यदहꣳसम्पदस्मि त्वं तत्सम्पदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ —( अथ ); अनन्तर ( ह ) प्रसिद्ध ( एनम् ) इसके प्रति ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र ( उवाच ) बोला ( यत् ) जो ( अहम् ) मैं ( सम्पत्, अस्मि ) सम्पदा हूँ ( तत् ) वह ( सम्पद् ) सम्पदा ( त्वम्, असि ) तुम हो ( इति ) इस प्रकार ( अथ ) अनन्तर ( एनम् ) इसको ( ह ) प्रसिद्ध ( मनः ) मन ( उवाच ) बोला ( यत् ) जो ( अहम् ) मैं ( आयतनम् ) आश्रय ( अस्मि ) हूं ( तत् )सो( आयतनम्) आश्रय ( त्वम्, असि ) तुम हो ( इति ) इस प्रकार ॥ १४ ॥

( भावार्थ )—फिर इसके प्रति श्रोत्रने कहा, कि-मैं जो सम्पत् कहलाता हूं वह सम्पत् तूही है अर्थात् तेरे ही आश्रयसे मैं सम्पत् कहलाता हूँ, फिर इससे मनने कहा कि-मैं जो आश्रय हूं वह आश्रय तू ही है। इस प्रकार वाणी, नेत्र, श्रोत्र और मनने अपने में प्रतीत होनेवाले गुणोंको अपने न कहकर प्राणके ही बताया ॥ १४ ॥

न वै वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनाꣳसि-

सीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवै-
तानि सर्वाणि भवति ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वै ) निश्चय ( वाचः ) वाणियें ( इति ) ऐसा ( न ) नहीं ( चक्षूंषि ) चक्षु [ इति ] ऐसा ( न ) नहीं ( श्रोत्राणि ) कान [ इति ] ऐसा ( न ) नहीं ( मनांसि ) मन [ इति ] ऐसा ( न ) नहीं ( आचक्षते ) कहते हैं ( प्राणाः, इति, एव ) प्राण इस नामसे ही (आचक्षते) कहते हैं ( हि ) निश्चय ( एतानि ) ये (सर्वाणि )सब ( प्राणः, एव ) प्राण ही ( भवति ) होता हैं ॥ १५ ॥

( भावार्थ )-लौकिक पुरुष वा शास्त्र के ज्ञाता पुरुष वाक् आदि इन्द्रियों को, ये वाणी हैं वा ये चक्षु हैं, वा ये श्रोत्र हैं, अथवा ये मन हैं ऐसा नहीं कहते हैं, क्योंकि-ये स्वाधीनभाव से अपना २ व्यापार नहीं कर सकते हैं, किन्तु इनको प्राण नामसे कहते हैं, क्यों कि--इन सबकी मूलशक्ति प्राण ही है ॥ १५ ॥

पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

---

स होवाच किं-मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किञ्चि-
दिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा
एतदनस्यान्नमनो ह वैनाम प्रत्यक्षं नहवा
एवम्विदि किञ्चनानन्नं भवतीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ह ) प्रसिद्ध ( सः ) वह प्राण ( मे ) मेरा ( अन्नम् ) अन्न ( किम् ) क्या ( भविष्यति ) होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच ) बोला ( इदम् ) यह ( यत्किञ्चित् ) जो कुछ ( आश्वभ्यः ) कुत्तों से लेकर ( आशकुनिभ्यः ) पक्षियों प न्त [ अस्ति ] है ( इति ) ऐसा ( ह ) प्रसिद्ध रूपसे ( ऊचुः )

बोले ( तत् ) तिससे ( वै ) निश्चय ( एतत् ) यह ( अनस्य ) प्राणका ( अन्नम् ) अन्न है ( अनः ) अन ( वै ) निश्चय ( ह ) प्रसिद्ध ( प्रत्यक्षम् ) प्रत्यक्ष ( नाम ) नाम [ अस्ति ] है ( एवम्विदि ) ऐसा जानने वाले के विषय में ( वै ) निश्चय ( किञ्चन, ह ) कुछ भी ( अनन्नम्, इति ) अन्न है ऐसा ( न ) नहीं ( भवति ) होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—उस प्रसिद्ध मुख्य प्राण ने कहा, कि-मेरा अन्न क्या होगा ? इसके उत्तर में वाक् आदि इन्द्रियों ने कहा, कि-यह जो श्वानों पर्यन्त और पक्षियों पर्यन्त प्राणियों का अन्न है वही तेरा अन्न है, अन ( चेष्टा करने वाला ) यह प्राण का प्रत्यक्ष और प्रसिद्ध नाम है। सकल भूतों में स्थित और सकल अन्न का भक्षक प्राण मैं हूं, ऐसा जानने वालेके लिये जो सकल प्राणियोंका भक्ष्य होता है वह जो कुछ भी हो उसका अभक्ष्य नहीं होता है ( यह स्तुति मात्र है ) ॥१॥

स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाचाद्भिः परिदधति लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( ह ) प्रसिद्ध प्राण (मे) मेरा ( वासः ) वस्त्र ( किम् ) क्या ( भविष्यति ) होगा (इति) ऐसा ( उवाच ) बोला ( आपः ) जल ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( ऊचुः ) कहते हुए ( तस्मात् ) तिससे ( एतत् ) इस अन्नको ( अशिष्यन्तः ) भोजन करते हुए पुरुष ( पुरस्तात् ) पहिले ( च ) और ( उपरिष्टात्, च ) पीछे भी ( अद्भिः ) जलों करके ( परिदधति ) परिधान करते हैं ( लुम्भुकः, ह )

प्रसिद्ध वस्त्रको प्राप्त करने वाला ( भवति ) होता है ( ह ) प्रसिद्ध ( अनग्नः ) ओढ़ने के वस्त्र वाला ( भवति ) होता है २

( भावार्थ )—इसके अनन्तर उस प्राणने कहा, कि-मेरा वस्त्र क्या होगा ? इसके उत्तर में वाक् आदि इन्द्रियों ने कहा, कि जल तेरा वस्त्र है, क्योंकि-जल प्राण का वस्त्र है, इसलिए ही भोजन करने वाले और भोजन करते हुए विद्वान् द्विज, भोजन से पहले और पीछे जल से मुख्य प्राण को आचमन रूप वस्त्र पहराते हैं, जो ऐसा जानता है वह पहरने के वस्त्रों को पाता है और ओढ़ने के वस्त्रों को भी पाता है, कभी नग्न नहीं रहता

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।३।

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उस ( एतत् ) इस विद्या को (ह) प्रसिद्ध (सत्यकामः) सत्यकाम नामवाला (जाबालः) जबाला का पुत्र ( वैयाघ्रपद्याय ) व्याघ्रपद के पुत्र ( गोश्रुतये ) गोश्रुतिके अर्थ ( उक्त्वा ) कहकर (यदि) जो ( एतत् ) इसको (शुष्काय सूखे हुए ( स्थाणवे, अपि ) स्थाणु के अर्थ भी ( ब्रूयात् ) कहै [ तर्हि ] तो (अस्मिन्, एव) इसमें ही (शाखाः) शाखायें ( जायेरन् ) उत्पन्न होजायँ ( पलाशानि ) पत्ते ( प्ररोहेयुः ) उत्पन्न हो जायँ ( इति ) ऐसा ( उवाच ) बोला ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—जबालाके पुत्र सत्यकामने इस प्राणोपासना का उपदेश व्याघ्रपद् के पुत्र गोश्रुतिको दिया और फिर कहा, कि—यदि कोई प्राणोपासना को जानने वाला सूखे ठूँठको भी इसका उपदेश करे तो उस में निःसन्देह शाखायें निकल आवें और पत्ते आजाये

फिर यदि जीवधारी प्राणींको इसका उपदेश कियाजाय तो उस को महाफलकी प्राप्ति होगी, इसमें तो सन्देह ही क्या करना ? ॥ ३ ॥

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावस्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याꣳ रात्रौ सर्वौषधस्य मन्थं दाधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय, श्रेष्ठाय, स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ४ ॥ वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपादमवनयेत्संपदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( यदि ) जो महत्) महत पदको ( जिगमिषेत् ) पहुँचने की इच्छा करे [ तर्हि ] तो अमावास्यायाम् ) अमावास्या के दिन ( दीक्षित्वा ) दीक्षा लेकर ( पौर्णिमायाम् ) पूनो के दिन ( रात्रौ ) रातमें ( सर्वौषधस्य ) सकल औषधोंकी ( मन्थम् ) पीठीको ( दधिमधुनोः ) दही और शहद के साथ ( उपमथ्य ) मथकर ( ज्येष्ठाय, श्रेष्ठाय, स्वाहा, इति ) ज्येष्ठाय स्वाहा श्रेष्ठाय स्वाहा ऐसा बोलकर ( अग्नौ ) अग्नि में ( आज्यस्य ) घीका ( हुत्वा ) होम करके (सम्पातम्) शेष टपकते हुए घीको (मन्थे) उस पीठीमें (अवनयेत्) टपका देय ( वसिष्ठाय, स्वाहा, इति ) वसिष्ठाय स्वाहा ऐसा बोलकर ( अग्नौ ) अग्निमें ( आज्यस्य ) घीका ( हुत्वा ) होम करके ( सम्पातम् ) स्रुवेमें लगे टपकते हुए घीको ( मन्थे ) पीठीमें

(अवनयेत् ) टपका देय (प्रतिष्ठायै,स्वाहा,इति. प्रतिष्ठायै स्वाहा ऐसा बोलकर ( अग्नौ ) अग्नि में (आज्यस्य) घीका ( हुत्वा ) होम करके ( सम्पातम् ) स्रुवेमें लगे टपकते हुए घीको ( मन्थे ) पीठी में ( अवनयेत् ) टपकादेय ( सम्पदे, स्वाहा, इति ) सम्पदे स्वाहा ऐसा कह कर ( अग्नौ ) अग्निमें ( आज्यस्य ) घीका ( हुत्वा ) होम करके ( सम्पातम् ) स्रुवे में लगे टपकते हुए घीको ( मन्थे ) पीठी में ( अवनयेत् ) टपका देय ( आयतनाय, स्वाहा, इति ) आयतनाय स्वाहा ऐसा कह कर ( अग्नौ ) अग्नि में ( आज्यस्य ) घीका ( हुत्वा ) होम करके ( सम्पातम् ) स्रुवे में लगे टपकते हुए घीको ( मन्थे ) पीठी में ( अवनयेत् ) टपका देय ॥ ४ ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-प्राणविद्याकी सिद्धि होजाने पर यदि महत्त्व ( प्रतिष्ठा ) पाने की इच्छा हो तो अमावस्याके दिन दीक्षा लेकर अर्थात् भूमिमें सोना, दूध पीना,सत्य बोलना और ब्रह्मचर्यसे रहना इत्यादि नियमोंका पालन करके पूर्णिमाकी रात्रिमें सकल ग्राम और उसकी औषधियों की लुगदी बनाकर उसको दही और शहदमें मथलेय तथा उसको आगे रखकर १ ज्येष्ठाय स्वाहा, २श्रेष्ठाय स्वाहा, ३ वशिष्ठाय स्वाहा, ४ प्रतिष्ठायै स्वाहा, ५ सम्पदे स्वाहा, ६ आयतनाय स्वाहा, इन छहों मन्त्रोमेंसे एक२ को पढ़कर अग्निमें घी की आहुति देय और स्रुवे में लगा हुआ जो घी टपकता आवे उस को लुगदी में टपका देय ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानीति ॥६॥

इस मंत्रका ही जप करे कि अमो नाम: इति॥



अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( प्रतिसृप्य ) समीप में जाकर ( अञ्जलौ ) अञ्जलिमें ( मन्थम् ) उस पीठीको ( आधाय ) रखकर ( जपति ) जपता है ( अमः, नामा, असि ) प्राण नामवाला है ( हि ) क्योंकि ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( ते ) तेरा ( अमा ) प्राण है ( सः, हि ) वह ही ( ज्येष्ठः ) ज्येष्ठ ( श्रेष्ठः ) श्रेष्ठ ( राजा ) प्रकाशवान् ( अधिपतिः ) पालनकर्त्ता [ अस्ति ] है ( सः ) वह ( मा ) मुझं ( ज्यैष्ठ्यम् ) ज्येष्ठता ( श्रैष्ठ्यम् ) श्रेष्ठता ( राज्यम् ) प्रकाशवान्पना ( आधिपत्यम् ) पालकपना ( गमयतु ) प्राप्त कराओ ( अहम्, एव ) मैं ही ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( असानि ) होजाऊँ ( इति ) इस प्रकार ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर अग्निके कुछ एक समीप जाकर अञ्जलिमें वह पहिली पीठी लेकर इस मंत्रको जपता है-वह पीठी कहिये मन्थ प्राणका अन्न है इस कारण उसकी प्राणरूपसे स्तुति कीजाती है तू प्राण नाम वाला है क्योंकि-प्राणरूप तेरा यह सब जगत् है, तू ही ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, प्रकाशवान् और पालक है, ऐसा तू मुझे ज्येष्ठपना, श्रेष्ठपना, प्रकाशपना और पालकपना प्राप्त करा, मैं ही प्राणकी समान सब जगत् रूप होजाऊँ ॥ ६ ॥

अथ खल्वेतयर्चा पच्छमाचामति तत्सवितुर्वृणी-मह इत्याचामति, वयं देवस्य भोजनमित्या चामति, श्रेष्ठꣳसर्वधातममित्याचामति, तुरं भगस्य धीमहीति, सर्वं पिबति, निर्णिज्य कꣳꣳसं वा चमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि

स्त्रियं पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अनन्तर ( खलु ) प्रसिद्ध ( एतया ) इस ( ऋचा ) मंत्रके द्वारा ( पच्छः ) एक २ पदसे ( आचामति ) भक्षण करता है ( तत्सवितुर्वृणीमहे इति, आचामति ) तत्सवितुः वृणीमहे इस पादको बोलकर भक्षण करता है ( वयम् देवस्य भोजनम्, इति, आचामति ) वयं देवस्य भोजनम् इस पादको बोलकर भक्षण करता है ( श्रेष्ठं सर्वधातमम्, इति, आचामति ) श्रेष्ठं सर्वधातमम् इस पादको बोलकर भक्षण करता है ( तुरं भगस्य धीमहि, इति ) तुरं भगस्य धीमहि इस पदको बोलकर ( कंसम्, वा ) या कंस पात्रको ( चमसम्, वा ) अथवा चमसको ( निर्णिज्य ) धोकर ( सर्वम् ) सबको ( पिबति ) पीता है ( अग्नेः ) अग्निके ( पश्चात् ) पश्चिमकी ओर ( चर्मणि, वा ) या मृगचर्म पर ( स्थण्डिले, वा ) अथवा खुलीभूमि पर ( वाचंयमः ) वाणीको रोकेहुए ( अप्रसाहः ) काम क्रोध आदिके वश में न होता हुआ ( सः ) वह ( यदि ) जो ( स्त्रियम् ) स्त्रीको ( पश्येत् ) देखै ( कर्म ) कर्म ( समृद्धम् ) सफल हुआ ( इति ) ऐसा ( विद्यात् ) जानै ॥ ७ ॥

( भावार्थ )—इसके अनन्तर "तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमम्, तुरं भगस्य धीमहि ॥,, ( ऋ० ५। ८२। १ ) इस मंत्रके एक २ पाद से मंथके एक २ ग्रासका भक्षण करता है । "तत्सवितुर्वृणीमहे" ( आदित्यके उस मन्थरूप भोजनकी हम प्रार्थना करते हैं ) इस पादको बोलकर एक ग्रास खाय। "वयं देवस्य भोजनम्,,(हम देवके भोजनको मांगते हैं ) इस पादको बोलकर दूसरा ग्रास खाय । "श्रेष्ठं सर्वधातमम्" ( उस प्रशंसा करने योग्य और सबको अत्यन्त धारण करनेवाले भोजनको माँगते हैं ) इस पादको बोल

कर तीसरा ग्रास खाय। "तुरं भगस्य धीमहि" (सूर्यके स्वरूपका शीघ्र ध्यान करते हैं) इस पादको बोलकर कंस वा चमस नामक यज्ञपात्रको धोकर उस मन्थके सब लेपको पीजाय। फिर आचमन करके अग्निके पश्चिम भागमें (पूर्वको मुख करके) मृगचर्म पर वा खुली भूमि पर वाणीको रोके हुए (चुपचाप) और चित्तको वशमें किये हुए (काम क्रोध आदिके वशमें न होकर) शयन करै, वह यदि स्वप्नमें किसी स्त्रीको देखे तो समझ लेय कि-मेरा यह अनुष्ठान सफल होगया ॥ ७ ॥

तदेष श्लोको-यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳ स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसके विषयमें (एषः) यह (श्लोकः) पद्य है (यदा) जब (काम्येषु कर्मसु) काम्य कर्मों में (स्वप्नेषु) स्वप्नोंमें (स्त्रियम्) स्त्रीको (पश्यति) देखता है (तत्र) तब (तस्मिन्) तिस (स्वप्ननिदर्शने) स्वप्नके दर्शनमें (समृद्धिम्) सफलताको (जानीयात्) जाने ॥ ८ ॥

(भावार्थ)—इस विषयमें एक मन्त्र भी है, कि— काम्य कर्मोंके समय जब स्वप्नोंमें शक्तिरूपिणी स्त्रीका दर्शन होय तो उस स्वप्नका दर्शन होने पर कर्मको सफल हुआ समझे। "तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने" का दो वार कथन खण्डकी समाप्तिका सूचक है ॥ ८ ॥

पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानुत्वाऽशि-

षत् पितेत्यनु हि भगव इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ह ) प्रसिद्ध ( आरुणेयः ) अरुणिका पुत्र ( श्वेतकेतुः ) श्वेतकेतु ( पञ्चालानाम् ) पञ्चालोंकी ( समितिम् ) सभाको ( एयाय ) प्राप्त हुआ ( तम् ) उसके प्रति ( ह ) प्रसिद्ध ( जैवलिः ) जीवलका पुत्र ( प्रवाहणः ) प्रवाहण ( उवाच ) बोला ( कुमार ) हे कुमार ( त्वा ) तुझको ( पिता ) पिता ( अन्वशिषत् ) शिक्षा देता हुआ ( इति ) इस प्रकार ( भगवः ) हे भगवन् ( हि ) निश्चय (अनु) शिक्षा दी है ( इति ) इसप्रकार ॥ १ ॥

( भावार्थ )—अरुणिका पुत्र प्रसिद्ध श्वेतकेतु पञ्चाल देशकी सभामें जापहुँचा, उससे जीवलके पुत्र प्रवाहण ने कहा, कि--हे कुमार ! क्या तुझे तेरे पिताने शिक्षा दी है श्वेतकेतुने कहा, कि--हां भगवन् ! मेरे पिताने ही मुझे शिक्षा दी है ॥ १ ॥

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति, न भगव इति-
वेत्थ यथा पुनरावर्त्तन्त३ इति; न भगव इति-
वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्त्तनां
इति, न भगव इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( प्रजाः ) प्रजायें ( इतः ) यहांसे ( अधि ) ऊपर ( यत् ) जिसके प्रति ( प्रयन्ति ) प्राप्त होती हैं ( इति ) इसको ( वेत्थ ) जानता है ( भगवः ) हे भगवन् (न) नहीं जानता ( इति ) ऐसा कहा ( यथा ) जैसे ( पुनः ) फिर ( आवर्त्तन्ते ) लौटती हैं ( इति ) इसको ( वेत्थ ) जानता है ( भगवः ) हे भगवन् ( न ) नहीं जानता ( इति ) ऐसा कहा ( पथोः ) दोनों मार्गों मेंसे ( देवयानस्य ) देवयान मार्गके ( च ) और ( पितृयाणस्य ) पितृयान मार्गके ( व्यावर्त्तनां ) वियुक्तता

को ( वेत्थ ) जानता है (इति) ऐसा बूझा ( भगवः ) हे भगवन् ( न ) नहीं जानता ( इति ) ऐसा उत्तर दिया ॥ २ ॥

( भावार्थ )—इसके अनन्तर प्रवाहण ने बूझा, कि—हे श्वेतकेतु ! यदि तुमने अपने पितासे शिक्षा पायी है तो मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो। बताओ प्रजायें मरण होने पर इस लोकसे ऊपर कहाँ जाती हैं ? श्वेतकेतुने कहा, कि—हे भगवन् ! इस तत्त्वको मैं नहीं जानता। प्रवाहणने फिर बूझा, कि—जिस प्रकार फिर लौटकर आती हैं उस तत्त्वको जानता है ? श्वेतकेतुने कहा, कि—हे भगवन् ! इसको भी नहीं जानता। प्रवाहणने फिर बूझा कि- उपासक और कर्म करने वालोंको दो मार्ग हैं देवयान और दूसरा पितृयाण, मरण होने के अनन्तर एक ही दशामें जाने वाले प्राणी, अपने २ कर्म फल भोग के अनुसार इन दोनों मार्गों में जानेके लिये जुदे कहाँ से होते हैं, इस तत्त्वको जानता है ? श्वेतकेतुने उत्तर दिया कि—हे भगवन् ! मैं इसको भी नहीं जानता ॥ २ ॥

**वेत्थ यथाऽसौ लोको न संपूर्यत ३ इति, न-भगव इति, वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति, नैव भगव इति ॥ ३ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( यथा ) जैसे ( असौ ) यह (लोकः) लोक ( न ) नहीं ( सम्पूर्यते ) भरता है ( इति ) इसके तत्त्वको ( वेत्थ ) जानता है ( भगवः ) हे भगवन् ( न ) नहीं ऐसा उत्तर दिया ( यथा ) जैसे ( पञ्चम्याम् ) पाँचवी ( आहुतौ ) आहुति में ( आपः ) जल ( पुरुषवचसः ) पुरुष नामवाले ( भवन्ति ) होते हैं ( इति ) इस तत्त्वको ( वेत्थ ) जानता है ( भगवः ) हे भगवन् ( नैव ) नहीं ( इति ) ऐसा कहा ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जिस कारण से यह पितृलोक बहुतसे मरनेवालों से भर नहीं जाता है उस कारणको हे श्वेतकेतु ! तू जानता है? उसने उत्तर दिया, कि-हे भगवन् ! मैं नहीं जानता । प्रवाहण ने फिर बूझा, कि-जिसक्रम से पाँचवी आहुतिमें जलका पुरुष नाम होजाता है, उस क्रमको तू जानता है? श्वेतकेतुने कहा, कि- हे भगवन् ! मैं नहीं जानता ॥ ३ ॥

अथानु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात्कथꣳसोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति स हाऽऽयस्तः पितुरर्द्धमेयाय तꣳहोवाचाननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनु त्वाऽशिषमिति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) ऐसा होते हुए ( किम् ) क्यों ( अनुशिष्टः ) शिक्षा पाया हुआ हूं ऐसा ( अवोचथाः ) कहता था ( हि ) क्यों कि ( यः ) जो ( इमानि ) इन वातों को ( न ) नहीं ( विद्यात् ) जाने ( सः ) वह ( अनुशिष्टः ) शिक्षा पाया हुआ हूं ( इति ) ऐसा ( कथम् ) कैसे ( ब्रुवीत ) कहै ( सः ) वह ( ह ) स्पष्टरूप से ( आयस्तः ) आयासको प्राप्त हुआ ( पितुः ) पिताके ( अर्धम् ) स्थानको ( एयाय ), चलाआया ( तम् ) उन पिताको ( ह ) स्पष्टरूपसे ( उवाच ) बोला ( भगवान् ) आपने ( किल ) अवश्य ( अननुशिष्य, वाव ) उपदेश विना दिये ही ( मा, अब्रवीत् ) मुझसे कहदिया था ( त्वा ) तुझको ( अनुशिषम् ) उपदेश देदिया ( इति ) इस प्रकार ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-राजा प्रवाहणने कहा, कि-जब तू इतना भी नहीं जानता तो तूने कैसे कहा था, कि-मैंने अपने पितासे शिक्षा पायी है ? जो इन वातोंको नहीं जानता वह कैसे कहसकता है, कि मैंने कुछ शिक्षा पायी है ?

राजाके ऐसा कहनेपर श्वेतकेतु को बड़ा खेद हुआ और वह उसी समय लौटकर अपने पिताके स्थान पर आया और उनसे कहने लगा, कि-हे भगवन् ! आपने समावर्त्तन के समय यथोचित्त उपदेश विना दिये ही मुझसे कैसे कह दिया, कि-मैंने तुझे शिक्षा देदी ? ॥ ४ ॥

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षी तेषां नैकञ्च-नाशकं विवक्तुमिति स होवाच यथा मां त्वं तदै-तानवदो यथाऽहमेषां नैकञ्चन वेद यद्यहमि-मानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यामिति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( राजन्यबन्धुः ) क्षत्रियों का भाई ( माम् ) मेरे प्रति ( पञ्च ) पाँच ( प्रश्नान् ) प्रश्नों को ( अप्राक्षीत् ) पूछता हुआ ( तेषाम् ) उनमें से ( एकञ्चन ) एकको भी ( विवक्तुम् ) विवेचन करने को ( न ) नहीं ( अशकम् ) समर्थ हुआ ( इति ) इस प्रकार ( सः ) वह ( ह ) स्पष्टरूप से (उवाच) बोला ( यथा ) जिस प्रकार ( तद ) आते ही ( त्वम् ) तू (माम् ) मेरे प्रति ( एतान् ) इन प्रश्नों को (अवदः) कहता हुआ ( अहम् ) मैं ( एषाम् ) इनमें से ( एकञ्चन ) एकको भी (न) नहीं नहीं ( वेद ) जानता हू ( यदि ) जो ( अहम् )मैं (इमान)इनको ( अवेदिष्यम् ) जानता ( ते ) तेरे अर्थ ( कथम् ) कैसे ( न ) (अवक्ष्यम्) कहता ( इति ) इस प्रकार ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—देखो, जो क्षत्रियों का भाई है अर्थात् क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होकरभी क्षत्रियोंके से काम नहीं करता है उस प्रवाहणने मुझसे पाँच प्रश्न किये थे, मैं उनमें से एकके ऊपर भी विचार करके उत्तर न देसका, यह सुनकर श्वेतकेतु के पिताने कहा, कि-हे पुत्र ! तू ने आतेही मुझसे जो प्रश्न किये उनमें से एकको भी तेरी

समान मैं भी नहीं जानता, यदि मैं जानता होता तो समावर्त्तन के समय तुझे क्यों नहीं बताता ? अवश्य ही बताता ॥ ५ ॥

स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हा-ञ्चकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय तꣳहो-वाचमानुषस्य भगवन् गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति सहोवाच तवैव मानुषं वित्तं यामेव राजन् कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( ह ) प्रसिद्ध ( गौतमः ) गौतम गोत्रवाला ( राज्ञः ) राजाके (अर्धम्) स्थानको ( एयाय ) पहुंचता हुआ ( तस्मै ) तिस ( प्राप्ताय ) आये हुएके अर्थ ( ह ) प्रसिद्धरूपसे ( अर्हाञ्चकार ) पूजा करताहुआ ( सः ) वह ( ह ) प्रसिद्ध ( प्रातः ) प्रातःकालके समय ( सभागे ) सभामें पहुंचेहुए उसके समीप ( उदेयाय ) गया ( भगवन् गौतम ) हे भगवन् गौतम ! ( मानुषस्य ) मनुष्य संबन्धी ( वित्तस्य ) धनके (वरम्) वरको (वृणीथाः ) मांग ( इति ) ऐसा ( तम् ) उसके प्रति ( ह ) स्पष्टरूपसे ( उवाच ) बोला ( सः ) वह ( ह ) स्पष्टरूपसे ( उवाच ) बोला ( राजन् ) हे राजन् ( मानुषम् ) मनुष्यसम्बन्धी ( वित्तम् ) धन ( तव, एव ) तेरा ही [ अस्तु ] हो ( याम्, एव ) जिस ( वाचम् ) वाणीको ( कुमारस्य ) कुमारके ( अन्ते ) समीप में ( अभाषथाः ) कहा था ( ताम् एव ) उसको ही ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रूहि ) कहो ( इति ) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( ह ) स्पष्टरूपसे ( कृच्छ्री ) दुःखी ( बभूव ) हुआ ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर वह प्रसिद्ध गौतम गोत्रवाला

उद्दालक राजाके स्थानको गया, उसको अपने घर आया देखकर राजाने उसकी पूजाकी, दूसरोंसे पूजाको पानेवाला वह प्रसिद्ध उद्दालक दूसरे दिन प्रातःकालके समय सभामें बैठेहुए उस राजाके पास गया, तब राजाने कहा कि-हे भगवन्! गोतमगोत्र वाले उद्दालक आपको मनुष्योंके कार्यसाधक ग्राम आदि जिस किसी पदार्थकी भी इच्छा हो वही मुझसे मांग लीजिये। यह सुनकर उद्दालकने कहा, कि—हे राजन्! मनुष्योंके उपयोगी अपनी सम्पदाको आप अपने पास ही रहने दीजिये, आपने मेरे पुत्रसे जो पांच प्रश्न किये थे, वही आप मुझसे कहिये, जब उद्दालकने ऐसा कहा तब तो राजा बड़े ऊहापोहमें पड़गया, कि-यह विद्या ब्राह्मणों को कैसे सिखाऊँ यह विचार कर यह बड़ा दुःखी होने लगा ॥ ६ ॥

तथँह चिरं वसेत्याज्ञापयाञ्चकार तथँहोवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—( चिरम् ) चिरकाल तक ( वस ) वास करो ( इति ) ऐसा ( तम् ) उसको ( ह ) स्पष्ट ( आज्ञापयाञ्चकार ) आज्ञा देता हुआ ( गौतम ) हे गौतम ( त्वम् ) तू ( माम् ) मुझको ( यथा ) जैसा ( आवदः ) कहता हुआ ( यथा ) जैसे ( इयम् ) यह ( विद्या ) विद्या ( त्वत्तः ) तुझसे ( प्राक् ) पहले ( ब्राह्मणान् ) ब्राह्मणोंको ( न ) नही ( गच्छति) गई ( तस्मात् ) तिस कारण ( पुरा ) पहले ( सर्वेषु ) सब

( लोकेषु ) लोकोंमें ( उ ) निश्चय ( क्षत्रस्य, एव ) क्षत्रियका ही ( प्रशासनम् ) उपदेष्टापन ( अभूत् ) था ( इति ) ऐसा ( तम् ह ) उसको ( उवाच ) कहता हुआ [ अथ ] इसके अनन्तर ( तस्मै, ह ) तिसके अर्थ ( उवाच ) कहता हुआ ॥ ७ ॥

( भावार्थ )—परन्तु ब्राह्मणोंसे निषेध करना उचित नहीं है, यह विचार कर राजाने उससे कहा, कि- तुम एक वर्ष पर्यन्त मेरे यहां ठहरो, हे गौतम ! तुमने जो मुझसे विद्याके लिये कहा है, इस विषयमें कुछ कहना है उसको सुनो, देखो-तुमसे पहिले यह विद्या ब्राह्मणोंके पास नहीं गई, इसकारण पहिले सब लोगों में निश्चय इस विद्याके उपदेशका काम क्षत्रिय ही करते थे, यह बात राजा प्रवाहणने उद्दालकसे कही तब राजा ने उसको विद्याका उपदेश दिया ॥ ७ ॥

पञ्चमाध्यायस्यतृतीयः खण्डः समाप्तः

पंचम प्रश्नस्य उत्तर-मारभ्यते॥

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( गौतम ) हे गौतम ( असौ, वाव ) यह प्रसिद्ध ( लोकः ) स्वर्गलोक ( अग्निः ) अग्नि है (आदित्यः, एव ) आदित्य ही ( तस्य ) उसका (समित् ) काष्ठ है (रश्मयः) किरणें ( धूमः ) धूम है ( अहः ) दिन ( अर्चिः ) लपट है ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा ( अङ्गाराः ) अङ्गार हैं ( नक्षत्राणि ) नक्षत्र ( विस्फुलिङ्गाः ) चिनगारियें हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे गौतम ! यह प्रसिद्ध द्युलोक वा स्वर्ग लोक एक अग्नि है, आदित्य इस अग्निको दीप्त करने वाला काष्ठ है, किरणें इसका चारों ओर फैलनेवाला

धुआँ है, दिन ही इसकी उदय होकर अस्त होजानेवाली लपट है, चन्द्रमा इसका दहकताहुआ अङ्गार है और नक्षत्र इसकी चिनगारियें हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्मिन् ) तिस ( एतस्मिन् ) इस ( अग्नौ ) अग्निमें (देवाः) देवता ( श्रद्धाम् ) जलको (जुह्वति) होमते हैं ( तस्याः ) उस ( आहुतेः ) आहुतिसे ( सोमः, राजा ) सोम राजा ( संभवति ) उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—इस अग्निमें देवता कहिये यजमानकी इन्द्रियें और उनके देवता श्रद्धा कहिये अग्नि होत्रकी आहुतियोंके परिणामकी अवस्था रूप सूक्ष्म जलको होम करते हैं, उस आहुतिसे स्वर्गलोकरूप अग्निमें होमे हुए जलोंके परिणामरूपसे राजा सोम ( चन्द्रमा ) होता है अर्थात् यजमान सूक्ष्म जलके साथ सम्बन्धवाला होकर स्वर्गलोकमें प्रवेश करता हुआ चन्द्रमाकी समान जलसे रचेहुए शरीरवाला होता है, यही चन्द्रमाका उत्पन्न होना है ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थःखण्डः समाप्तः

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( गौतम ) हे गौतम ! ( पर्जन्यः, वाव ) प्रसिद्ध पर्जन्य ही ( अग्निः ) अग्नि है ( वायुः, एव ) वायु ही ( तस्य ) उसका ( समित् ) काष्ठ है ( अभ्रम् ) मेघ ( धूमः) धूम है ( विद्युत् ) विजली (अर्चिः) लपट है ( अशनिः )

वज्र ( अङ्गाराः ) अङ्गारे हैं ( ह्रादनयः ) गर्जनायें (विस्फलिङ्गाः) कण हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे गौतम ! प्रसिद्ध पर्जन्य अर्थात् वर्षा की सामग्री का अभिमानी देवता अग्नि है, वायु उसकी समिधा हैं, बादल धूम है, बिजली ज्वाला है, वज्र अङ्गार है और गर्जनायें अग्निकण हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन् देवाः सोमँ राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षँ सम्भवति ॥ २ ॥

( अन्वय और पदार्थ )—( तस्मिन् ) तिस ( एतस्मिन् ) इस ( अग्नौ ) अग्नि में ( देवाः ) देवता ( सोमं राजानम् ) सोम राजा को ( जुह्वति ) होमते हैं ( तस्याः ) उस ( आहुतेः ) आहुति से ( वर्षम् ) वर्षा ( संभवति ) होती है ॥

( भावार्थ )-ऐसे इस अग्नि में देवता सोम राजा कहिये चन्द्ररूप से परिणाम को प्राप्त हुए सूक्ष्मजल को होमते हैं, उस आहुति से वर्षा होती है ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः सम्वत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( गौतम ) हे गौतम ( पृथिवी, वाव ) पृथिवी ही ( अग्निः ) अग्नि है ( सम्वतसर, एव ) सम्वत्सर ही ( तस्याः ) उसकी ( समित् ) काठ है ( आकाशः ) आकाश ( धूमः ) धूम है ( रात्रिः ) रात्रि ( अर्चिः ) लपट है (दिशाः ) दिशायें ( अङ्गाराः ) अङ्गारे हैं ( अवान्तरदिशः ) अवान्तर-दिशोंके कोने ( विस्फुलिङ्गाः ) अग्निकण हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )- हे गौतम ! पृथिवी ही प्रसिद्ध अग्नि

है, सम्वत्सर ही उसकी समिधा है। आकाश धूम है, रात्रि लपट है, दिशायें अंगारे हैं और दिशाओं के ऐशान्य आदि कोने अग्निकण है ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नँ ॐ संभवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्मिन् ) तिस ( एतस्मिन् ) इस ( अग्नौ ) अग्निमें ( देवाः ) देवता ( वर्षम् ) वर्षाको ( जुह्वति ) होमते हैं ( तस्याः ) उस ( आहुतेः ) आहुति से ( अन्नम् ) अन्न ( सम्भवति ) होता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उस पृथिवी रूप अग्नि में देवता वर्षाकी आहुति छोड़ते हैं, उस आहुतिसे अन्न उत्पन्न होताहै

पंचमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित् प्राणो धूमो जिह्वार्चिश्चक्षुरंगाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः

अन्वय और पदार्थ-( गौतम ) हे गौतम ( पुरुषः, वाव ) पुरुष ही ( अग्निः ) अग्नि है (वाक्, एव ) वाणी ही ( तस्य ) उसका ( समित् ) काष्ठ है ( प्राणः ) प्राण ( धूमः ) धूम है ( जिह्वा ) जीभ ( अर्चिः ) ज्वाला है (चक्षुः) चक्षु (अङ्गाराः) अङ्गारे हैं ( श्रोत्रम् ) कान ( विस्फुलिङ्गाः ) अग्निकण हैं ॥१॥

( भावार्थ )-हे गौतम ! प्रसिद्ध पुरुष ही अग्नि है, वाणी ही उसकी समिधा है, प्राण धूम है, जीभ ज्वाला है, नेत्र अङ्गारे हैं और कान अग्निकण हैं ॥ १

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति, तस्या आहुते रेतः सम्भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ- ( तस्मिन् ) इस ( अग्नौ ) अग्नि ( देवाः) देवता ( अन्नम् ) अन्नको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः )

तिसमें ( आहुतेः ) आहुतिसे ( रेतः ) वीर्य (संभवति)होताहै २

(भावार्थ -ऐसे इस अग्निमें देवता अन्नकी आहुति छोड़ते हैं इस आहुतिसे वीर्य उत्पन्न होता है ॥२॥

पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( गौतम ) हे गौतम ( योषा, वाव ) स्त्रीजाति ही ( अग्निः ) अग्नि है ( तस्याः ) उसका ( उपस्थ, एव ) उपस्थ ही ( समित् ) काष्ठ है ( यत् ) जो ( उपमन्त्रयते ) रतिके उपयोगी भाषण करता है ( सः ) वह ( धूमः ) धूम है ( योनिः ) योनि ( अर्चिः ) ज्वाला है ( यत् ) जो ( अन्तः ) भीतर ( करोति ) करता है ( ते ) वे ( अङ्गाराः ) अङ्गारे हैं ( अभिनन्दाः ) आनन्द ( विस्फुलिङ्गाः ) अग्नि कण हैं ॥१॥

( भावार्थ )-हे गौतम ! स्त्री अग्नि,उपस्थ समिधा,रतिसम्भाषण धूम, योनि शिखा, सङ्गम अङ्गार और आनन्द अग्निकण हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्मिन् ) तिस ( एतस्मिन् ) इस ( अग्नौ ) अग्नि में ( देवाः ) देवता ( रेतः ) वीर्य को ( जुह्वति ) होमते हैं ( तस्याः ) उस ( आहुतेः ) आहुति से ( गर्भः ) गर्भ ( संभवति ) होता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उस अग्निमें देवता वीर्य का होम करते हैं, और उस आहुति के छोड़ने से गर्भ होता है ॥२ ॥

पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्वावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( इति ) इसप्रकार ( पञ्चम्याम् ) पांचवीं ( आहुतौ, तु ) आहुतिमें तो ( आपः ) जल ( पुरुषवचसः ) पुरुष नामवाले ( भवन्ति ) होजाते हैं ( इति ) इस प्रकार ( सः ) वह ( गर्भः ) गर्भ ( उल्वावृतः ) झिल्लीमें लिपटा हुआ ( वा नव ) या नौ ( वा दश ) या दश ( मासान् यावत् ) महीने पर्यन्त ( अन्तः ) भीतर ( शयित्वा ) सोकर ( अथ ) अनन्तर ( जायते ) उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-अब आवागमनवाले जीवकी अग्निमें से ही उत्पत्ति होती है और अन्तको वह अग्निमें ही लीन होजाता है, इस बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि-इसप्रकार पाँचवी आहुतिमें जलका पुरुष नाम हो जाता है । इसप्रकार पाँचवें प्रश्नका उत्तर कहकर अब पहले प्रश्नका उत्तर कहते हैं, कि-वह वह गर्भ झिल्लीसे लिपटाहुआ नौ या दश मासतक माताके पेटके भीतर शयन करता रहता है और तहां सब अवयव पुष्ट होजाने पर जन्म लेता है ॥ १ ॥

स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः संभूतो भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( जातः ) उत्पन्न हुआ ( यावत्-आयुषम् ) आयुके परिमाण पर्यन्त ( जीवति ) जीता है ( प्रेतम् ) मरणको प्राप्त हुए ( तम् ) उसको ( दिष्टम् ) कर्म

भोगके अनुसार ( इतः ) यहांसे ( अग्नये, एव ) अग्निके लिये ही ( हरन्ति ) लेजाते हैं ( यतः, एव ) जिस अग्निमें ही ( इतः ) आया ( यतः ) जिस अग्निसे ( संभूतः ) उत्पन्न ( भवति ) होता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वह जन्म लेकर कर्म भोगके अनुकूल जितना आयु प्राप्त हुआ होता है, उतने काल पर्यन्त जीवित रहता है और उस जीवन कालमें वह यदि वैदिक कर्म वा उपासनाका अधिकारी हुआ होता है तो मरने के अनन्तर उस मृत जीवको कर्मसे निश्चय कियेहुए पर-लोकमें भेजनेके लिये अपने निवासस्थानसे ऋत्विज वा पुत्र अग्निमें और्ध्व दैहिक कर्म करनेके लिये ही लेजाते है। जल आदि आहुतियोंके क्रमसे अग्निमेंसे ही आया है और जिन पांच अग्नियोंमेंसे उत्पन्न हुआ है उस ही अपनी कारणरूप अग्निको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

तद्य इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्ष-मापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्ङेति मासांस्तान् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) उस में ( ये ) जो ( इत्थम् ) इस प्रकार ( विदुः ) जानते हैं ( च ) और ( ये ) जो ( इमे ) ये ( अरण्ये ) वनमें ( श्रद्धा ) श्रद्धा ( तपः ) तप ( इति ) ऐसा ( उपासते ) उपासना करते हैं ( ते ) वे ( अर्चिषम् ) अर्चि को ( अभिसंभवन्ति ) प्राप्त होते हैं ( अर्चिषः ) अर्चि से ( अहः ) दिनको ( अन्हः ) दिनसे ( आपूर्यमाणपक्षम् ) शुक्लपक्ष को ( आपूर्यमाणपक्षात् ) शुक्लपक्ष से ( यान् ) जिन ( षट् ) छः ( मासान् ) महीनों को ( सूर्यः ) सूर्य ( उदक् ) उत्तर दिशा को ( एति ) प्राप्त होते है ( तान् ) उनको [ एति ] प्राप्त होता है

( भावार्थ )—उसमें जो गृहस्थ इसप्रकार पञ्चाग्निकी उपासनाको जानते हैं और जो थे नैष्ठिक ब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा त्रिदण्डी संन्यासी वनमें रहकर श्रद्धापूर्वक तपस्या करते हैं और जो सत्यभाषण करते हैं तथा हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं वे सूर्यकी किरणके अभिमानी अर्चिदेवताको प्राप्त होते हैं, अर्चिसे दिनको दिनसे शुक्लपक्षको और शुक्लपक्षसे, जिन छः महीनोमें सूर्य उत्तरकी ओरको जाता है उन छः महीनोंको प्राप्त होते हं।

मासेभ्यः सम्वत्सरँ सम्वत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति२

( अन्वय और पदार्थ )—( मासेभ्यः ) मासों से ( सम्वत्सरम् ) सम्वत्सर को ( सम्वत्सरात् ) सम्वत्सर से ( आदित्यम् ) आदित्यको ( आदित्यात् ) आदित्य से ( चन्द्रमसम् ) चन्द्रमा को ( चन्द्रमसः ) चन्द्रमा से ( विद्युतम् ) बिजली को [ एति ] प्राप्त होता है ( तत् ) तहाँ ( अमानवः ) दिव्य (पुरुषः) पुरुष [ आगच्छति ] आता है ( सः ) वह ( एनान् ) इन उपासकों को ( ब्रह्म, गमयति) ब्रह्मके समीप लेजाता है ( इति ) इस प्रकार ( एषः ) यह ( देवयानः ) देवयान नामका (पन्थाः ) मार्ग [ अस्ति ] है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-उन मासों से सम्वत्सर को, सम्वत्सर से आदित्यको, आदित्यसे चन्द्रमा को और चन्द्रमा से बिजलीको प्राप्त होता है, तहाँ अमानवदिव्य पुरुष आता है और वह इन उपासकों को ब्रह्म के समीप लेजाता है, इस प्रकार यह देवयान मार्ग है ॥ २ ॥

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्त्ते दत्तमित्युपासते ते

धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिꣳ रात्रेरपरपक्षमपर-
पक्षाद्यान् षड् दक्षिणैति मासाꣳस्तान्नैते सम्ब-
त्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥ मासेभ्यः पितृलोकं
पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो
राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--- ( अथ ) और ( ये ) जो ( इमे ) ये ( ग्रामे ) ग्राम मे ( इष्टापूर्त्ते ) इष्ट और पूर्त्त ( दत्तम् ) दान ( इति ) इनको ( उपासते ) उपासना करते हैं (ते) वे( धूमम् ) धूमको ( अभिसम्भवन्ति ) प्राप्त होते हैं ( धूमात् ) धूम से ( रात्रिम् ) रात्रि को ( रात्रेः ) रात्रिसे ( अपरपक्षम् ) कृष्ण-पक्ष को ( अपरपक्षात् ) कृष्णपक्ष से ( यान् ) जिन ( षट् ) छः महीने ( सूर्यः ) सूर्य ( दक्षिणा ) दक्षिण दिशा को ( एति ) प्राप्त होता है ( तान् ) उन ( मासान् ) महीनों को [ एति ] प्राप्त होता है ( एते ) ये ( सम्वत्सरम् ) सम्वत्सर को ( न ) नहीं ( अभिप्राप्नुवन्ति ) प्राप्त होने हैं ( मासेभ्यः ) मासों से ( पितृलोकम् ) पितृलोक को ( पितृलोकात् ) पितृलोकसे ( आकाशम् ) आकाश को ( आकाशात् ) आकाश से ( चन्द्र-मसम् ) चन्द्रमा को (एति) प्राप्त होता है (एषः) यह ( सोमः ) सोम ( राजा ) राजा है ( तत् ) वह ( देवानाम् ) देवताओंका ( अन्नम् ) अन्न है (तम्) उसको ( देवाः ) देवता ( भक्षयन्ति) खाते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-अब जो यह गृहस्थ ग्राममें रहकर इष्ट कहिये अग्निहोत्र आदि वैदिककर्म पूर्त्त कहिये कूप, बावड़ी, तालाव और वाग आदि लगाना तथा दत्त कहिये वेदीसे बाहर दान देना इत्यादिका अनुष्ठान करते हैं, वे धूमके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं,

धूमसे रात्रिके अभिमानी देवताको रात्रिसे कृष्णपक्षके अभिमानी देवताको और कृष्णपक्षसे जिन छः महीनों में सूर्य दक्षिणकी ओर जाता है, उन महीनोंको प्राप्त होते हैं, ये कर्म करनेवाले संवत्सरको नहीं प्राप्त होते हैं किन्तु वे दक्षिणायन रूप छः महीनोंसे पितृलोकको पितृलोक से आकाशको और आकाशसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं, अन्तरिक्षमें जो सोम नामक ब्राह्मणोंका राजा दीखता है वही चन्द्रमा है, वह देवताओंका अन्न कहिये भोग का साधन है, उसका देवता भक्षण करते हैं अर्थात् उस को अपनी सेवा कराना रूप उपभोगमें लाते हैं ॥ ४॥

तस्मिन् यावत्संपातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्त्तन्ते यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥५॥

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद् भूय एव भवति।६।

अन्वय और पदार्थ-( तस्मिन् ) उसमें ( यावत्सम्पातम् ) पतनकाल पर्यन्त ( उषित्वा ) रहकर ( अथ ) अनन्तर ( यथेतम् ) जैसे आये थे तैसे तैसे ( एतम्, एव ) इस ही (अध्वानम्) मार्गका ( पुनः ) फिर ( निवर्त्तन्ते ) लौटजाते हैं ( आकाशम् ) आकाशको ( आकाशात् ) आकाशसे ( वायुम् ) वायुको [यान्ति] प्राप्त होते हैं (वायुः, भूत्वा) वायु होकर (धूमः, भवति) धूम होता है ( धूमः, भूत्वा ) धूम होकर ( अभ्रम्, भवति ) बादल होता है ( अभ्रम् ) बादल ( भूत्वा ) होकर ( मेघः, भवति ) मेघ

होता है ( मेघः, भूत्वा ) मेघ होकर ( प्रवर्षति ) बरसता है (ते) वे ( इह ) यहां ( व्रीहियवाः ) धान और जौ ( ओषधिवनस्पतयः) औषध वनस्पति ( तिलमाषाः ) तिल और उड़द ( जायन्ते ) होते हैं ( अतः ) यहांसे ( वै खलु ) निश्चय ( दुर्निष्प्रपतरम् ) निकलना बड़ा कठिन है ( हि ) क्योंकि ( यः, यः ) जो जो ( अन्नम् ) अन्नको ( अत्ति ) खाता है ( यः ) जो ( रेतः ) वीर्यको ( सिञ्चति ) सींचता है (तद्भूयः, एव ) उसकी अधिकतावाला ही ( भवति ) होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-उस चन्द्रमण्डलमें तहाँ फल देनेवाले कर्मोंकी समाप्ति पर्यन्त निवास करके तदनन्तर जैसे आये थे उसीप्रकार वा दूसरी रीतिसे आगे कहे जाने वाले मार्गमेंको लौट आते हैं, चन्द्रलोकसे भौतिक आकाशको और आकाशसे वायुको प्राप्त होता है, वायु होकर धूम बनजाता है, धूम होकर बादल बनजाता है, बादलसे मेघ बनजाता है और मेघ होकर समुद्र आदि से भिन्न देशोंमें बरसता है, तब वह जीव इस पृथिवी में धान, जौ, औषध, वनस्पति, तिल और उड़द आदि रूपसे उत्पन्न होते हैं अर्थात् धान आदिके साथ संबन्ध होता है, यहाँसे निकलना निःसन्देह बड़ा ही कठिन होता है। जो जो वीर्यसिंचन करनेवाला पुरुष प्रसिद्ध जीवसंयुक्त अन्नको खाता है और जो ऋतुकालमें स्त्री में वीर्यसिञ्चन करता है, उसके ही शरीरकीसी आकृति वाला उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते
रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिम्वा
क्षत्रिययोनिम्वा वैश्ययोनिं वाऽथ य इह

कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां यो-
निमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा
चण्डालयोनिंवा ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) उनमें ( ये ) जो ( इह ) यहां ( रमणीयचरणाः ) सत्कर्मवाले हैं ( ते ) वे ( अभ्याशः,ह ) शीघ्र ही ( यत् ) जो ( रमणीयाम्, योनिम् ) रमणीय योनि को ( आपद्येरन् ) प्राप्त होते हैं ( ब्राह्मणयोनिम्, वा ) या ब्राह्मणयोनिको ( क्षत्रिययोनिम्, वा ) या क्षत्रिययोनिको ( वैश्ययोनिम्, वा ) या वैश्ययोनि को [ आपद्यन्ते ] प्राप्त होते हैं ( अथ ) और ( इह ) यहां ( ये ) जो ( कपूयचरणाः ) अशुभकर्मवाले हैं ( ते ) वे ( अभ्याशः, ह ) शीघ्र ही ( कपूयाम् ) अशुभ ( योनिम् ) योनिको ( यत् ) जो ( आपद्येरन् ) प्राप्त होते हैं ( श्वयोनिम्, वा ) या कूकर की योनिको ( शूकरयोनिम्,वा ) या शूकर की योनिको ( चण्डालयोनिम्, वा ) या चाण्डाल की योनि को [ आपद्यन्ते ] प्राप्त होते हैं७

( भावार्थ )-उन धान्य आदिके साथ संबन्धको प्राप्त होनेवालोंमें जो शेषकर्मवाले जीव इस जगत्में शुभ आचरण करते हैं वे क्रूरता आदिसे रहित रमणीय योनि को पाते हैं, ब्राह्मणयोनिको या क्षत्रिययोनिको अथवा वैश्ययोनिको अपने कर्मके अनुसार पाते हैं यह फल उनको शीघ्र ही मिलजाता है और उनमें जो अशुभ कर्मवाले होते हैं वे धर्मसंबन्धसे रहित अशुभयोनिको पाते हैं, श्वानकी योनिको या शूकरकी योनिको अथवा चण्डालकी योनिको पाजाते है और यह फल उनको अपने कर्मके अनुसार शीघ्र प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्रा-

ण्यसकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳ स्थानं तेनासौ लोको न सम्पूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत, तदेष श्लोकः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और [ ये ] जो ( एतयोः ) इन दोनों ( पथोः ) मार्गोंमेंके ( कतरेणचन ) किसी एकके द्वारा भी ( न ) नहीं [ गच्छन्ति ] जाते हैं ( तानि ) वे ( इमानि ) ये ( असकृत् ) वार २ (आवर्त्तीनि) आवागमनवाले (क्षुद्राणि) तुच्छ ( भूतानि ) जन्तु ( भवन्ति ) होते हैं ( जायस्व ) उत्पन्न हो (म्रियस्व) मर (एतत् ) यह ( तृतीयम् ) तीसरा (स्थानम् ) स्थान है ( तेन ) तिससे ( असौ ) यह ( लोकः) लोक ( न ) नहीं ( सम्पूर्यते ) भरता है ( तस्मात् ) तिससे ( जुगुप्सेत ) दोषदृष्टि करै ( तत् ) उसमें ( एषः ) यह ( श्लोकः ) मंत्र है ८

( भावार्थ )-अब जो इन दोनों मार्गोंमेंके किसी एक मार्गसे भी नहीं जाते हैं वे वार २ जन्म मरण पानेवाले तुच्छ जन्तु होते हैं, 'जन्म ले और 'मृत्युको प्राप्त हो' इसप्रकार सर्वेश्वर उन जन्तुओंको प्रेरणा करता है, यह उन दोनों मार्गोंसे विलक्षण तीसरा मार्ग है, इन जीवों से यह चन्द्रलोक भरता नहीं है, संसारकी ऐसी कष्टमयी गतिको देखकर इससे बचनेका विचार करे, यह मंत्र पञ्चाग्नि विद्याकी स्तुतिमें है ॥ ८ ॥

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाऽऽचरꣳस्तैरिति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-( हिरण्यस्य ) सोने का (स्तेनः ) चोर ( सुराम् ) मद्य को (पिबन् ) पीनेवाला (च) और (गुरोः) गुरुकी ( तल्पम् ) शय्याको ( आवसन् ) भोगनेवाला ( च )

और (ब्रह्महा) ब्रह्महत्यारा ( एते ) ये (चत्वारः) चार (पतन्ति) पतित होते हैं ( तैः ) तिनके साथ ( आचरन् ) व्यवहार करता हुआ (पञ्चमः च) पांचवां भी ( इति) ऐसा ही होता है ॥ ९ ॥

( भावार्थ )- सोना चुराने वाला, मद्य पीनेवाला, गुरुकी स्त्री को भोगनेवाला और ब्राह्मण की हत्या करने वाला, ये चार पतित होजाते हैं और पांचवां इन चारों के साथ व्यवहार करनेवाला भी पतित हो जाता है॥९॥

अथ ह एतावानेवं पञ्चाग्नीन् वेद न सह तैरप्याचरन् पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ १०॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और (यः )जो (एतान् ) इन ( पञ्च,अग्नीन् ) पांच अग्नियों का ( एवम्, ह ) इस प्रकार ही ( वेद ) जानता ( तैः, सह ) उनके साथ ( आचरन्, अपि) व्यवहार रखता हुआ भी ( पाप्मनः ) पाप से ( न ) नहीं ( लिप्यते ) लिप्त होता है। ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा (वेद) जानता है ( यः ) जो ( एवम् ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( शुद्धः ) शुद्ध ( पूतः ) पवित्र ( पुण्यलोकः ) पवित्र लोक वाला ( भवति ) होता है ॥ १० ॥

( भावार्थ ) और जो इन पांच अग्नियों को इस प्रकार जानता है वह उन महापापियोंके साथ व्यवहार करता हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता है। जो पांच प्रश्नों से पूछे हुए विषय को इस प्रकार जानता है वह शुद्ध, पवित्र और प्राजापत्य आदि पवित्र लोकों वाला होता है ॥ १० ॥

पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषि-

रिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाꣳसां चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति

अन्वय और पदार्थ-( औपमन्यवः ) उपमन्यु का पुत्र ( प्राचीनशालः ) प्राचीनशाल ( पौलुषिः ) पुलुषका पुत्र ( सत्ययज्ञः ) सत्ययज्ञ ( भाल्लवेयः ) भल्लवि का पौत्र ( इन्द्रद्युम्न ) इन्द्रद्युम्न ( शार्कराक्ष्यः ) शर्कराक्षका पुत्र ( जनः ) जन ( आश्वतराश्विः ) अश्वतराश्वका पुत्र ( बुडिलः ) बुडिल ( ते ) वे ( एते, ह ) ये ही ( महाशालाः ) बड़े, गृहस्थ ( महाश्रोत्रियाः ) बडे श्रोत्रिय ( समेत्य ) इकट्ठे होकर ( नः ) हमारा ( आत्मा ) आत्मा ( कः ) कौन है ( ब्रह्म ) ब्रह्म ( किम् ) क्या है ( इति ) ऐसा ( मीमांसाञ्चक्रुः ) विचार करते हुए ॥ १ ॥

( भावार्थ )-उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लविका पौत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष का पुत्र जन और अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल इन महागृहस्थ और श्रवण अध्ययन तथा सदाचारवाले महाश्रोत्रियों ने इकट्ठे होकर विचार किया, कि—हमारा आत्मा कौन है ? ॥ १ ॥

ते ह सम्पादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳ हन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मुः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ते ) वे ( भगवन्तः ) पूज्य ( ह ) स्पष्ट ( सम्पादयाञ्चक्रुः ) सम्पादन करते हुए ( अयम् ) यह ( आरुणिः ) अरुण का पुत्र ( उद्दालकः, वै ) प्रसिद्ध उद्दालक ( सम्प्रति ) इस समय ( इमम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्मारूप ( वैश्वानरम् ) वैश्वानरको ( अध्येति ) जानता है ( हन्त )

इदानीं

अनुमति होय तो ( तम्, अभ्यागच्छाम ) उसके समीप जायँ इति ) ऐसा ( निश्चित्य ) निश्चय करके ( तम् ह, अभ्याजग्मुः ) उसके ही समीप गये ॥ २ ॥

भावार्थ -वे पूज्य ऋषि विचार करने लगे, परन्तु कुछ निश्चय न करसके तब उन्होंने एक दूसरे उपदेष्टा का निश्चय किया और परस्पर कहनेलगे, कि-यह अरुण का पुत्र उद्दालक इस समय आत्मस्वरूप वैश्वानरको सम्यक् प्रकारसे जानता है, यदि संमति होय तो हम उनके पास जायँ, इसप्रकार निश्चय करके वे उद्दालकके पास गये ॥ २ ॥

स ह सम्पादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः, ह ) वह ( सम्पादयाञ्चकार ) निश्चय करता हुआ ( इमे ) ये ( महाशालाः ) महागृहस्थ ( महाश्रोत्रियाः, ) बड़े वेदपाठी ( माम्, प्रक्ष्यन्ति ) मुझसे प्रश्न करेंगे ( तेभ्यः ) तिनको ( सर्वमिव ) पूर्णरूपसे न नहीं प्रतिपत्स्ये उपदेश देसकूँगा ( हन्त ) इससे ( अहम् ) मैं ( अन्यम् ) दूसरेको ( अभ्यनुशासानि ) बताद्ूँ ( इति ) इसप्रकार ॥ ३ ॥

भावार्थ -उद्दालक उनको देखते ही उनके आने काप्रयोजन जानकर विचारनेलगा कि—ये महागृहस्थ महाश्रोत्रिय मुझसे पूछेंगे और मैं इनको पूरा २ उत्तर न देसकूँगा, इसलिये मैं दूसरे को बताद्ूँ ॥ ३ ॥

तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳहन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मुः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तान् ) उनको ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( भगवन्तः ) हे भगवन् ( अयम् ) यह ( कैकेयः ) केकयका पुत्र ( वै ) प्रसिद्ध ( अश्वपतिः ) अश्वपति ( सम्प्रति ) इस समय ( इमम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्मरूप (वैश्वानरम् ) वैश्वानरको ( अध्येति ) स्मरण करता है ( हन्त ) अब ( तम्, अभ्यागच्छाम ) उनके पास चलें ( इति ) ऐसा विचार कर ( तम्, ह, अभ्याजग्मुः ) उनके ही पास गये ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-ऐसा विचार कर उद्दालक उनसे कहने लगा, कि-हे पूज्य मुनियों ! आप अवश्य ही मेरे पास कोई प्रश्न करनेको आये होंगे, परन्तु आजकल केकयका पुत्र प्रसिद्ध अश्वपति आत्मरूप वैश्वानरको भलीप्रकार जानता है, यदि संमति हो तो हम सब उसके पास चलें, ऐसा विचार करके वे सब इकट्ठे होकर उस अश्वपतिके पास गये ॥ ४ ॥

तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार स ह प्रातः सञ्जिहान उवाच, न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, ह) वह प्रसिद्ध राजा (प्राप्तेभ्यः) आये हुए ( तेभ्यः, ह ) उन प्रसिद्ध पुरुषों के अर्थ ( पृथक् ) अलग २ ( अर्हाणि ) पूजा ( कारयाञ्चकार ) करवाता हुआ (प्रातः ) प्रातःकाल के समय ( सञ्जिहान ) सन्देह में हुआ

( उवाच ) बोला ( मे ) मेरे ( जनपदे ) देश में ( स्तेनः ) चोर ( न ) नहीं है ( कदर्यः ) कृपण ( न ) नहीं है (मद्यपः) शराबी ( न ) नहीं है ( अनाहिताग्निः ) अग्निहोत्र न करने वाला (न) नहीं है ( अविद्वान् ) अपढ़ ( न ) नही है ( स्वैरी) व्यभिचारी पुरुष ( न ) नहीं है ( स्वैरिणी ) व्यभिचारिणी ( कुतः ) कहाँसे होगी ( भगवन्तः ) हे भगवन् ( वै ) निश्चय ( अहम् ) मैं ( यच्यमाणः ) यज्ञको अनुष्ठान करने में लगा हुआ ( अस्मि ) हूं ( एकैकस्मै ) एक एक ( ऋत्विजे ) ऋत्विज्के अर्थ (यावत् ) जितना ( धनम् ) धन ( दास्यामि ) दूँगा ( तावत् ) उतना ही ( भगवद्भ्यः ) आपको ( दास्यामि )दूँगा ( इति ) इस प्रकार ( भगवन्तः ) आप ( ) मेरे यहाँ ( वसन्तु ) ठहरें ॥ ५ ॥

(भावार्थ) राजा अश्वपतिने उन आये हुए अतिथियों की पुरोहित और दासों से अलग२ पूजा करवायी और वह राजा जब दूसरे दिन प्रातःकाल के समय सो कर उठा तब उनके पास जाकर कहा, कि-मुझसे कुछ धन लीजिये, उन्होंने राजाके धनको नहीं लिया तब राजाने समझा, कि—वह मुझे दुराचारी समझ कर मेरा धन नहीं लेते हैं और ऐसा विचार कर कहने लगा, कि-मेरे देशमें चोर नहीं है,जो दान न करता हो ऐसा कोई धनी नहीं है, ब्राह्मणोंमें कोई शराबी नहीं है, गौओंवाला होकर अग्निहोत्र न करने वाला कोई द्विज नहीं है, अपने २ अधिकार के अनुसार विद्या न पढ़ा हो ऐसा भी कोई नहीं है तथा कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है, फिर व्यभिचारिणी स्त्री तो होगी ही कहाँ से ? । कहीं ऐसा न हो, कि-ये थोड़ा होनेके कारण धन न लेते हों, ऐसा विचार कर कहने लगा, कि—हे भगवन् ! उसमें आजकल मैं यज्ञका अनुष्ठान करने में लग रहा हूँ, उस

में एक २ ऋत्विज को जितना २ धन दूँगा, उतना ही आपमें से भी हर एकको दूंगा, हे भगवन् ! ठहरिये और मेरे यज्ञको देखिये ॥ ५ ॥

येन। ते होचुर्यं हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳ ह वै वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरꣳसम्प्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ते ) वे ( ह ) स्पष्ट ( ऊचुः ) बोले ( येन ) जिस ( ह ) प्रसिद्ध ( अर्थेन ) प्रयोजन से ( पुरुषः ) पुरुष ( चरेत् ) जाय ( इमम् ह ) उसकोही ( वै ) निश्चय ( वदेत् ) कहै ( इमम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्मस्वरूप ( वैश्वानरम्, एवं ) वैश्वानर को ही ( सम्प्रति ) इस समय ( अध्येषि ) सम्यक् प्रकारसे जानते हो ( तम्, एव ) उसको ही ( नः ) हमारे अर्थ ( ब्रूहि ) कहिये ( इति ) यह प्रार्थना है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-उन्होंने कहा, कि-हे राजन् ! पुरुष जिस प्रयोजनके लिये किसीके समीप जाय उस प्रयोजनको ही कहै, यह शिष्ट पुरुषोंका नियम है, हमारी इच्छा वैश्वानरका ज्ञान प्राप्त करनेकी है और आप उस वैश्वानरको इस समय भलेप्रकार जानते हैं, इसलिये आप हमैं उस वैश्वानरका ही स्वरूप सुनाइये ॥ ६ ॥

तान् होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्ताऽस्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान् हानुपनीयै वैतदुवाच ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तान् ) उनको ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( वः ) तुम्हारे अर्थ ( प्रातः ) प्रातःकाल ( प्रतिवक्तास्मि ) प्रत्युत्तर दूँगा ( इति ) यह सुनकर ( ते ) वे ( ह )

प्रसिद्ध पुरुष ( पूर्वाह्णे ) दुपहरसे पहले ( समित्पाणयः ) हाथ में समिधा लियेहुए ( प्रतिचक्रमिरे ) तहां गये ( तान् ) उनके प्रति ( अनुपनीय-एव ) चरणोंमें प्रणाम न कराकर ही ( एतत् ) यह ( उवाच ) कहा ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-मैं तुम्हे कल प्रातःकालके समय इसका उत्तर दूँगा, ऐसा राजाके कहने पर वे अपने अभिमान को त्यागकर हाथमें समिधा लियेहुए दूसरे दिन दो पहर से पहले विनयके साथ राजाके पास गये, राजाने उनसे अपने चरणोंमें प्रणाम नहीं करवाया और उनसे वैश्वानरका तत्त्व कहनेलगा ॥ ७ ॥

पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( औपमन्यव ) हे उपमन्युकुमार (त्वम्) तू ( कम् ) किस ( आत्मानम् ) आत्माको ( उपास्से ) उपासना करता है ( इति ) ऐसा राजाने पूछा ( भगवः, राजन् ) हे मान्य राजन् (दिवम्,एव) स्वर्गलोकको ही (इति) ऐसा कहा (उवाच) बोला ( वै ) निश्चय ( त्वम् ) तू ( यम् ) जिस (आत्मानम्) आत्माको ( उपास्से ) उपासना करता है ( एषः ) यह ( ह ) प्रसिद्ध ( सुतेजाः ) उत्तम तेजवाला ( वैश्वानरः ) वैश्वानररूप ( आत्मा ) आत्मा है ( तस्मात् ) तिससे ( तव ) तेरे ( कुले ) कुलमें ( सुतम् ) सुत ( प्रसुतम् ) प्रसुत ( आसुतम् ) आसुत ( दृश्यते ) दीखता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-राजाने कहा, कि-हे उपमन्युकुमार !

आप किस आत्माकी उपासना करते हैं ?, इसपर प्राचीनशालने कहा, कि-पूजनीय राजन् ! मैं स्वर्गलोकरूप वैश्वानरकी उपासना करता हूं। राजाने कहा, कि-आप जिस द्युलोक नामक वैश्वानरकी उपासना करते हैं यह तो उस प्रसिद्ध परमतेजस्वी आत्माका एक अंश है, इसकी उपासनाके कारणसे ही आपके कुलमें सुत कहिये एक दिनके यज्ञमें निकाला हुआ सोमलताका रस, प्रसुत कहिये दो से बारह दिन पर्यन्तके यज्ञमें निकालाहुआ सोमलताका रस और आसुत कहिये तेरहसे सौ वर्ष पर्यन्तके यज्ञमें निकाला हुआ सोमलताका रस देखनेमें आता है, तात्पर्य यह है कि-तुम्हारे कुलमें बड़े कर्मनिष्ठ पुरुष देखनेमें आते हैं अथवा इस उपासनाके कारणसे तुम्हारे कुलमें सुत कहिये पुत्र, प्रसुत कहिये पौत्र और आसुत कहिये प्रपौत्र देखनेमें आते हैं ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-( अन्नम् ) अन्नको ( अत्सि ) खाता है ( प्रियम् ) प्यारेको ( पश्यसि ) देखता है ( यः ) जो ( एवम् ) इसप्रकार ( एतम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्मरूप ( वैश्वानरम् ) वैश्वानरको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अन्नम् ) अन्नको ( अत्ति ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यति ) देखा है ( अस्य ) इसके ( कुले ) कुलमें ( ब्रह्मवर्चसम् ) ब्रह्मतेज ( भवति ) होता है ( तु ) परन्तु ( आत्मनः ) आत्माका ( एषः ) यह ( मूर्धा ) मस्तक है ( इति ) ऐसा ( ह )

स्पष्ट ( उवाच ) बोला ) ( यत् ) जो ( माम् ) मेरे प्रति ( न ) नहीं ( आगमिष्यः ) आता ( इति ) इसकारणसे ( ते ) तेरा ( मूर्धा ) मस्तक ( व्यपतिष्यत् ) गिर पड़ता ॥ २ ॥

( भावार्थ )-इसकारण ही तुम प्रदीप्त अग्निवाले होकर अन्नका भोजन करते हो और पुत्र पौत्र आदिरूप प्रियजनोंको देखते हो । जो इसप्रकार इस आत्मारूप वैश्वानरकी उपासना करता है वह प्रदीप्त अग्निवाला होकर अन्नका भोजन करता है और पुत्र पौत्रादि प्रियजनोंका मुख देखता है तथा इसके कुलमें कर्मनिष्ठीपन रूप ब्रह्मतेजकी प्राप्ति होती है, परन्तु यह स्वर्गलोक नामक वैश्वानर आत्मा आत्माका शिर अर्थात् एकदेश है, यदि आप मेरे पास न आकर समस्त बुद्धिसे इस एक देशकी उपासनामें ही तत्पर रहते तो इस उपासनासे तुम्हारा मस्तक गिर पड़ता ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य ! कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( पौलुषिम् ) पुलुष के पुत्र ( सत्ययज्ञम् ) सत्ययज्ञको ( प्राचीनयोग्य ) हे प्राचीनयोग्य! ( त्वम् ) तू ( कम् ) किस ( आत्मानम् ) आत्माको ( उपास्से ) उपासना करता है ( इति ) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला ( भगवः, राजन् ) हे मान्य राजन् ( आदित्यम्, एव ) आदित्यको ही ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला

( यम् ) जिस ( आत्मानम् ) आत्माको ( त्वम् ) तू ( उपास्से ) उपासना करता है ( एषः ) यह ( वै ) निश्चय ( विश्वरूपः ) विश्वरूप ( आत्मा ) आत्मा ( वैश्वानरः ) वैश्वानर है (तस्मात् ) तिससे ( तव ) तेरे ( कुले ) कुलमें (बहु) बहुतसा ( विश्वरूपम् ) सर्वरूप ( दृश्यते ) दीखता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर राजाने पुलुषके पुत्र सत्ययज्ञ से कहा, कि—हे प्राचीनयोग्य ! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो। उन्होंने उत्तर दिया, कि - हे माननीय राजन् ! मैं आदित्य नामक आत्माकी उपासना करता हूं। इस पर राजाने कहा, कि—आप जिस आत्माकी उपासना करते हैं वह प्रसिद्ध विश्वरूप आत्मा वैश्वानर है। इस सर्वरूप आदित्यकी उपासनासे ही तुम्हारे कुलमें बहुतसे लोक परलोकके साधनरूप पदार्थ दीख-रहे हैं ॥ १ ॥

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यासि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वेतदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ —( अश्वतरीरथः ) खच्चरियोंसे जुड़ा रथ ( दासीनिष्कः ) दासी तथा मालाओंका समूह ( प्रवृत्तः ) प्राप्त है ( अन्नम् ) अन्नको ( अत्सि ) खाते हो ( प्रियम् ) प्यारे परिवारको ( पश्यसि ) देखते हो ( यः ) जो ( एतम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्मारूप ( वैश्वानरम् ) वैश्वानरको (एवम्) इस प्रकार ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अन्नम् ) अन्नको

( अत्ति ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यति ) देखता है ( अस्य ) इसके ( कुले ) कुलमें ( ब्रह्मवर्चसम् ) ब्रह्मतेज ( भवति ) होता है ( तु ) परन्तु ( आत्मनः ) आत्माका ( एतत् ) यह ( चक्षुः ) चक्षु है ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( यत् ) जो ( माम् ) मेरे समीप ( न ) नहीं ( आगमिष्यः ) आता ( इति ) इससे ( अंधः ) अन्धा ( अभविष्यः ) होजाता ॥ २ ॥

( भावार्थ )-इसकारणसे ही आपके पास खच्चरियों से जुताहुआ रथ और दासियों सहित हार तुम्हें प्राप्त है तुम प्रदीप्ताग्नि होकर अन्न खाते हो और प्रिय परिवार को देख रहे हो। जो इस आत्मरूप वैश्वानरकी इस प्रकार उपासना करता है वह प्रदीप्ताग्नि होकर अन्नका भक्षण करता है, प्रिय परिवारका मुख देखा करता है, इसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है, परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानरका चक्षु है, पूर्ण वैश्वानर नहीं है। यदि तुम मेरे पास नहीं आये होते तो इस उपासनासे तुम अन्धे होजाते ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः

**अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्माऽऽत्मा वैश्वानरो यन्त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( भाल्लवेयम् ) भल्लविके पौत्र ( इन्द्रद्युम्नम् ) इन्द्रद्युम्नके प्रति ( वैयाघ्रपद्य ) हे वैयाघ्रपद्य ( त्वम् ) तू कम् किस ( आत्मानम् ) आत्मा

को ( उपास्से ) उपासना करता है ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( भगवः, राजन् ) हे मान्य राजन् ( वायुम्, एव ) वायुको ही ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( त्वम् ) तू ( यम् ) जिस ( आत्मानम् ) आत्माको ( उपास्से) उपासना करता है ( एषः ) यह ( वै ) निश्चय ( पृथग्वर्त्मा ) भिन्न २ मार्गोंवाला ( आत्मा ) आत्मा ( वैश्वानरः ) वैश्वानर है ( तस्मात् ) तिससे ( त्वाम् ) तुम्हारे प्रति ( पृथग्बलयः ) भिन्न २ बलि ( आयन्ति ) आते हैं (पृथग्रथश्रेण्यः ) भिन्न२ रथोंकी पंक्तियें ( अनुयन्ति ) पीछे २ चलती हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-फिर राजाने भल्लविके पौत्र इन्द्रद्युम्नसे कहा, कि-हे वैयाघ्रपद्य ! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो । उसने कहा, हे मान्य राजन् ! मैं वायुकी उपासना करता हूं । राजाने कहा तुम जिस आत्माकी उपासना करते हो वह अनेकों मार्गवाला आत्मा वैश्वानर है, इस उपासनाके करनेसे ही तुम्हे सब दिशाओंसे वस्त्र अन्न आदिकी भेटें मिलती हैं और अनेकों रथोंकी पंक्तियें तुम्हारे पीछे चलती हैं ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त उदक्रमिष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-( अन्नम् ) अन्नको ( अत्सि ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यसि ) देखता है ( यः ) जो ( एतम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्मरूप ( वैश्वानरम् ) वैश्वानरको ( एवम् ) इसप्रकार ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अन्नम् ) अन्नको ( अत्ति ) खाता है ( प्रियम् )

प्रियको ( पश्यति ) देखता है ( अस्य ) इसके ( कुले ) कुलमें ( ब्रह्मवर्चसम् ) ब्रह्मतेज ( भवति ) होता है ( तु ) परन्तु ( एषः ) वह ( आत्मनः ) आत्माका ( प्राणः ) प्राण है ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( यत् ) जो ( माम् ) मेरे पास ( न ) नहीं ( आगमिष्यः ) आता ( ते ) तेरा ) ( प्राणः ) प्राण ( उदक्रमिष्यत् ) निकलजाता ( इति ) ऐसे ॥ २ ॥

( भावार्थ )—इस कारण ही आप भोग भोगते हैं और पुत्र पौत्र आदि प्रियवर्गको देखते हैं। जो कोई इस आत्मरूप वैश्वानरकी इसप्रकार उपासना करता है वह भोगोंको भोगता है और प्रियवर्गको देखता है तथा इस के कुलमें ब्रह्मतेज होता है, परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानरका प्राण है, समस्त वैश्वानर नहीं है, उसने ऐसा कहा यदि तुम मेरे पास नहीं आये होते तो तुम्हारा प्राण निकलजाता ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः

**अथ होवाच जनꣳशार्कराक्ष्य कन्त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै बहुलआत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ॥१॥**

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( शार्कराक्ष्यम् ) शर्कराक्षके पुत्र ( जनम् ) जनको ( त्वम् ) तू ( कम् ) किस ( आत्मानम् ) आत्माको ( उपास्से ) उपासना करता है ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( भगवः, राजन् ) हे माननीय राजन् ( आकाशम्, एव ) आकाशको ही ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( यम् ) जिस ( आत्मानम् ) आत्माको ( त्वम् ) तू ( उपास्से ) उपासना करता है ( एषः )

यह ( वै ) प्रसिद्ध ( बहुलः ) भरपूर ( आत्मा ) आत्मा ( वैश्वानरः ) वैश्वानर है ( तस्मात् ) तिससे ( त्वम् ) तू ( प्रजया ) सन्तानके द्वारा (च) और ( धनेन, च) धनके द्वारा भी (बहुलः, असि ) भरपूर है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर उस राजाने शर्कराक्षके पुत्र जनसे कहा, कि-तुम किस आत्माकी उपासना करते हो उसने उत्तर दिया, कि हे मान्य राजन् ! मैं तो आकाश की ही उपासना करता हूँ। राजाने कहा, तुम जिस आत्माको उपासना करते हो यह बहुल नामका वैश्वानरका अंश है, अतएव इसकी उपासनासे तुम पुत्र पौत्र आदि प्रजा और सुवर्ण आदि धनसे भरपूर रहते हो १

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते सन्देहस्त्वेष आत्मन इति होवाच सन्देहस्ते व्यशीर्यद्यन्मां नागमिष्य इति॥२॥

अन्वय और पदार्थ-( अन्नम् ) अन्नको ( अत्सि ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यति ) देखता है ( यः ) जो ( एतम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्मरूप ( वैश्वानरम् ) वैश्वानरको ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अन्नम् ) अन्नको ( अत्ति ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यति ) देखता है ( अस्य ) इसके ( कुले ) कुलमें ( ब्रह्मवर्चसम् ) ब्रह्मतेज ( भवति ) होता है ( तु ) परन्तु ( एषः ) यह ( आत्मनः ) आत्माका ( सन्देहः ) उदर है ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( यत् ) जो ( माम् ) मेरे पास ( न ) नहीं ( आगमिष्यः ) आता ( ते ) तेरा ( सन्देहः ) उदर ( व्यशीर्यत् ) टूटजाता ॥२॥

( भावार्थ )-इसकारण ही तुम भोग्य पदार्थोंको भोगते हो और प्रियवर्गको देखते हो, जो इस आत्मरूप वैश्वानरकी इस शक्तिकी उपासना करता है वह सब प्रकारके भोगोंको भोगता है और पुत्र पौत्र आदि प्रिय परिवार को देखता है तथा उसके कुलमें ब्रह्मतेज रहता है। परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानरका उदर है, पूर्ण वैश्वानर नहीं है, यदि तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारा उदर टूटजाता ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वꣳ रयिमान् पुष्टिमानसि ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( आश्वतराश्विम् ) अश्वतराश्वके पुत्र ( बुडिलम् ) बुडिलके प्रति ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) कहा ( वैयाघ्रपद्य ) हे वैयाघ्रपद्य ( त्वम् ) तू ( कम् ) किस ( आत्मानम् ) आत्माको ( उपास्से ) उपासना करता है ( भगवः, राजन् ) हे मान्य राजन ( अपः, एव ) जल को ही ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( यम् ) जिस ( आत्मानम् ) आत्माको ( त्वम् ) तू ( उपास्से ) उपासना करता है ( एषः ) यह ( वै ) प्रसिद्ध ( रयिः ) धनरूप ( वैश्वानरः ) वैश्वानर ( आत्मा ) आत्मा है ( तस्मात् ) तिससे ( त्वम् ) तू ( रयिमान् ) धनवान् ( पुष्टिमान ) पुष्टिवाला ( असि ) है

( भावार्थ )-तदनन्तर उस प्रसिद्ध राजाने अश्वतराश्वके पुत्र बुडिलसे कहा, कि-हे वैयाघ्रपद्य ! तू किस आत्माकी उपासना करता है, उसने स्पष्ट उत्तर दिया,

कि-हे मान्य राजन् ! मैं तो जलकी ही उपासना करता हूँ, राजाने कहा, कि—तू जिस आत्माकी उपासना करता है वह तो धनरूप वैश्वानर आत्मा है, इसकारण ही तू धनवान् और पुष्टियुक्त है, क्योंकि—जलसे अन्न उत्पन्न होता है और उस अन्नसे धनकी प्राप्ति तथा शरीरकी पुष्टि होती है ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते वस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच वस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति॥ २५॥

अन्वय और पदार्थ—( अन्नम् ) अन्नको ( अत्सि ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यसि ) देखता है ( यः ) जो ( एतम् ) इस (आत्मानम्) आत्म रूप ( वैश्वानरम् ) वैश्वानर को (एवम्)इसप्रकार उपास्ते) उपासना करता है (अन्नम्) अन्न को ( अत्ति ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यति ) देखता है ( अस्य ) इसके (कुले ) कुल में ( ब्रह्मवर्चसम् ) ब्रह्मतेज ( भवति ) होता है ( तु ) परन्तु ( एषः ) यह ( आत्मनः ) आत्मा का ( वस्तिः ) मूत्राशय है ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( यत् ) जो ( माम् ) मेरे पास ( न ) नही ( आगमिष्यः ) आता ( ते ) तेरा ( वस्तिः ) मूत्राशय ) व्यभेत्स्यत् ) फटजाता ( इति ) ऐसा कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )-राजा ने कहा, कि-तुम इस कारण ही भोग भोगते हो और प्यारे परिवारको देखरहे हो। जो इस आत्मरूप वैश्वनरकी इस प्रकार उपासना करता है वह भोगों को भोगता है और पुत्र पौत्र आदि प्रिय परिवारको देखता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज रहता

है परन्तु यह आत्मरूप वैश्वनरका मूत्राशय है, समस्त वैश्वानर नहीं है, यदि तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारा मूत्राशय फटजाता ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः

**अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यन्त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अनन्तर ( आरुणिम् ) अरुण के पुत्र ( उद्दालकम् ) उद्दालक से ( गौतम ) हे गौतम ( त्वम् ) तू ( कम् ) किस ( आत्मानम् ) आत्माको ( उपास्से ) उपासना करता है ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) कहा ( भगवः, राजन् ) हे मान्य राजन् ! ( पृथिवीम्, एव ) पृथिवी की ही उपासना करता हूं ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( यम् ) जिस ( आत्मानम् ) आत्माको ( त्वम् ) तू ( उपास्से ) उपासना करता है ( एषः ) यह ( वै ) प्रसिद्ध ( प्रतिष्ठा ) चरणरूप ( वैश्वानरः ) वैश्वानर ( आत्मा ) आत्मा है ( तस्मात् ) तिससे ( त्वम् ) तू ( प्रजया ) सन्तान करके ( च ) और ( पशुभिः, च ) पशुओं करके भी ( प्रतिष्ठितः, असि ) प्रतिष्ठित है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-तदनन्तर राजाने अरुणके पुत्र उद्दालक से कहा, कि-हे गौतम ! तुम कौनसे आत्माकी उपासना करते हो । उसने कहा कि, हे मान्य राजन् ! मैं पृथिवी की उपासना करता हूं, इस पर राजाने कहा कि, तुम जिस आत्माकी उपासना करते हो वह चरणरूप वैश्वा-

नर आत्मा है, इस कारण ही तुम उसकी उपासना से पुत्र पौत्रादि प्रजा और गौ घोड़े आदि पशुओं के साथ संसारमें स्थित हो ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मां नाऽगमिष्य इति २

अन्वय और पदार्थ-( अन्नम् ) अन्नको ( अत्ति ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यति) देखता है ( यः ) जो (एतम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्माको ( एवम् ) इस प्रकार ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अन्नम् ) अन्नको ( अत्ति ) खाता है ( प्रियम् ) प्रियको ( पश्यति ) देखता है ( अस्य ) इस के ( कुले ) कुलमें ( ब्रह्मवर्चसम् ) ब्रह्मतेज ( भवति ) होता है ( तु ) परन्तु ( एतौ ) ये ( आत्मनः ) आत्माके ( पादौ ) चरण हैं ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( यम् ) जो ( माम् ) मेरे पास ( न ) नहीं (आगमिष्यः) आता तो (ते) तेरे (पादौ) चरण ( व्यम्लास्येताम् ) अति शिथिल होजाते॥२॥

( भावार्थ )-इसकारण आप भोग भोगते हैं और प्रिय परिवारको नेत्रोंके सामने देखते हैं। जो इस आत्मरूप वैश्वानरकी इसप्रकार उपासना करता है वह सब प्रकार के भोग भोगता है, प्यारे परिवारको नेत्रोंसे देखता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है। परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानर के चरण हैं, समस्त वैश्वानर नहीं है, यदि तुम मेरे पास नआते हो तुम्हारे चरण अत्यन्त शिथिल होजाते ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः समाप्तः

तान् होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाँसोऽन्नमत्थ । यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति १

अन्वय और पदार्थ-( तान् ) उनके प्रति ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ( खलु ) निश्चय ( एते ) ये ( वै ) प्रसिद्ध ( यूयम् ) तुम ( ( इमम् ) इस ( वैश्वानरम् ) वैश्वानर( आत्मा-नम्) आत्मा को ( पृथक् इव ) पृथक्की समान (विद्वांसः) जानते हुए (अन्नम्) अन्नको ( अत्थ ) खाते हो ( तु ) परन्तु ( यः) जो ( एतम् ) इस ( प्रादेशमात्रम्) प्रादेशमात्र ( अभिविमानम् ) अपने व्यापकभाव को जानने वाले ( आत्मानम् ) आत्मरूप (वैश्वानरम् ) वैश्वानरको ( एवम् ) इस प्रकार ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह ( सर्वेषु ) सब ( लोकेषु ) लोकों में ( सर्वेषु ) सब ( भूतेषु ) भूतों में ( सर्वेषु ) सब ( आत्मसु ) आत्माओं में ( अन्नम् ) अन्नको ( अत्ति ) खाता है॥ १ ॥

( भावार्थ )—राजा अश्वपति ने कहा, कि—जैसे बहुत से अन्धोंने हाथीके शरीर के भिन्न २ अङ्गों को स्पर्श कर जिसने जिस अङ्गको छुआ उसने उसी आकार वाला हाथीको जाना तिसी प्रकार तुम सब, जो वैश्वानर आत्मा विविधरूपधारी नहीं है उसको भिन्न२रूपवाला जानते हुए संसारके भोगोंको भोगते हो । परन्तु जो इस प्रादेशमात्र कहिये स्वर्ग लोकसे लेकर पृथिवी पर्यन्त के प्रदेशोंके परिमाण वाले तथा अभिविमान कहिये मैं प्रत्येक भूतमें व्यापक हूं ऐसा जाननेवाले इस आत्मरूप वैश्वानर कहिये सर्वात्मा ईश्वरको इस प्रकारसे जानता है अर्थात् स्वर्गलोकरूप मस्तकसे लेकर पृथिवीरूप चरणों

पर्यन्त पीछे कहे अवयवोंवाला है ऐसा जानकर उपासना करता है वह सब लोकोंमें, सकल भूतोंमें, शरीर, इन्द्रिय मन और बुद्धि आदि सब आत्माओं में स्थित होकर संसारके भोगोंको भोगता है ॥ १ ॥

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मा सन्देहो बहुलो वस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्य ) तिस ( ह ) प्रसिद्ध ( एतस्य ) इस ( आत्मनः ) आत्मरूप ( वैश्वानरस्य ) वैश्वानर का ( वै ) निश्चय ( मूर्धा, एव ) मस्तक ही ( सुतेजाः ) सुन्दर तेजस्वी स्वर्ग है ( चक्षुः ) चक्षु ( विश्वरूपः ) सूर्य है ( प्राणः ) प्राण ( पृथग्वर्त्मात्मा ) वायु है ( सन्देहः ) उदर ( बहुलः ) आकाश है ( बस्तिः ) मूत्राशय ( रयिः, एव ) जल ही है (पृथिवी एव ) पृथिवी ही ( पादौ ) चरण हैं ( उरः, एव ) वक्षःस्थल ही ( वेदिः ) वेदि है ( लोमानि) लोम (बर्हिः) दर्भ है (हृदयम् ) हृदय ( गार्हपत्यः ) गार्हपत्य है ( मनः ) मन (अन्वाहार्यपचनः) दक्षिणाग्नि है ( आस्यम् ) मुख ( आहवनीयः ) आहवनीय अग्नि है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-इस आत्मरूप वैश्वानरका मस्तक स्वर्ग है, चक्षु सूर्य है, प्राण वायु है, उदर आकाश है, मूत्राशय जल है और पृथिवी दोनों चरण हैं, ऐसा जानकर उपासना करे। अब वैश्वानरवेत्ताके भोजनमें अग्निहोत्रका भाव दिखाते हैं, कि-इस वैश्वानररूप भोक्ताका हृदय

ही वेदी है, रोम ही कुशा हैं, हृदय ही गार्हपत्य अग्नि हैं, मन दक्षिणाग्नि है और मुख आहवनीय अग्नि है॥२॥

पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः समाप्तः

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयᳬँ स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) तहां ( यत् ) जो ( भक्तम् ) राँधा हुआ अन्न ( प्रथमम् ) पहले ( आगच्छेत् ) आवे ( तत् ) वह ( होमीयम् ) होमके योग्य है ( सः ) वह ( याम् ) जिस ( प्रथमाम् ) पहली ( आहुतिम् ) आहुतिको ( जुहुयात् ) होमै ( ताम् ) उसको ( प्राणाय, स्वाहा इति ) प्राणाय स्वाहा ऐसा बोलकर ( जुहुयात् ) होमै ( प्राणः ) प्राण ( तृप्यति ) तृप्त होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-तहाँ जो रांधाहुआ अन्न भोजनके लिये प्रथम आये उसका होम अवश्य करै, वह भोजन करने वाला प्रथम आहुति मुखमें छोड़ते समय 'प्राणाय स्वाहा' इस मंत्रको बोलै, इस मंत्रके साथ मुखमें अन्नकी आहुति छोड़नेसे प्राण तृप्त होता है ॥ १ ॥

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किञ्च द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( प्राणे, तृप्यति ) प्राणके तृप्त होने पर ( चक्षुः ) चक्षु ( तृप्यति ) तृप्त होता है ( चक्षुषि, तृप्यति )

चक्षुके तृप्त होने पर ( आदित्यः, तृप्यति ) आदित्य तृप्त होता है ( आदित्ये, तृप्यति ) आदित्यके तृप्त होने पर ( द्यौः, तृप्यति स्वर्ग तृप्त होता है ( दिवि, तृप्यन्त्याम् ) स्वर्गके तृप्त होने पर ( यत्किञ्च ) जिस किसीके प्रति ( द्यौः, च, आदित्यः, च ) स्वर्ग और सूर्य ( अधितिष्ठतः ) स्वामिभावसे स्थित होते है ( तत् ) वह ( तृप्यति ) तृप्त होता है ( तस्य, तृप्तिम्, अनु ) उस की तृप्तिके पीछे ( प्रजया ) प्रजा करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( अन्नाद्येन ) भक्षण करनेयोग्य अन्न करके ( तेजसा ) प्रकाश करके ( ब्रह्मवर्चसेन ) ब्रह्मतेज करके ( तृप्यति ) तृप्त होता है ( इति ) ऐसा जान ॥ २ ॥

( भावार्थ )-प्राणके तृप्त होने पर नेत्र तृप्त होते हैं, नेत्रोंके तृप्त होने पर सूर्य तृप्त होता है, सूर्यके तृप्त होने पर स्वर्ग तृप्त होता है, स्वर्गके तृप्त होने पर स्वर्ग और सूर्य जिस २ के स्वामी बनकर स्थित रहते हैं वह सब तृप्त होजाता है और उसकी तृप्ति होजाने पर यजमान प्रजा, पशु, भक्षण करने योग्य अन्न, शरीर और बुद्धि का प्रकाश तथा सदाचरण और स्वाध्यायसे उत्पन्न होने वाले ब्रह्म तेजके द्वारा तृप्त होता है ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः समाप्तः

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद् व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अनन्तर ( याम् ) जिस ( द्वितीयाम् ) दूसरी आहुतिको ( जुहुयात् ) होमै ( ताम् ) उस को ( व्यानाय, स्वाहा, इति ) व्यानाय स्वाहा ऐसा कहकर ( जुहुयात् ) होमै ( व्यानः ) व्यान ( तृप्यति ) तृप्त होता है १

( भावार्थ )-तदनन्तर दूसरी आहुतिको 'व्यानाय स्वाहा" ऐसा मंत्र पढ़कर होमै तो व्यान तृप्त होता है ॥ १ ॥

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चंद्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किञ्च दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( व्याने, तृप्यति ) व्यानके तृप्त होने पर ( श्रोत्रम्, तृप्यति) श्रोत्र तृप्त होता है ( श्रोत्रे, तृप्यति ) श्रोत्र के तृप्त होने पर ( चन्द्रमाः, तृप्यति ) चन्द्रमा तृप्त होता है ( चन्द्रमसि, तृप्यति ) चन्द्रमाके तृप्त होने पर (दिशः,तृप्यन्ति) दिशायें तृप्त होती हैं ( दिक्षु, तृप्यन्तीषु ) दिशाओंके तृप्त होने पर ( यत्किञ्च ) जिस किसीके ऊपर ( दिशः च, चन्द्रमाः च) दिशायें और चन्द्रमा भी ( अधितिष्ठन्ति ) प्रभु बन कर स्थित होते हैं ( तत्, तृप्यति ) वह तृप्त होता है ( तस्य ) उसकी (तृप्तिम्, अनु ) तृप्तिके अनन्तर ( प्रजया ) सन्तति करके ( पशुभिः ) पशुओं करके ( अन्नाद्येन ) भक्षण योग्य अन्न करके ( तेजसा ) तेज करके ( ब्रह्मवर्चसेन ) ब्रह्मतेज करके ( तृप्यति ) तृप्त होता है ( इति ) ऐसा जानो ॥ २ ॥

(भावार्थ) -व्यानके तृप्त होने पर श्रोत्र इन्द्रिय तृप्त होती है, श्रोत्रके तृप्त होने पर चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमा के तृप्त होने पर दिशायें तृप्त होती हैं दिशाओं के तृप्त होनेपर जिस किसी वस्तुके ऊपर दिशाओंकी और चन्द्रमाकी प्रभुता होती है वह सब तृप्त हो जाती

हैं और उन सबके तृप्त होजाने पर भोजन करनेवाला सन्ततिसे, पशुओंसे, उत्तम अन्नसे, शरीर तथा बुद्धिके प्रकाशसे और ब्रह्मतेज से तृप्त होता है ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः समाप्तः

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( याम् ) जिस (तृतीयाम् ) तीसरीको ( जुहुयात् ) होमे ( ताम् ) उसको ( अपानाय, स्वाहा, इति ) अपानाय स्वाहा ऐसा उच्चारण कर के ( जुहुयात् ) होमें ( अपानः ) अपान ( तृप्यति ) तृप्त होता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-तददन्तर तीसरी आहुतिको होमते समय "अपानाय स्वाहा" इस मन्त्रका उच्चारण करे तो अपान तृप्त होता है ॥ १ ॥

अपाने तृप्याति वाक् तृप्याति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्याति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किञ्च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अपाने, तृप्यति ) अपानके तृप्त होने पर ( वाक्, तृप्यति ) वाणी तृप्त होती है ( वाचि तृप्यन्त्याम् ) वाणीके तृप्त होने पर ( अग्निः, तृप्यति ) अग्नि तृप्त होता है ( अग्नौ, तृप्यति ) अग्निके तृप्त होने पर ( पृथिवी, तृप्यति ) पृथिवी तृप्त होती है ( पृथिव्याम्, तृप्यन्त्याम् ) पृथिवी के तृप्त होने पर ( यत्किञ्च ) जिस किसी के ऊपर ( पृथिवी, च, अग्निः-च ) पृथिवी और अग्नि भी ( अधितिष्ठतः ) प्रभुताके साथ

स्थित होते हैं ( तत् तृप्यति ) वह तृप्त होता है ( तस्य, तृप्तिम्-अनु ) उसकी तृप्तिके अनन्तर ( प्रजया ) प्रजाकरके (पशुभिः) पशुओं करके ( अन्नाद्येन ) भक्षण करने योग्य अन्न करके ( तेजसा ) तेज करके ( ब्रह्मवर्चसेन ) ब्रह्मतेज करके (तृप्यति) तृप्त होता है ( इति ) ऐसा जानो ॥ २ ॥

( भावार्थ )-अपानके तृप्त होने पर वाणी तृप्त होती है वाणी के तृप्त होने पर अग्नि तृप्त होता है अग्नि तृप्त होने पर पृथिवी तृप्त होती है, पृथिवीके तृप्त होने पर जिस किसी वस्तु पर भी पृथिवी और अग्निकी प्रभुता है वह सब तृप्त होजाती है और उसकी तृप्तिके अनन्तर भोक्ता प्रजा, पशु, भक्षणयोग्य अन्न शरीर यथा बुद्धिके प्रकाश और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्यैकाविंशः खण्डः समाप्तः

**अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( ( अथ ) अनन्तर ( याम् ) जिस ( चतुर्थीम् ) चौथीको ( जुहुयात् ) होमै ( समानाय, स्वाहा, इति ) समानाय स्वाहा ऐसा बोलकर (जुहुयात्) होमै (समानः) समान ( तृप्यति ) तृप्त होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-चौथी आहुति होमते समय "समानाय स्वाहा" इस मंत्र का उच्चारण करै तो समान तृप्त होता है ॥ १ ॥

**समाने तृप्यति मनस्तृप्याति मनासि तृप्याति पर्जन्यस्तृप्याति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्याति**

विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किञ्च विद्युच्च पर्जन्य-श्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति

अन्वय और पदार्थ-( समाने, तृप्यति ) समानेके तृप्त होने पर ( मनः, तृप्यति ) मन तृप्त होता है ( मनसि, तृप्यति ) मनके तृप्त होने पर ( पर्जन्यः, तृप्यति ) मेघ तृप्त होता है ( पर्जन्ये, तृप्यति ) मेघके तृप्त होने पर ( विद्युत्, तृप्यति ) बिजली तृप्त होती है ( विद्युति, तृप्यन्त्याम् ) बिजलीके तृप्त होने पर ( यत्किञ्च) जिस किसीके ऊपर (विद्युत्, च, पर्जन्यः च ) बिजली और मेघ ( अधितिष्ठतः ) प्रभुतापूर्वक स्थित होते हैं ( तत्, तृप्यति ) वह तृप्त होता है ( तस्य, तृप्तिम्, अनु ) उस को तृप्तिके पीछे ( प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, तृप्यति ) प्रजा, पशु, खानेयोग्य अन्न, तेज और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ( इति ) ऐसा जानो ॥ २ ॥

( भावार्थ )-समानके तृप्त होने पर मन तृप्त होता है मनके तृप्त होने पर मेघ तृप्त होता है, मेघके तृप्त होने पर बिजली तृप्त होती है, बिजली के तृप्त होने पर जिस किसी वस्तु के ऊपर मेघ और बिजलीकी प्रभुता होती है वह सब तृप्त होजाती है, इसके पीछे भोक्ता सन्तान, पशु, खानेयोग्य अन्न, शरीर तथा बुद्धि के प्रकाश और ब्रह्मतेज से तृप्त होता है ॥ २ ॥

पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः समाप्तः

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( याम् ) जिस ( पञ्चमीम् ) पाँचवीको ( जुहुयात् ) होमै, ( ताम् ) उसको

( उदानाय, स्वाहा, इति ) उदानाय स्वाहा ऐसा बोल कर ( जुहुयात् ) होमै ( उदानः ) उदान ( तृप्यति ) तृप्त होता है ॥

( भावार्थ )-भोक्ता पञ्चमी आहुतिको होमते समय "उदानाय स्वाहा" इस मंत्रका उच्चारण करे तो उदान तृप्त होता है ॥ १ ॥

उदाने तृप्यति त्वक् तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( उदाने, तृप्यति ) उदानके तृप्त होने पर ( त्वक्, तृप्यति ) त्वचा तृप्त होती है ( त्वचि, तृप्यन्त्याम् ) त्वचाके तृप्त होने पर ( वायुः, तृप्यति ) वायु तृप्त होता है ( वायौ, तृप्यति ) वायुके तृप्त होने पर ( आकाशः, तृप्यति ) आकाश तृप्त होता है ( आकाशे, तृप्यति ) आकाशके तृप्त होने पर ( यत्किञ्च ) जिस किसीके ऊपर ( वायुः, च, आकाशः, च ) वायु और आकाश ( अधितिष्ठतः ) प्रसन्नतापूर्वक स्थित होते हैं ( तत्, तृप्यति ) वह तृप्त होता है, ( तस्य, तृप्तिम् अनु ) उसकी तृप्तिके पीछे ( प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा ब्रह्मवर्चसेन, तृप्यति ) प्रजा, पशु, खानेयोग्य अन्न, तेज और ब्रह्मवर्चससे तृप्त होता है ( इति ) ऐसा जानो ॥ २ ॥

( भावार्थ )—उदानके तृप्त होने पर त्वचा तृप्त होती है, त्वचाके तृप्त होने पर वायु तृप्त होता है, वायुके तृप्त होने पर आकाश तृप्त होता है, आकाशके तृप्त होने पर जिस किसी वस्तुके ऊपर वायु और आकाशकी

प्रभुता है वह सब तृप्त होजाती है और उसकी तृप्तिके अनन्तर भोक्ता सन्तान, पशु, खाने योग्य अन्न, शरीर तथा बुद्धिका प्रकाश और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ॥२॥

पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः समाप्तः

**स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक् तत् स्यात् ॥१॥**

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( इदम् ) इसको ( अविद्वान् ) न जानता हुआ ( अग्निहोत्रम् ) अग्निहोत्रको ( जुहोति ) होमता है ( सः ) वह ( यथा ) जैसे ( अङ्गारान् ) अङ्गारोंको ( अपोह्य ) त्यागकर ( भस्मनि ) भस्ममें ( जुहुयात् ) होम करै ( तादृक् ) तैसा ( तत् ) वह ( स्यात् ) होगा ॥ १ ॥

( भावार्थ )—जो कोई इस कही हुई वैश्वानरविद्या को न जानता हुआ अग्निहोत्रकी आहुतियें होमता है अङ्गारोंको अलग करके राखमें होम करनेसे जैसा फल होता है तैसा ही वैश्वानरवेत्ताके अग्निहोत्रकी अपेक्षा उसका होम निरर्थक होता है ॥ १ ॥

**अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति २**

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यः ) जो ( एतम् ) इसको ( एवम् ) इसप्रकार ( विद्वान् ) जानता हुआ ( अग्निहोत्रम् ) अग्निहोत्रको ( जुहोति ) होमता है ( तस्य ) उसका ( सर्वेषु, लोकेषु ) सबलोकोंमें ( सर्वेषु, भूतेषु ) सब भूतोंमें ( सर्वेषु, आत्मसु ) सब आत्माओंमें ( हुतम् ) होमा हुआ ( भवति ) होता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो इसप्रकार जानताहुआ अग्निहोत्रमें होम करता है अर्थात् पीछे कही विधिसे भोजन करता

है उसका सब लोकोंमें, सब भूतोंमें और देह इन्द्रियादि रूप सब आत्माओंमें होमाहुआ अर्थात् भोजन किया हुआ होता हैं ॥ २ ॥

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैव ँ हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) सो ( यथा ) जैसे ( इषीकातूलम् ) मूँजकी तुली ( अग्नौ ) अग्निमें ( प्रोतम् ) डाली हुई ( प्रदूयेत ) जलजाय ( एवम्, ह ) इसप्रकार ही ( यः ) जो ( एतत् ) इसको ( विद्वान् ) जानता हुआ ( अग्निहोत्रम् ) अग्निहोत्रको (जुहोति) होमता है ( अस्य ) इसके ( सर्वे ) सब ( पाप्मानः ) पाप ( प्रदूयन्ते ) भस्म होजाते हैं ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-जिसप्रकार मूंजके भीतरकी तुलीको निकाल कर अग्निमें डालदिया जाय तो वह तत्काल भस्म होजाती है, इसीप्रकार जो इस अग्निहोत्रकी विधिको जानता हुआ भोजनरूप होम करता है उसके प्रारब्धरूप पापको छोड़कर अन्य सब पाप भस्म होजाते हैं ॥ ३ ॥

तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतꣳ स्यादिति तदेष श्लोकः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तस्मात्, उ ) तिस कारणसे ही ( एवम्वित्, ह ) ऐसा जाननेवाला ( यद्यपि ) कदाचित् ( चण्डालाय ) चण्डालके लिये ( उच्छिष्टम् ) जूठा ( प्रयच्छेत् ) देय ( अस्य ) इसका ( तत्, एव, ह ) वह भी ( आत्मनि, वैश्वानरे

आत्मरूप वैश्वानरमें ( हुतम् ) होमाहुआ ( स्यात् ) होगा ( इति) यह सिद्धान्त है ( तत् ) उसमें ( एषः ) यह ( श्लोकः ) मंत्र है४

( भावार्थ )-इसलिये इस तत्वको जाननेवाला यदि कदाचित् चण्डालको अपनी जूठन देदेय तो भी उसका यह चण्डालके शरीरमें स्थित आत्मरूप वैश्वानरमें होम ही होता है, इससे उसको अधर्म नहीं होता है, इस अग्निहोत्रकी प्रशंसामें यह मंत्र है ॥ ४ ॥

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासेत । एवᳬ सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इति, अग्निहोत्रमुपासत इति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यथा ) जैसे ( इह ) इसलोकमें ( क्षुधिताः ) भूखे ( बालाः ) बालक ( मातरम्, पर्युपासते ) माताकी उपासना करते हैं ( एवम् ) ऐसे ही ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) भूत ( अग्निहोत्रम् ) अग्निहोत्रकी ( उपासते ) उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

( भावार्थ ) जिसप्रकार इसलोकमें भूखे बालक माताकी "हमें कब अन्न देगी" ऐसी बाट देखते हुए उपासना करते हैं,इसीप्रकार सकल प्राणी इस विद्याको जाननेवाले के भोजनरूप अग्निहोत्रकी "यह कब भोजन करेगा" ऐसी बाट देखते हुए" उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः समाप्तः

पञ्चमाध्यायः समाप्तः

—०—



# षष्ठ अध्याय

एक विद्वान्‌के भोजन करलेने पर सब जगत् तृप्त होजाता है, यह बात पीछे कही थी, परन्तु ऐसा तब ही होसकता है, कि-जब सकल भूतोंमें एक ही आत्मा होय, अतः सब भूतोंमें एक ही आत्मा किस प्रकार है, इस बातको दिखाने के लिये इस छठे अध्याय का आरम्भ है, जिसमें पिता पुत्रकी आख्यायिका के द्वारा आत्मतत्त्व दिखाया है-

ॐ श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तँ᳭ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आरुणेयः ) अरुणका पौत्र ( श्वेतकेतुः ) श्वेतकेतु ( आस ) था ( तम्, ह ) उसके प्रति ( पिता ) पिता ( उवाच ) बोला ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतुकेतु ( ब्रह्मचर्यम् ) ब्रह्मचर्यपूर्वक ( वस ) गुरुके यहाँ निवास कर ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( वै ) निःसन्देह ( अस्मत्कुलीनः ) हमारे कुल में उत्पन्न हुआ ( अननूच्य ) अध्ययन न करके ( ब्रह्मबन्धुः इव ) ब्राह्मण के आचारसे हीनकी समान ( न ) नहीं ( भवति ) होता है ( इति ) यह नियम है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-अरुण ऋषिका पौत्र एक श्वेतकेतु नाम का ब्राह्मणकुमार था, उससे उसके पिताने कहा, कि-हे श्वेतकेतु ! योग्य गुरुके पास जाकर ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास कर, हे प्रियदर्शन ! हमारे कुलमें उत्पन्न हुआ कोई पुरुष भी वेदादि शास्त्रों को न पढ़कर ब्राह्मण के आचार से हीनसा होकर रहे, यह उचित नहीं है, ॥१॥

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंᳫशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी

स्तब्ध एयाय तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः ॥ २ ॥ पूछा है

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( द्वादशवर्षः ) बारह वर्षकी अवस्थाका ( उपेत्य) गुरुके समीप जाकर ( चतुर्विंशतिवर्षः ) चौवीस वर्षकी अवस्था का होने पर्यन्त ( सर्वान् ) सब ( वेदान् ) वेदोंको ( अधीत्य ) पढ़कर ( महामनाः ) अपने को बड़ा मानने वाला ( अनूचानमानी ) वेद पढ़लेनेका अभिमानी ( स्तब्धः ) विनयहीन ( एयाय ) घरको लौटकर आया ( तम् उसके प्रति (पिता) पिता (उवाच) बोला (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ! ( यत् इदम् ) यह जो ( महामनाः ) अपने को बड़ा मानने वाला ( अनूचानमानी ) अध्ययन का अभिमानी ( उत ) और ( स्तब्धः ) विनयहीन ( असि ) हुआ है ( तम् ) तिस ( आदेशम् ) उपदेशको ( अप्राक्ष्यः, नु) बूझ चुका है क्या ? ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वह श्वेतकेतु बारह वर्षकी अवस्था में गुरुके घर गया और चौबीस वर्षकी अवस्था होने तक चारों वेदोंको पढ़कर और उनके अर्थको जानकर अपनेको दूसरोंसे बड़ा मानने लगा और मैंने चारों वेदोंको साङ्गोपाङ्ग पढ़ा है, इस बातका अभिमानी होकर बड़े गर्व में भरा हुआ अपने घरको लौट कर आया। अपने पुत्रको ऐसी दशामें देख कर पिताने कहा, कि—हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ! तू जो अपनेको औरोंसे बड़ा मानता है तथा मैंने साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पढ़ लिये हैं, ऐसा मान कर घमण्डमें भर गया है, क्या तूने अपने गुरुसे उस विषय में भी बूझदेखा है ? ॥ २ ॥

येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( येन ) जिसके द्वारा ( अश्रुतम् ) न सुना हुआ ( श्रुतम् ) सुना हुआ ( अमतम् ) मनन न किया हुआ ( मतम् ) मनन किया हुआ ( अविज्ञातम् ) न जानाहुआ ( विज्ञातम् ) जाना हुआ ( भवति ) होता है ( इति ) ऐसा पिताने कहा ( भगवः ) हे भगवन् ( सः ) वह (आदेशः) उपदेश ( कथम्, नु ) कैसे ( भवति ) होता है ( इति ) इसको बताइये ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-हे श्वेतकेतु ! तू ने अपने गुरु से कभी यह प्रश्न भी किया था ? कि-जिसको जान लेने से न सुने हुए जितने भी विषय हैं सब सुने हुए होजाते हैं न मनन किये हुए जितने भी विषय हैं वे सब मनन किये हुएसे होजाते हैं और न जाने हुए जितने विषय हैं वे सब जाने हुए से होजाते हैं वह क्या है ?, सब वेदोंको पढ़ कर और अन्य सब विद्याओंको जान कर भी मनुष्य जब तक आत्मतत्त्वको नहीं जानता है तबतक कृतार्थ नहीं होता, पिताकी इस बातको सुनकर पुत्रने कहा, कि हे भगवन् ! ऐसा उपदेश कौनसा है और वह किस प्रकार संभव हो सकता है ? ॥ ३ ॥

यथा सोम्येकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳस्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ! ( यथा )

जैसे ( एकेन ) एक ( मृत्पिण्डेन ) मृत्तिका के ढलेसे (सर्वम्) सब (मृन्मयम्) मृत्तिकाकी वस्तुओंका समूह ( विज्ञातम्) जाना हुआ ( स्यात् ) होजाता है ( वाचारम्भणम् ) वाणीका विषय ( विकारः ) कार्य ( नामधेयम् ) नाम है ( मृत्तिका, इत्येव ) मृत्तिका ही ( सत्यम् ) सत्य है ॥

( भावार्थ )-उद्दालक मुनिने कहा, कि-हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ! जैसे एक मट्टीके ढलेका ज्ञान होजाने पर मट्टीके कार्यमात्र सकल वस्तुओंका ज्ञान होजाता है, क्यों कि—जो कुछ वाणी का विषय विकाररूप कार्य है वह नाममात्र कहिये कहने मात्रको ही है, सत्य नहीं है, सत्य तो केवल मृत्तिका ही हैं, तात्पर्य यह है कि-कार्यका कारणसे अभेद होता है, इस कारण सब कार्य कारणरूप ही हैं, वाणीका विषय जो कार्य है वह तो नाममात्रको ही है सत्य नहीं है ॥ ४ ॥

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( यथा ) जैसे ( एकेन ) एक ( लोहमणिना ) सुवर्णके पिण्डसे ( सर्वम् ) सब ( लोहमयम् ) सुवर्णके बने पदार्थोंका समूह ( विज्ञातम् ) जानाहुआ ( स्यात् ) होजाता है ( वाचारम्भणम् ) वाणीका विषय ( विकारः ) कार्य ( नामधेयम् ) नाम मात्र है ( लोहम्, इति, एव ) सोना ही ( सत्यम् ) सत्य है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-हे प्रियदर्शन ! जिसप्रकार एक सुवर्णके पिण्डको जानलेने पर सुवर्णसे जितने भी पदार्थ बन सकते हैं सब जानेहुए होजाते हैं, वाणीके विषय जितने

भी कार्य हैं सब नाममात्रको हैं, सत्य नहीं हैं, सत्य तो एक सुवर्ण ही है ॥ ४ ॥

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारंभणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेवꣳ सोम्य स आदेशो भवतीति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( यथा ) जैसे ( एकेन ) एक ( नखनिकृन्तनेन ) नख काटनेके निहन्ने जैसे लोहेके टुकड़ेसे ( सर्वम् ) सब ( कार्ष्णायसम् ) लोहेसे बने पदार्थोंका समूह ( विज्ञातम् ) जाना हुआ ( स्यात् ) होता है ( वाचारम्भणम् ) वाणीका विषय ( विकारः ) कार्य ( नामधेयम् ) कहनेमात्रको है ( कृष्णायसम्, इति, एव ) लोहा ही ( सत्यम् ) सत्य है ( एवम् ) इसीप्रकार ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( सः ) वह ( आदेशः ) उपदेश ( भवति ) होता है ( इति ) ऐसा जानो ॥ ६ ॥

( भावार्थ )--हे प्रियदर्शन ! जिसप्रकार नख काटनेके निहन्ना जैसे एक लोहेके टुकड़ेको जान लेनेपर लोहेसे बननेवालीं सकल वस्तुओंका ज्ञान होजाता है, क्योंकि--रूप नामवाला कार्यमात्र कहनेमात्रको वाणीका व्यवहार हैं, वास्तवमें तो लोहा ही सत्य है । तात्पर्य यह है कि संसारमें एक वस्तुकी अनेकों वस्तु बनजाती हैं और जितनी वस्तु बनती हैं उनके नाम भी अलग २ होते हैं, जैसे एक सोनेके अनेकों नामरूपवाले आभूषण बनजाते हैं, परन्तु वास्तवमें वे सब सोना ही हैं क्योंकि-यदि उनको गला दियाजाय तो कोई नामरूप न रहकर सोना ही रहजाता है, इससे सिद्ध हुआ, कि--जितना विकार

बढ़ेगा उतना ही वाणीका विस्तार होगा और वह नाम-मात्रको होगा, वास्तवमें जिस कारणरूप वस्तुसे वह विकार फैला है वह कारणरूप वस्तु ही सत्य है, हे सोम्य! इसीप्रकार एक पदार्थका उपदेश है कि-जिस एक पदार्थको जानलेनेपर अन्य सब ही पदार्थोंका ज्ञान होजाता है॥

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवांस्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( भगवन्तः ) पूजनीय ( ते ) वे गुरु ( नूनम्, वै ) निश्चय ( एतत् ) इसको ( न ) नहीं ( अवेदिषुः ) जानते थे ( हि ) क्योंकि (यत् ) जो ( एतत् ) इसको (अवेदिष्यन् ) जानते होते ( तत् ) तो ( मे) मेरे अर्थ ( कथम् ) कैसे ( न ) नहीं ( अवक्ष्यन् ) कहते ( इति ) इसकारण ( भगवान्, एव ) आप ही ( मे ) मेरे अर्थ ( तत् ) उसको ( ब्रवीतु ) कहिये ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तथा ) तैसा ही [ अस्तु ] हो ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोले ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-पिताकी इस बातको सुनकर पुत्रने कहा, कि मेरे पूजनीय गुरुदेव निःसन्देह इस तत्त्वको नहीं जानते होंगे कि-एक विज्ञानके द्वारा सर्व विज्ञान होसकता है, यदि वे इस तत्त्वको जानते होते तो ऐसा कैसे होसकता था, कि-वे मुझे इस तत्त्वका उपदेश नहीं देते? इसकारण आप ही मुझे इस तत्वका उपदेश दीजिये। इसपर पिता ने कहा कि—अच्छा श्वेतकेतु! मैं ही तुझे इस विज्ञानका उपदेश देता हूँ ॥ ७ ॥

षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत[1] ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( इदम् ) यह ( अग्रे ) पहले ( सत्, एव ) सत् ही ( आसीत् ) था ( एकम्, एव ) एक ही ( अद्वितीयम् ) अद्वितीय [ आसीत् ] था ( तत्, ह ) उसमें ही ( एके ) एक ( आहुः ) कहते हैं ( इदम् ) यह ( अग्रे ) आगे ( असत्, एव ) असत् ही ( एकम्, एव ) एक ही ( अद्वितीयम् अद्वितीय ( आसीत् ) था ( तस्मात् ) तिस कारण ( असतः ) असत्से ( सत् ) सत् ( जायते ) हुआ है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे प्रियदर्शन ! यह नामरूप और क्रिया वाला विकारी जगत्, अपनी उत्पत्तिसे पहले सत् कहिये सूक्ष्म, निर्विशेष, सर्वव्यापक, निर्दोष, निष्क्रिय, शान्त, निरञ्जन, निरवयव और ज्ञानरूप ही था, एक कहिये सजातीय और स्वगतभेदशून्य था, अद्वितीय कहिये विजातीय भेदसे रहित था । इसमें ही उत्पत्तिसे पहले वस्तुका निरूपण करनेके विषयमें एक शून्यवादि कहते हैं, कि—यह जगत् उत्पत्तिसे पहले अभावरूप ( शून्य ) ही था, एक और अद्वितीय था । इस सबके अभावरूप असत्से सत् ( विद्यमान वस्तु ) उत्पन्न होगया है ॥१॥

कुतस्तु खलु सोम्यैवं स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( कुतः )

( १ ) अजायतके स्थानमें 'जायत' छान्दस प्रयोग है ।

कैसे ( एवम् ) ऐसा ( खलु ) निश्चितरूपसे ( स्यात् ) होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) बोला ( असतः ) असत्से ( सत्) सत् ( कथम् ) कैसे ( जायेत ) होजायगा ( इति ) इसकारण ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( इदम् ) यह ( अग्रे ) पहले ( सत्, एव ) सत् ही ( एकम्, एव ) एक ही ( अद्वितीयम् ) अद्वितीय ( आसीत् ) था ॥ २ ॥

( भावार्थ )-हे प्रियदर्शन ! ऐसा कैसे होसकता है ? किसी भी प्रमाणसे अभावमेंसे भावकी उत्पत्ति नहीं होसकती, यह बात उद्दालकने कही। किसप्रकार असत् मेंसे सत् उत्पन्न होजाय, इसका कोई दृष्टान्त नहीं है। इसकारण हे सौम्य ! यह जगत् उत्पत्तिसे पहले निःसन्देह सत् ही था, रज्जुमें सर्पकी समान द्वैत प्रपञ्च कल्पित है, इसकारण इस ऐसे ज्ञानके समयमें भी वास्तवमें एक अद्वितीय ही है ॥ २ ॥

**तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुष स्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) वह ( बहु, स्याम् ) बहुत होजाऊँ ( प्रजायेय ) उत्पन्न होऊँ ( इति ) ऐसा ( ऐक्षत ) सङ्कल्प करता हुआ ( तत् ) वह ( तेजः ) तेजको ( असृजत् ) रचता हुआ ( तत् ) वह ( तेजः ) तेज ( बहु, स्याम् ) बहुत होजाऊँ ( प्रजायेय ) उत्पन्न होऊँ ( इति ) ऐसा ( ऐक्षत ) सङ्कल्प करता हुआ ( तत् ) वह ( अपः ) जलको ( असृजत ) रचता हुआ ( तस्मात् ) तिससे (यत्र, क्वच) जहां कहीं (पुरुषः) पुरुष ( शोचति ) सन्तापयुक्त होता है ( वा ) या ( स्वेदते )

पसीनेसे युक्त होता है ( तत् ) तिससे ( तेजसः एव ) तेजसे ही ( आपः ) जल ( अधिजायन्ते ) उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-उस सत्ने मैं बहुत होजाऊँ, कल्पित कार्यरूप से उत्पन्न होजाऊँ, ऐसा सङ्कल्प किया था, और ऐसा सङ्कल्प करके उस सत्ने आकाश तथा वायु को रचनेके अनन्तर तेजको रचा था। सत् के प्रवेशवाले उस तेजने भी मैं बहुत होजाऊँ, कल्पित कार्यरूपसे उत्पन्न होजाऊँ, ऐसा सङ्कल्प किया और उस तेजने जलको रचदिया, उस कारण ही जिस किसी देश वा कालमें पुरुष सन्तापयुक्त होता है तो उसको पसीना आजाता है, इससे सिद्ध हुआ कि तेजसे जल उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ताः ) वह (आपः) जल (बह्व्यः, स्याम् ) बहुत होजायँ ( प्रजायेमहि ) उत्पन्न होजायँ ( इति ) ऐसा ( ऐक्षन्त ) सङ्कल्प करते हुए ( ताः ) वह ( अन्नम् ) अन्नको ( असृजन्त ) उत्पन्न करते हुए ( तस्मात् ) तिस से ( यत्र, क्व, च ) जहाँ कहीं भी ( वर्षति ) वर्षा होती है ( तत्, एव ) तहाँ ही ( भूयिष्ठम् ) बहुतसा ( अन्नम् ) अन्न (भवति) होता है ( तत् ) जो ( अद्भ्यः, एव ) जलसे ही ( अन्नाद्यम् ) खानेयोग्य अन्न ( अधिजायते ) उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-सत्के प्रवेशवाले उन जलोंने ही हम बहुत होजायँ और कल्पित कार्यरूपसे उत्पन्न होजायँ

ऐसा सङ्कल्प किया औरउन जलोंने पृथिवीरूप अन्नको उत्पन्न किया, इस कारण ही जहाँ कहीं भी वर्षा होती है तहाँ ही बहुतसा अन्न उत्पन्न होता है इस कारण जलसे ही भक्षण करने योग्य अन्न उत्पन्न होता है ॥४॥

षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( खलु ) निश्चय ( तेषाम् ) तिन ( एषाम् ) इन ( भूतानाम् ) भूतों के ( त्रीणि, एव ) तीन ही ( बीजानि ) बीज ( भवन्ति ) होते हैं ( आण्डजम् ) अण्डज ( जीवजम् ) जीवज ( उद्भिज्जम् ) उद्भिज्ज ( इति ) इसप्रकार

( भावार्थ )-अचेतन भूत ब्रह्मके कार्य हैं इस बात को ऊपर कहदिया अब जीवके आवेश से युक्त भौतिक भी परम्परा से ब्रह्मका ही कार्य है इस बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि-उन जीवसे आविष्ट इन प्रसिद्ध पक्षी, पशु और स्थावर आदिकोंके तीन ही बीज हैं अधिक नहीं हैं, एक अण्डज दूसरे जीवज कहिये जरायुज और तीसरे उद्भिज्ज,पक्षी,पेटसे चलनेवाले और मत्स्य आदि प्राणी अण्डज कहलाते हैं। मनुष्य पशु आदि जरायुज कहलाते हैं। और वृक्षादिक उद्भिज्ज कहलाते हैं। जूँ आदि स्वेदज अण्डजोंमें और मच्छर आदि संशोकज उष्णतासे उत्पन्न होनेवाले उद्भिज्जोंमें मानेगये हैं ॥१॥

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सा, इयम् ) वह यह (देवता) देवता

( इति ) इस प्रकार ( ऐक्षत ) सङ्कल्प करने लगी ( हन्त ) अब ( अहम् ) मैं ( अनेन ) इस (जीवेन, आत्मना ) जीवरूपसे (इमाः) इन ( तिस्रः ) तीन ( देवताः ) देवताओंके प्रति ( अनुप्रविश्य ) अनुप्रवेश करके ( नामरूपे ) नाम और रूपों को (व्याकरवाणि) विशेष रूपसे स्पष्ट करूँ ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वह सत् नामवाला देवता सङ्कल्प करने लगा, कि—अब मैं इन, तेज आदि तीन देवताओं में इस जीवरूपसे प्रवेश करके तेज, जल और अन्नरूप भूतोंकी मात्रारूप बुद्धि आदिके संसर्गसे विशेष विज्ञान युक्त होता हुआ नाम और रूपोंको विशेषरूप से स्पष्ट करदूं ॥ २ ॥

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तासाम् ) उनमें के ( एकैकाम् ) एक एकको ( त्रिवृतं त्रिवृतम् ) तीन तीन प्रकार वाला ( करवाणि ) करूँ ( इति ) ऐसा सङ्कल्प करके ( सा, इयम्, देवता) वह यह देवता ( अनेन, एव ) इस ही ( जीवेन, आत्मना ) जीवरूपस ( इमाः, तिस्रः, देवताः ) इन देवताओं के प्रति ( अनुप्रविश्य ) अनुप्रवेश करके ( नामरूपे ) नाम और रूपों को ( व्याकरोत् ) विशेष रूपसे स्पष्ट करता हुआ ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—उन तीनों देवताओंमें के एक २ के गुणोंकी प्रधानताके अनुसार तीन२ प्रकारका करूँ ऐसा सङ्कल्प करके उस सत् नामवाले देवता ने तेज आदि तीनों देवताओं में इस जीवरूप से ही अर्थात् प्रथम विराटके पिण्डमें फिर देवता आदिके पिण्डमें सूर्यके

विम्बकी समान अनुप्रवेश करके सङ्कल्प के अनुसार नाम और रूपोंको विशेष रूपसे स्पष्ट कर किया ॥ ३॥

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा तु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तासाम् ) उनमें के ( एकैकाम् ) एक २ को ( त्रिवृतम् त्रिवृतम् ) त्रिगुणित २ ( अकरोत् ) किया ( तु ) परन्तु ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( यथा ) जिस प्रकार ( खलु ) प्रसिद्धरूपसे ( इमाः ) ये ( तिस्रः, देवताः ) तीन देवता ( एकैका ) एक २ ( त्रिवृत् त्रिवृत् ) त्रिगुणित त्रिगुणित ( भवति ) होता है ( तत् ) सो ( मे ) मुझ से (विजानीहि ) जान ( इति ) ऐसा कहा ॥ ४ ॥

( भावार्थ ) यद्यपि उन तेज, जल और अन्न नामक उन तीन देवताओं में से एक एक को मुख्य गौण भाव से त्रिगुणित त्रिगुणित किया अर्थात् तीनोंको आपसमें मिलाया, परन्तु हे सौम्य ! जिस प्रकार शरीरसे बाहर इन तीनोंमें के त्रिगुणित हर एकको ज्ञानका विषय अर्थात् जाननेमें आने योग्य किया जाता है उसको मैं उदाहरण देकर स्पष्ट रूपसे कहता हूँ तू समझले ॥ ४ ॥

षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

यदग्ने रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अग्नेः ) अग्निका ( यत् ) जो ( रोहितम् ) लाल ( रूपम् ) रूप है ( तत् ) वह ( तेजसः )

तेजका ( रूपम् ) रूप है ( यत् ) जो ( शुक्रम् ) श्वेत है (तत् वह ( अपाम् ) जलका है ( यत् ) जो ( कृष्णम् ) काला है (तत् ) वह ( अन्नस्य ) अन्नका है (अग्नेः ) अग्निका ( अग्नित्वम् ) अग्निपना ( अपागात् ) जाता रहा ( वाचारम्भणम् ) वाणीका विषय ( विकारः ) कार्य ( नामधेयम् ) नाममात्र है ( त्रीणि, रूपाणि, इत्येव ) तीन रूप ही ( सत्यम् ) सत्य है १

( भावार्थ )-अग्नि एक त्रिगुणित मिश्र भूत है, इस त्रिवृत्कृत अग्निका जो लाल रूप है वह अत्रिवृत्कृत तेज का रूप है,जो श्वेत रूप है वह अत्रिवृत्कृत जलका रूप है और जो काला रूप है वह अत्रिवृत्कृत पृथिवीका रूप है, इसप्रकार इन तीनों रूपोंके मिलने पर जो अग्निका रूप माना जाता है उसका अग्नित्व जाता रहा अर्थात् वह वास्तवमें अग्निका रूप नहीं है इसकारण तीनोंरूपोंके ज्ञान से पहले जो तुझे अग्नि बुद्धि थी वह अग्नि बुद्धि गयी और अग्नि शब्द भी गया। वाणीका विषय कार्य ( अग्नि नाम)कहने भरको है, केवल वे तीनों रूप ही सत्य हैं ॥१॥

यदादित्यस्य रोहित ꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यस्यादित्यत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आदित्यस्य ) आदित्यका ( यत् ) जो ( रोहितम् ) लाल ( रूपम् ) रूप है ( तत् ) वह ( तेजसः ) तेजका रूप है ( यत् ) जो ( शुक्लम् ) श्वेत है ( तत् ) वह ( अपाम् ) जलका है ( यत् ) जो ( कृष्णम् ) काला है ( तत् ) वह ( अन्नस्य ) पृथिवीका है ( आदित्यस्य ) आदित्यका ( आदित्यत्वम् ) आदित्यपना ( अपागात् ) चलागया ( वाचारम्भ-

णम् ) वाणीका विषय ( विकारः ) कार्य ( नामधेयम् ) कहने मात्रको है ( त्रीणि, रूपाणि, इत्येव ) तीनरूप ही ( सत्यम् ) सत्य हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )--आदित्यका जो लालरूप है वही अत्रिवृत्कृत तेजका रूप है, जो स्वेत रूप है वह अत्रिवृत्कृत जलका रूप है और जो काला रूप है वह अत्रिवृत्कृत पृथिवीका रूप है, इसकारण तीन रूपोंके मिलानसे उत्पन्न होनेवाले आदित्यका आदित्यपना जाता रहा । वाणीका विषय जो (आदित्य यह नाम) कहनेमात्रको है, इसकारण 'आदित्य' यह ज्ञान भी मिथ्या ही है, केवल तीनों रूप ही सत्य हैं ॥ २ ॥

यच्चन्द्रमसो रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( चन्द्रमसः ) चन्द्रमाका ( यत् ) जो ( रोहितम् ) लाल ( रूपम् ) रूप है ( तत् ) वह ( तेजसः ) तेजका ( रूपम् ) रूप है ( यत् ) जो ( शुक्लम् ) स्वेत है ( तत् ) वह ( अपाम् ) जलका है ( यत् ) जो ( कृष्णम् ) काला है ( तत् ) वह ( अन्नस्य ) अन्नका हैं (चन्द्रात् ) चन्द्रमामेंसे (चन्द्रत्वम् ) चन्द्रमापन ( अपागात् ) जाता रहा ( वाचारम्भणम् ) वाणीका विषय ( विकारः ) कार्य ( नामधेयम् ) कहनेमात्रको है ( त्रीणि, रूपाणि, इत्येव ) तीन रूप ही ( सत्यम् ) सत्य हैं ३

( भावार्थ)–चन्द्रमामें जो लाल रूप है वह अत्रिवृत्कृत तेजका रूप है, जो स्वेत रूप है वह अत्रिवृत्कृत जलका

रूप है और जो काला रूप है वह अत्रिवृत्कृत पृथिवीका रूप है। इसप्रकार चन्द्रमामेंसे चन्द्रमापन जाता रहा, वाणीका विषय जो कार्य ( चन्द्रमा यह नाम ) है वह कहने मात्रको है. इसकारण चन्द्रमा यह ज्ञान भी मिथ्या है, तीनों रूपमात्र ही सत्य हैं ॥ ३ ॥

यद्विद्युतो रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणी-त्येव सत्यम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( विद्युतः ) बिजलीका ( यत् ) जो ( रोहितम् ) लाल ( रूपम् ) रूप है ( तत् ) वह ( तेजसः ) तेजका (रूपम्) रूप है ( यत् ) जो (शुक्लम् ) स्वेत है (तत्) वह ( अपाम्) जलका है (यत्) जो ( कृष्णम् ) काला है ( तत् ) वह ( अन्नस्य ) अन्नका है ( विद्युतः ) बिजलीका ( विद्युत्त्वम् ) बिजलीपना (अपागात्) गया (वाचारम्भणम्) वाणीका विषय (विकारः) कार्य (नामधेयम्) नाममात्र है ( त्रीणि, रूपाणि, इत्येव ) तीन रूप ही ( सत्यम् ) सत्य हैं ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-बिजलीका जो लालरूप है वह तेजका रूप है, जो स्वेत रूप है वह जलका रूप है और जो काला रूप है वह पृथिवीका रूप है, इसप्रकार बिजलीमेंसे बिजली पना चलागया। वाणीका विषय जो कार्य ( बिजली यह नाम ) है वह तो कहने मात्रको है वास्तवमें तीनों रूप ही सत्य हैं। इसीप्रकार जल और जौ आदि अन्न में भी तीन रूप मात्र ही सत्य है। सब जगत् त्रिवृत्कृत है इसकारण तीन रूप ही सत्य हैं, जगत्का जगद्भाव सत्य नहीं है। इसीप्रकार पृथिवी जलका कार्य है, इस-

कारण जल सत्य है, जल तेजका कार्य है इसकारण तेज सत्य है, तेज वायुका कार्य है इसकारण वायु सत्य है, वायु आकाशका कार्य है इसकारण आकाश सत्य है और आकाश सत्का कल्पित कार्य है, इसकारण सत् ही सत्य है और वह एक तथा अद्वितीय है। इसप्रकार सब भूत और भौतिक सत्का ही कार्य हैं, इसकारण एक सत्का ज्ञान होजाने पर सब विश्वका ज्ञान हो-जाता है ॥ ४ ॥

एतद्धस्म वै तद्विद्वा ँ्स आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुतममतमविज्ञा-तमुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) तिस ( एतत् ) इसको ( विद्वांसः ) जाननेवाले ( पूर्वे ) पूर्वके ( वै ) प्रसिद्ध ( महा-शालाः ) महागृहस्थ ( महाश्रोत्रियाः ) बड़े भारी श्रोत्रिय ( आहुः ) कहते हुए ( नः ) हममें ( अद्य ) आज ( कश्चन ) कोई भी ( अश्रुतम् ) न सुनेहुएको ( अमतम् ) न मनन किये हुएको ( अविज्ञातम् ) न निश्चय किये हुएको ( न ) नहीं ( उदाहरि-ष्यति ) कहेगा ( हि ) क्योंकि ( एभ्यः ) इनसे ( विदाञ्चक्रुः ) जानगये हैं ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-इन अग्नि आदिके दृष्टान्तसे सकल जगत् के परम कारण सत्स्वरूप ब्रह्मको जानकर महागृहस्थ और वेदके ज्ञाता हमारे पूर्व पुरुष कहगये हैं, कि—इस समय हमारे कुलमें कोई भी किसीसे विना सुने, विना मनन कियेहुए और विना जानेहुए वस्तुको नहीं कहेंगे, क्योंकि वह इन लोहित आदि तीनों रूपोंसे परमकारण को जानगये हैं ॥ ५ ॥

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपाꣳ रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यत्, उ ) जो कुछ ( रोहितम्, इव, अभूत् ) लालसा था ( इति, तत् ) ऐसा वह ( तेजसः, रूपम्, इति, तत् ) तेजका रूप है इसप्रकार उसको ( विदाञ्चक्रुः ) जानते हुए ( यत्, उ ) जो कुछ ( शुक्लम्, इव, अभूत् ) स्वेतसा था ( इति ) यह ( अपाम्, रूपम् ) जलका रूप है ( इति ) ऐसा ( तत् ) उसको ( विदाञ्चक्रुः ) जानते हुए ( यत्, उ ) जो कुछ ( कृष्णम्, इव ) कालासा ( अभूत् ) था ( इति ) यह ( अन्नस्य, रूपम् ) अन्नका रूप है ( इति ) ऐसा ( तत् ) उसको विदाञ्चक्रुः ) जानते हुए ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—ब्रह्मवेत्ताओंने सृष्टिमें विविधप्रकारके रूपोंवाले जो कुछ भी पदार्थ देखे, उनमें जो लालसा था उस सबको तेजका रूप, जो स्वेतसा था उसको जल का रूप और जो कालासा था उसको पृथिवीका रूप जाना ॥ ६ ॥ यदविज्ञा

यद्विज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानाꣳसमास इति तद्विदाञ्चक्रुर्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्त्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यत्, उ ) जो कुछ ( अविज्ञातम् ) इव ) न जाना हुआसा ( अभूत् ) था ( इति ) यह ( एतासाम्, एव ) इन ही ( देवतानाम् ) देवताओंका ( समासः, इति ) समु-

दाय है ऐसा ( तत् ) उसको ( विदाञ्चक्रुः ) जानते हुए (सोम्य) हे प्रियदर्शन ( यथा, नु ) जैसे ( खलु ) प्रसिद्ध ( इमाः, तिस्रः, देवताः ) ये तीन देवता (पुरुषम् ) पुरुषको ( प्राप्य ) प्राप्त होकर ( एकैकाः ) प्रत्येक ( त्रिवृत्, त्रिवृत् ) त्रिगुण त्रिगुण ( भवति ) होता है ( तत् ) उसको ( मे ) मुझसे ( विजानीहि ) जान (इति) ऐसा कहा ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-द्वीपान्तरसे लायाहुआ विलक्षण पक्षी आदि जो कुछ अविज्ञातसा ( मानो कभी देखा ही नहीं ऐसा ) प्रतीत हुआ उसको भी तेज आदि इन तीन देवताओंका समुदायरूप ही जाना । अब हे सोम्य ! जिस प्रकार ये प्रसिद्ध तीनों देवता मनुष्य शरीरको पाकर प्रत्येक त्रिगुण त्रिगुण होजाते हैं, इस विषयको मैं स्पष्ट रूपसे कहता हूं, तू समझले, ऐसा उद्दालकने कहा ॥७॥

षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

**अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माꣳसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( अन्नम् ) अन्न ( अशितम् ) खाया हुआ ( त्रेधा ) तीनप्रकार ( विधीयते ) कियाजाता है ( तस्य ) उसका ( यः, स्थविष्ठः, धातुः ) जो अधिक स्थूल भाग है (तत्, पुरीषम्, भवति ) वह विष्टा होजाता है ( यः, मध्यमः ) जो मध्यम भाग है ( तत्, मांसम् ) वह मांस होजाता है ( यः, अणिष्ठः ) जो अतिसूक्ष्म भाग है ( तत्, मनः, भवति ) वह मन बनजाता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-जो अन्न खाया जाता है वह जठराग्निसे पच्यमान होकर तीन भागोंमें बट जाता है। उसका जो

अति स्थूल भाग होता है वह विष्टा वन जाता है, जो मध्यम ( न अति स्थूल न अति सूक्ष्म ) भाग होता है वह रस आदि क्रमसे परिणामको प्राप्त होकर मांस वन जाता है और उसकाजो अति सूक्ष्म भाग होता है वह सूक्ष्म नाड़ियोंमें प्रवेश करके वाक् आदि करणों की स्थितिको उत्पन्न करता हुआ ऊपरको जाते २ हृदयमें पहुँचकर मन वनजाता है अर्थात् मनको पुष्टि देता है॥

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुर्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः सः प्राणः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आपः ) जल ( पीताः ) पिएहुए ( त्रेधा, विधीयन्ते ) तीन भागमें विभक्त किये जाते हैं (तासाम्) उनका ( यः, स्थविष्ठः, धातुः ) जो अधिक स्थूल भाग होता है ( तत्, मूत्रम् ) वह मूत्र ( यः, मध्यमः) जो मध्यम भाग होता है ( तत्, लोहितम् ) यह रुधिर ( यः, अणिष्ठाः ) जो अति सूक्ष्म भाग होता है (सः,प्राणः भवति) वह प्राण होजाता है ॥२॥

( भावार्थ )-जो जल पिया जाता है वह जठराग्नि से पच्यमान होकर तीन भागमें वट जाता है । उसका जो अति स्थूल भाग होता है वह मूत्र होजाता है जो मध्यम भाग होता है वह रुधिर बनजाता है और जो अति सूक्ष्म भाग होता है वह प्राण बनजाता है ॥ २ ॥

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यम स मज्जा योऽणिष्ठः स वाक् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तेजः ) तेज ( अशितम् ) भक्षण किया हुआ ( त्रेधा, विधीयते ) तीन भाग हो जाता है ( तस्य,

यः, स्थविष्ठः, धातुः, ) उसका जो अतिस्थूल अंश होता है ( तत् अस्थि ) वह हड्डी ( यः, मध्यमः ) जो मध्यम भाग होता है ( सः मज्जा ) वह मज्जा ( यः अणिष्ठः ) जो अति सूक्ष्म भाग होता है ( सः, वाक् ) वह वाणी ( भवति ) होजाता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जो तेल घी आदि तैजस पदार्थ खाया जाता है वह जठराग्नि से पच्यमान होकर तीन भाग में बटजाता है। उसका जो अति स्थूल भाग होता है वह हड्डी बन जाता है, जो मध्यम भाग होता है वह मज्जा कहिये हड्डी की मींग वा हड्डीके भीतर रहने वाली चिकनी वस्तु बनजाता है और जो अतिसूक्ष्म भाग होता है वह वाणी बनजाता है ॥ ३ ॥

अन्नमयꣳहि सोम्य मन आपोमयःप्राणस्तेजोमयी वागिति भूयएव मा भगवान् विज्ञापय त्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( हि ) निश्चय ( मनः ) मन ( अन्नमयम् ) अन्नका कार्य है ( प्राणः ) प्राण ( आपोमयः ) जलका कार्य है ( वाक् ) वाणी ( तेजोमयी ) तेजका कार्य है ( इति ) यह ठीक है ( भूयः, एव ) फिर भी ( भगवान् ) आप ( माम् ) मुझको ( विज्ञापयतु ) समझावें ( इति ) ऐसा कहा ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तथा ) ऐसा ही हो ( इति, ह ) ऐसा स्पष्ट ( उवाच ) बोला ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य ! अन्नका कार्य मन, जलका कार्य प्राण और तेजका कार्य वाणी है। पुत्रने कहा कि-हे पिताजी ! यह सब दृष्टांत देकर मुझे फिर समझाइये। पिताने कहा, कि-हे पुत्र ! बहुत अच्छा ॥ ४ ॥

षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः।

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( मथ्यमानस्य ) मथेजाते हुए ( दध्नः ) दहीका ( यः ) जो ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( सः ) वह ( ऊर्ध्वः ) ऊपर ( समुदीषति ) इकट्ठा होता है ( तत् ) वह ( सर्पिः ) घी ( भवति ) होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य ! मथेजातेहुए दहीका जो सूक्ष्म भाग होता है वह ऊपरको आ इकट्ठा होकर माखनके रूपमें आकर घी होजाता है ॥ १ ॥

एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( खलु ) निःसन्देह ( एवमेव ) इसीप्रकार ( अश्यमानस्य ) खाये जातेहुए ( अन्नस्य ) अन्नका ( यः ) जो ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( सः ) वह ( ऊर्ध्वः ) ऊपर ( समुदीषति ) इकट्ठा होता है ( तत् ) वह ( मनः ) मन ( भवति ) होता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-हे प्रियदर्शन ! इसप्रकार ही निःसन्देह खायेहुए अन्नका जो सूक्ष्मभाव है वह ऊपरको उठता हुआ इकट्ठा होकर मन होजाता है अर्थात् मनके अवयवोंके साथ मिलकर मनको पुष्टि देता है ॥ २ ॥

अपाꣳ सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो भवति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( पीयमानानाम् ) पियेजातेहुए ( अपाम् ) जलोंका ( यः ) जो ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( सः ) वह ( ऊर्ध्वः ) ऊपर ( समुदीषति ) इकट्ठा होता है ( सः ) वह ( प्राणः ) प्राण ( भवति ) होता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—हे सोम्य ! पियेहुए जलका जो सूक्ष्म भाव है वह ऊँचा होता हुआ इकट्ठा होकर ऊपर आ जाता है और प्राण कहलाने लगता है ॥ ३ ॥

**तेजसः सोम्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति ॥ ४ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( अश्यमनस्य ) खायेहुए ( तेजसः ) तेजका ( यः ) जो ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( सः ) वह ( ऊर्ध्वः ) ऊपर ( समुदीषति ) इकट्ठा होता है ( सा ) वह ( वाक् ) वाणी ( भवति ) होती है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-हे प्रियदर्शन ! खायेहुए घी आदि तैजस पदार्थोंका जो सूक्ष्मभाव है वह ऊँचा होता हुआ इकट्ठा होकर ऊपर आजाता है और वाणी कहलाता है ॥ ४ ॥

**अन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ४ ॥**

अन्वय और पदार्थ—( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( हि ) निश्चय ( मनः ) मन ( अन्नमयम् ) अन्नका कार्य है ( प्राणः ) प्राण ( आपोमयः ) जलका कार्य है ( वाक् ) वाणी ( तेजोमयी ) तेजका कार्य है ( इति ) ऐसा है ( भूयः, एव ) फिर भी ( भगवान् ) आप ( माम् ) मुझको ( विज्ञापयतु ) समझावें ( इति ) ऐसा कहा ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तथा ) ऐसा ही होगा ( इति, ह ) ऐसा स्पष्ट ( उवाच ) बोला ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-हे प्रियदर्शन ! मन अन्नका कार्य है, प्राण जलका कार्य है और वाणी तेजका कार्य है। यह मेरा कथन ठीक ही है। अन्नके रससे मनका पोषण

किसप्रकार होता है, यह सब श्वेतकेतुकी समझमें नहीं आया, इसकारण उसने कहा, कि-हे पिताजी ! कोई दृष्टान्त देकर मुझे मनका अन्नमयपना समझाइये ! इस पर उद्दालकने कहा, कि—हे सोम्य ! कहता हूं, सुन ४

षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माऽशीः काममयः पिबाऽऽपोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यत इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( पुरुषः ) पुरुष ( षोड्शकलः ) सोलह कलाओंवाला है, ( पञ्चदश, अहानि ) पन्द्रह दिन ( मा, अशीः ) अन्न न खा ( अपः ) जलको ( कामम् ) यथेष्ट ( पिब ) पी ( प्राणः ) प्राण ( आपोमयः ) जलमय है, ( न, पिबतः ) न पीतेहुए ( विच्छेत्स्यते ) निकलजायगा ( इति ) यह निश्चय है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-खायेहुए अन्नका जो अत्यन्त सूक्ष्मभाग है उससे वृद्धिको प्राप्त हुई मनकी शक्ति सोलह भागोंमें बटजाती है और वह पुरुषकी कलायें कहलाती हैं । हे प्रियदर्शन ! पुरुष सोलह कलाओंवाला है, इस बातको प्रत्यक्ष करना चाहता हो तो पन्द्रह दिन तक भोजन न कर, परन्तु जल यथेच्छ पी, क्योंकि—प्राण जलका कार्य है, अतः यदि तू जल नहीं पियेगा तो तेरा प्राण निकल जायगा ॥ १ ॥

स ह पञ्चदशाऽऽहानि नाशाऽथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सोम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति २

अन्वय और पदार्थ-( सः, ह ) वह ( पञ्चदश, अहानि ) पन्द्रह दिन तक ( न, आश ) न खाता हुआ ( अथ, ह ) इसके अनन्तर ( एनम्, उपससाद ) इनके पास आपहुँचा ( भोः ) हे भगवन् ( किं, ब्रवीमि ) क्या कहूं ( इति ) ऐसा कहा ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( ऋचः ) ऋचायें ( यजूंषि ) यजु ( सामानि ) साम ( इति ) ऐसा कहा ( भोः ) हे भगवन् ( वै ) निश्चय (माम्) मुझको ( न ) नहीं ( प्रतिभान्ति ) प्रतीत होती हैं ( इति ) ऐसा ( सः, ह ) वह ( उवाच ) बोला ॥ २ ॥

( भावार्थ )—मनके अन्नमयपने को प्रत्यक्ष करना चाहते हुऐ श्वेतकेतुने पन्द्रह दिनतक भोजन नहीं किया और सोलहवें दिन पिताके समीप आकर कहा, कि-हे भगवन् !मैं क्या बोलूं ? पिताने कहा, कि—हे सोम्य ! ऋक्, यजु और सामको कहो इस पर पुत्रने कहा, कि-ऋक्, आदि तो मेरे मनमें प्रतीत ही नहीं होते ॥ २ ॥

तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवꣳ सोम्य ते षोड़शानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टा स्यात्तयैतर्हि वेदान्नानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तम्, ह ) उसके प्रति ( उवाच ) बोला ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( यथा ) जैसे ( महतः ) बड़े ( अभ्याहितस्य ) बढ़ेहुए का ( खद्योतमात्रः ) पटबीजने की समान ( एकः ) एक ( अङ्गारः ) अङ्गारा ( परिशिष्टः, स्यात् ) शेष रहा हो ( तेन ) उसके द्वारा ( ततः ) उससे [ ईषत् ] थोड़ेको ( अपि ) भी ( न ) नहीं ( दहेत् ) जलावेगा ( बहु ) बहुतको [ कुतः ] कहाँ से ( एवम् ) उसी प्रकार ( सोम्य ) हे

प्रियदर्शन ( ते ) तेरी ( षोड़शानाम्, कलानाम् ) सोलह कला-ओंमें की ( एका.कला, अतिशिष्टा, स्यात् ) एक कला शेष रही होगी ( तया ) उसके द्वारा ( एतर्हि ) इस समय ( वेदान् ) वेदों को ( न ) नहीं ( अनुभवसि ) अनुभव करता है ( अशान ) भोजन कर ( अथ ) तदनन्तर ( मे ) मेरी बातको ( विज्ञास्यसि ) जानेगा ( इति ) ऐसा कहा ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-उससे पिताने कहा, कि-हे सोम्य ! जिस प्रकार जिसमें बहुतसा काठ जलचुका है इस कारण जो बहुत ही बढ़गया है ऐसा अग्नि जब शान्त होने लगा और उसकी पटबीजनेकी समान एक चिनगारी शेष रह गयी, वह चिनगारी जब जरासे ईंधनको ही नहीं जला सकती तो बहुतसे को कैसे जला सकेगी ? इसी प्रकार हे सोम्य ! तेरी भी सोलह कलाओं में से एक ही कला शेष रहगयी है, इसकारण ही उस क्षीण कला के द्वारा इस समय तुझे पढ़ेहुए वेद भी स्मरण नहीं आते 'अब तू पहले जाकर भोजन कर, तदनन्तर मेरे पास आना तो तू मेरे उपदेशको सुनकर सब तत्त्व जानसकेगा ॥ ३॥

स हाऽऽशाथ हैनमुपससाद तꣳह यत्किञ्च पप्रच्छ सर्वꣳह प्रतिपेदे ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( आश ) भोजन करता हुआ ( अथ ) तदनन्तर ( एनम्, उपससाद, ह ) इनके समीप आया ( तम्, ह ) उसके प्रति ( यत्, किञ्च ) जो कुछ भी ( पप्रच्छ ) पूछता हुआ ( सर्वम्, ह ) सब ही ( प्रतिपेदे ) जानता हुआ ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-पुत्रने पिताकी बात सुन कर भोजन किया और फिर पिताके पास आया, उस समय उस

के पिताने जो कुछ भी पूछा, उस सबका उसने ठीक २ उत्तर देदिया ॥ ४ ॥

तꣳहोवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्रज्वालयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥ ५ ॥

प्राज्वलयेत् इति शंकरः ॥

अन्वय और पदार्थ-( तम् ह ) उसके प्रति ( उवाच ) बोला ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( यथा ) जैसे ( महतः ) बड़े ( अभ्याहितस्य ) वृद्धिको प्राप्त हुएको ( परिशिष्टम् ) बचे हुए ( खद्योतमात्रम् ) पटबीजने की समान ( तम्, एकम्, अङ्गारम् ) उस एक अङ्गारेको ( तृणैः, उपसमाधाय ) तिनुकों से युक्त करके ( प्रज्वालयेत् ) प्रज्वलित करलेय ( तेन ) उसके द्वारा ( ततः, अपि, बहु ) उससेभी अधिक को ( दहेत् ) जलाडाले ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—पिताने कहा-हे सोम्य ! जिस प्रकार बड़े भारी ईंधनसे बढ़कर शान्त होते हुए अग्नि की पटबीजने की समान बची हुई उस एक चिनगारीमें तृणोंका पूला लगाकर प्रज्वलित करलिया जाय तो उसके द्वारा पहिलेसे भी अधिक ईंधनका ढेर जल जायगा ॥ ५ ॥

एवꣳसोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टाऽभूत्साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीत्तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( एवम् ) इसी प्रकार ( ते ) तेरी ( षोडशानाम्, कलानाम् ) सोलह कलाओंमेंसे ( एका, कला ) एक कला ( अतिशिष्टा, अभूत् )

शेष रहगयी थी ( सा, अन्नेन, उपसमाहिता ) वह अन्नसे युक्त होती हुई ( प्राज्वालीत् ) प्रज्वलित होगयी ( तया ) उसके द्वारा ( एतर्हि ) इस समय ( वेदान्, अनुभवसि ) वेदोंका अनुभव कर रहा है ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( हि ) निश्चय ( मनः ) मन ( अन्नमयम् ) अन्नका कार्य है ( प्राणः ) प्राण ( आपोमयः ) जलका कार्य है ( वाक् ) वाणी ( तेजोमयी ) तेजका कार्य है ( इति ) इस प्रकार ( अस्य ) इन उद्दालकके ( तत् ) उस अन्न-मयादिपनेको ( विजज्ञौ ) जानगया ॥ ६ ॥

( भावार्थ )--हे प्रियदर्शन ! इसी प्रकार पन्द्रह दिन पर्यन्त भोजन न करने से तेरी सोलह कलाओंमें की एक कला शेष रहगयी थी, वही अन्नसे वृद्धिको प्राप्त होती हुई प्रज्वलित होगयी, उसके द्वारा ही इस समय तू वेदों को जान रहा है, हे सोम्य ! जिस प्रकार मन अन्न का कार्य सिद्ध होगया इसप्रकारही प्राण जलका कार्य है और वाणी तेजका कार्य है, अपने पिताके इस उपदेश से वह श्वेतकेतु मन आदिके अन्नमयादिपनेको समझगया॥६॥

षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

उद्दालको हाऽऽरुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्व-प्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्व-पिति नाम सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनꣳ स्वपितीत्याचक्षते स्वꣳ ह्यपीतो भवति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आरुणिः ) अरुणका पुत्र ( ह ) प्रसिद्ध ( उद्दालकः ) उद्दालक ( श्वेतकेतुम्, पुत्रम् ) श्वेतकेतु नामवाले पुत्रके प्रति ( इति ) इसप्रकार ( उवाच ) बोला ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( मे ) मुझसे ( स्वप्नान्तम् ) सुषुप्तिके स्वरूपको

( विजानीहि ) जान ( यत्र ) जब ( एतत्पुरुषः ) यह पुरुष (स्वपिति ) सोता है ( नाम ) इस नामवाला होता है ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तदा ) उस समय ( सता, सम्पन्नः, भवति ) परमात्माके साथ एकता को प्राप्त हुआ होजाता है ( स्वम्, अपीतः, भवति ) अपनेको प्राप्त हुआ होता है ( तस्मात् ) तिससे ( एनम् ) इसको ( स्वपिति ) सोता है ( इति ) ऐसा ( आचक्षते ) कहते हैं ( हि ) क्योंकि ( स्वम्, अपीतः, भवति ) अपने स्वरूपको प्राप्त हुआ होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-अब सुषुप्तिमें मनका लय होने पर जीव को जो सत्को प्राप्ति होती है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं, कि-दर्पणमें प्रतिबिम्बरूपसे पुरुषके अनुप्रवेश की समान, मनमें जीवरूपसे पुरुषका अनुप्रवेश होता है उस मनका लय होजाने पर वह जीव अपने ब्रह्मरूपको ही प्राप्त होता है, इस बातका उपदेश करनेकी इच्छासे अरुणके पुत्र प्रसिद्ध उद्दालक मुनिने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा, कि-हे सोम्य ! मेरे कथनको सुनकर सुषुप्तिके स्वरूपको अच्छे प्रकारसे जानले, हे प्रियदर्शन ! जिस समय पुरुष सोता है और 'स्वपिति' ऐसा कहलाता है उस समय वह सत्स्वरूप परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त होजाता है। जीवभावको त्यागकर अपने सत्रूप को पाजाता है, इसकारण ही इसको 'स्वपिति' सोता है ऐसा लौकिक पुरुष कहते हैं, उस समय यह आत्मस्वरूप को ही प्राप्त होता है ॥ १ ॥

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्राऽऽयतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं

पतित्वान्यत्राऽऽयतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धनं हि सोम्य मन इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ--( यथा ) जैसे ( सः ) वह (शकुनिः) पक्षी ( सूत्रेण, प्रबद्धः ) डोरेसे बँधाहुआ ( दिशम्, दिशम्, पतित्वा ) प्रत्येक दिशामें को उड़कर ( अन्यत्र ) और ठिकाने ( आयतनम् ) आश्रयको ( अलब्ध्वा ) न पाकर ( बन्धनम्,एव,-उपश्रयते ) बन्धन का ही आश्रय लेता है ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( खलु ) निःसन्देह ( एवम्, एव ) इस प्रकार ही ( तत् ) वह प्रसिद्ध ( मनः ) मन ( दिशम्, दिशम्, पतित्वा) प्रत्येक दिशामेंको जाकर ( अन्यत्र ) और स्थानमें ( आयतनम्, अलब्ध्वा ) आश्रयको न पाकर ( प्राणम्, एव ) प्राणको ही ( उपश्रयते ) आश्रयरूपसे प्राप्त होता है ( हि ) क्योंकि (सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( मनः ) मन (प्राणबन्धनम् ) प्राणरूप बन्धनवाला है ( इति ) ऐसा जान ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जिसप्रकार बाज पक्षी पक्षिघातक शिकारीके हाथमेंके डोरेमें बँधाहुआ ही उससे छुटनेके लिये इधर उधर सब दिशाओंमेंको उड़ता है और उस बन्धन से अन्य ठिकाने आश्रय न पाकर उस बन्धनके आश्रय पर ही फिर आ बैठता है, इसीप्रकार हे सोम्य ! प्रसिद्ध मनरूप उपाधिवाला जीव अविद्या, काम और कर्मके कारण जाग्रत्स्वप्नमें दुःखादिरूप प्रत्येक दिशाका अनुभव करके ब्रह्मके सिवाय अन्य किसी स्थानमें विश्राम न पाकर फिर ब्रह्मका ही आश्रय लेता है। हे सोम्य ! ब्रह्मरूप बन्धनवाला ही मन (जीव ) है ॥ २ ॥

अशनापिपासे मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाऽप एव तदशितं

नयन्ते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्ग मुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( अशनापिपासे ) भूख प्यासको ( मे ) मुझसे ( विजानीहि ) भलेप्रकार जान ( इति ) यह कहा ( यत्र ) जब ( एतत्पुरुषः ) यह पुरुष (अशिशिषति नाम ) खाना चाहता है ( तत्, अशितम् ) उस खायेहुए को ( आपः, एव ) जल ही ( नयन्ते ) लेजाते हैं ( तत् ) सो (यथा ) जैसे(गोनायः)गौओंको लेजानेवाला ग्वाला (अश्वनायः) घोड़ों को लेजानेवाला चाबुकसवार ( पुरुषनायः ) मनुष्योंको लेजानेवाला सेनापति ( इति ) ऐसा कहलाता है (एवम् ) इसी प्रकार (तत् ) उस (अपः ) जलको (अशनायः) अन्नको लेजाने वाला है ( इति ) ऐसा ( आचक्षते ) कहते हैं ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तत्र ) तहाँ ( एतत् ) इस (उत्पतितम्) उत्पन्न हुए ( शुङ्गम ) कार्यको ( विजानीहि ) जान ( एतत् ) यह ( अमूलम् ) विनाकारणका ( न ) नहीं ( भविष्यति ) होगा ( इति ) इसकारणसे ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य ! मैं कहता हूं उसके अनुसार भूख और प्यासके स्वरूपको जान ले। खाने और पीनेकी इच्छा पुरुषके अधीन नहीं है। जब जीव भोजन करना चाहता है उस समय जलाभिमानिनी देवता ही उसकी भोजनकी इच्छाको उत्पन्न करती हुई भोजन कराकर खायेहुए अन्नको तेजके संयोगसे रसादि रूपमें परिणत करदेती है। जिसप्रकार गोनाय शब्दसे गौओंको लेजाने वाला ग्वाला, अश्वनाय शब्दसे घोड़ोंका नेता और पुरुष-

नाय शब्दसे मनुष्योंका नेता समझा जाता है, इसीप्रकार अशनाय शब्दसे भोजनका परिचालक जल समझा जाता है। यह शरीर अंकुररूपसे उत्पन्न हुआ है, जब यह कार्यरूप है तो यह किसी कारणके विना नहीं होसकता ॥ ३ ॥

तस्य क्व मूलꣳस्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्य ) उसकी ( मूलम् ) मूल ( अन्नात्, अन्यत्र ) अन्नसे अन्य स्थानमें ( क्व ) कहाँ ( स्यात् ) हो ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( खलु ) निश्चय ( एवमेव ) इसी प्रकार ( अन्नेन, शुङ्गेन ) अन्न रूप कार्यसे ( अपोमूलम् ) जल रूप मूलको ( अन्विच्छ ) जान ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( अद्भिः, शुङ्गेन ) जलरूप कार्यके द्वारा ( तेजो मूलम् ) तेज रूप मूलको ( अन्विच्छ ) जान ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन तेजसा, शुङ्गेन ) तेजरूप कार्यके द्वारा ( सन्मूलम् ) सत्रूप मूलको ( अन्विच्छ ) जान ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( इमाः, सर्वाः,-प्रजाः ) ये सब प्रजायें ( सन्मूलाः ) सत्रूप मूल वाली ( सदायतनाः ) सत्रूप आश्रयवाली ( सत्प्रतिष्ठाः ) सत्रूप परिशेषवाली [ सन्ति ] हैं ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-इस शरीरका मूल अन्नके सिवाय और किस स्थानमें हो सकता है? अन्नमें ही हो सकता है, क्योंकि-पुरुषके खाये हुए अन्नका वीर्य बनता है, और स्त्रीके खाये हुए अन्नका परिणाम रज होता है, उस वीर्य

और रजसे ही शरीरकी उत्पत्ति होती है, हे सोम्य ! इसप्रकार निःसन्देह अन्नरूप कार्य से जलरूप मूलको जान, जलरूप कार्य से तेजरूप मूल को जान और तेज रूप कार्य से एक अद्वितीय सत्‌रूप मूल को जान। हे सोम्य ! यह सब प्रजा सत्‌रूपवाली है, स्थितिकाल में सत्‌रूप आश्रयवाली है और अन्तमें सत्‌रूपमें लय हो जाने वाली है ॥ ४ ॥

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनयोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣳसोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत्र ) जब ( एतत्पुरुषः ) यह पुरुष ( पिपासति, नाम ) जल पीना चाहता है ऐसा कहलाता है ( तत् ) उस समय ( तेजः, एव ) तेज ही ( पीतम् ) पिये हुएको ( नयते ) लेजाता है ( तत् ) सो ( यथा ) जैसे ( गोनायः ) गौओंको ले जाने वाला गोनाय ( अश्वनायः ) घोड़ोंको लेजाने वाला अश्वनाय ( पुरुषनायः ) पुरुषोंको लेजाने वाला पुरुषनाय ( इति, एवम् ) इस प्रकार ही ( तत् तेजः ) उस तेजको ( उदन्य, इति ) जलको लेजाने वाला उदन्य इस नामसे ( आचष्टे ) कहता है ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तत्र ) तहाँ ( उत्पतितम् ) उत्पन्न हुए ( एतत्, एव ) इसकोही ( शुङ्गम्, विजानीहि ) कार्य जान ( इदम् ) यह ( अमूलम् ) अमूल ( न ) नहीं ( भविष्यति ) होगा ( इति ) ऐसा जान ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—तदनन्तर जलरूप कार्यके द्वारा सत्‌रूप मूलका निश्चय कर। जिस समय पुरुष जलको पीना

चाहता है, उस समय तेज ही पिये हुए जल आदिको सुखाता हुआ रुधिर और प्राणरूपमें पहुँचा देता है इस में यह दृष्टान्त है कि-जैसे गौओंको लेजानेवाला गोनाथ घोड़ोंको लेजानेवाला अश्वनाथ और पुरुषोंको लेजानेवाला पुरुषनाथ कहलाता है, ऐसे ही पियेहुए जल आदिको रुधिर प्राण आदिरूपमें लेजानेके कारण लोग तेजको उदन्य (जलको लेजानेवाला) नामसे कहते हैं। हे सोम्य! तहां जलसे उत्पन्न हुए इस शरीररूपको कार्य ही जान यह कार्य किसी कारणसे ही तो उत्पन्न हुआ होगा ५

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः सोम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ, तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः। यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्य ) उसकी ( मूलम् ) मूल ( अद्भ्यः, अन्यत्र ) जलसे अन्य स्थानमें ( क्व ) कहां ( स्यात् ) होगी ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( अद्भिः शुङ्गेन ) जलरूप कार्य से ( तेजोमूलम् ) तेजरूप मूलको ( अन्विच्छ ) जान ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तेजसा, शुङ्गेन ) तेजरूपकार्यसे ( सन्मूलम्, अन्विच्छ ) सत्रूपमूलको जान ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( इमाः सर्वाः, प्रजाः ) ये सब प्रजायें ( सन्मूलाः, सदायतनाः, सत्प्रतिष्ठाः ) सत् है मूल जिनका, सत् है आश्रय जिनका और सत् है प्रति-

शेष जिनका ऐसी [ सन्ति ] हैं ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( खलु ) निश्चय ( यथा, नु ) जैसे ( इमाः, तिस्रः, देवताः ) ये तीन देवता ( पुरुषम्, प्राप्य ) पुरुषको प्राप्त होकर ( एकैकाः ) एक २ (त्रिवृत्,त्रिवृत् ) त्रिगुण २ ( भवति ) होती है ( तत् ) सो ( पुरस्तात्, एव ) पहले ही ( उक्तम् ) कहदिया है (सोम्य) हे प्रियदर्शन ( प्रयतः ) मरनेवाले ( अस्य ) इस ( पुरुषस्य ) पुरुषकी ( वाक् ) वाणी ( मनसि, सम्पद्यते ) मनमें लीन होजाती है ( मनः ) मन ( प्राणे ) प्राणमें ( प्राणः ) प्राण ( तेजसि ) तेज में (तेजः) तेज ( परस्याम्, देवतायाम् ) पर देवतामें [सम्पद्यते ] लीन होजाता है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—इस शरीरकी मूल जलसे अन्य किस स्थानमें होगी ?, जल ही उसका मूल है, हे सोम्य ! जल रूप कार्यसे तेजरूप मूलको जान, तेजरूपकार्यसे सत्रूप मूलको जान हे सोम्य ! इन सब प्रजाओंकी मूल सत् है ये सब स्थितिकालमें सत्के आश्रयसे रहती हैं और अंत में सत्रूप ही शेष रह जाती हैं। हे सोम्य ! ये प्रसिद्ध अन्न आदि तीन देवता पुरुष ( शरीर ) को पाकर एक एक त्रिगुण २ होजाते हैं वह खाया हुआ अन्न तीन भागोंमें बँटजाता है, इत्यादि प्रक्रिया पीछे कही जाचुकी है। हे सोम्य ! यह पुरुष जब मरनेको होता है तो इस की वाणी मनमें लीन होजाती है,इसकारण ही उस समय मनमें अनेकों विचार होने पर भी वह बोल नहीं सकता है,फिर मन सुषुप्तिकालकी समान प्राणमें लीन होजाता है तब पुरुष मूर्छित होजाता है और तदन्तर प्राण क्रम२ से संकुचित होकर तेजमें लीन होजाता है, उस समय प्राणका स्थूल व्यापार तो बन्द होजाता है, परन्तु शरीर में उष्णता रहती है,और अन्तमें वह तेज परम देवतामें

लीन होजाता है, तहाँसे ज्ञानीका फिर उत्थान नहीं होता है और अज्ञानी सुषुप्तिमेंसे जागेहुएकी समान अन्य शरीरमें प्रवेश करता है ॥ ६ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( एषः ) यह ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( ऐतदात्म्यम् ) ऐसे आत्मावाला है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( तत् ) वह ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतकेतु ( तत् ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) यह तत्त्व ( भूयः, एव ) फिर भी ( भगवान् ) आप ( माम् ) मुझको ( विज्ञापयतु ) समझावें ( इति ) ऐसा कहने पर (सोम्य ) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) कहा ॥ ७ ॥

( भावार्थ )-वह जो यह सूक्ष्मभाव जगत् का मूल है,वही इस सब जगत्का आत्मा है अर्थात् यह निखिल जगत् उस सूक्ष्मतम परम-कारणमय है, वही वास्तविक सत्य है, इस कारण वही जगत्का आत्मा है। हे श्वेतकेतु ! वह सत् तू ही है,इस प्रकार पिताने कहा-सुषुप्तिमें प्राणी सत्रूपको प्राप्त होता है, यह बात आप कहते हैं, परन्तु 'हम सत्को प्राप्त हुए थे' इस बातको वे जागने पर नहीं जानते, इस कारण उसमें मुझे सन्देह है, अतः आप फिर दृष्टान्त देकर समझाइये, ऐसा श्वेतकेतुने कहा, तब उसके पिताने कहा, कि—अच्छा कहता हूं, सुन ॥ ७ ॥

षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः

ड+ लाये हुए को ॥



यथा सोम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाꣳ रसान् समवहारमेकताꣳ रसं गमयन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( यथा ) जैसे ( मधुकृतः ) मुहालकी मक्खियें ( मधु ) शहदको ( निस्तिष्ठन्ति ) उत्पन्न करती हैं ( नानात्ययानाम् ) अनेकों प्रकारके फलोंवाले ( वृक्षाणाम् ) वृक्षोंके ( रसान ) रसोंको (समवहारम्) इकट्ठा करती हुई ( एकताम् ) एकीभाव रूप ( रसम् ) रसको ( गमयन्ति ) प्राप्त कर देती हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य ! जिस प्रकार मधुमक्षिकायें शहद को उत्पन्न करती हैं, अनेकों फलोंवाले वृक्षों के रसों को इकट्ठा करके उन रसोंका एकीभावरूप शहद नामका रस बना देती हैं ॥ १ ॥

ते यथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याऽहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पाद्यामह इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यथा ) जैसे ( ते ) वे ( तत्र ) तहाँ ( अहम् ) मैं ( अमुष्य ) अमुक ( वृक्षस्य ) वृक्षका ( रसः ) रस (अस्मि) हूं (अहम्) मैं (अमुष्य ) अमुक (वृक्षस्य) वृक्षका (रसः) रस (अस्मि) हूं ( इति ) ऐसे ( विवेकम् ) ज्ञान को ( न ) नहीं ( लभन्ते ) पाते हैं ( एवमेव ) इसी प्रकार ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( खलु ) निःसन्देह ( इमाः, सर्वाः, प्रजाः ) ये सब प्रजायें ( सति, सम्पद्य ) सत्‌के विषैं प्राप्त होकर ( सति, सम्पद्यामहे ) सत्‌के विषैं प्राप्त होगये हैं ( इति ) ऐसा ( न ) नहीं ( विदुः ) जानते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जिस प्रकार मधुरूपसे एकता को प्राप्त हुए वे रस तहाँ, 'मैं अमुक वृक्षका रस हूं, मैं अमुक वृक्ष का रस हूं। इस बातको नहीं जानते हैं इसी प्रकार हे सोम्य! प्रसिद्ध सब जीव सुषुप्तिकाल में मरण में और प्रलयमें सत्को प्राप्त होकर-'मैं अमुक जीव हूं, मैं अमुक जीव हूं' इस भेदका अनुभव नहीं करसकते हैं।

त इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ते ) वे ( इह ) यहाँ ( व्याघ्रः, वा, सिंहः, वा ) व्याघ्र वा सिंह ( वृकः, वा, वराहः, वा ) भेड़िया वा शूकर ( कीटः, वा, पतङ्गः, वा ) कीड़ा वा पतङ्ग ( दंशः, वा, मशकः, वा ) डाँस वा मच्छर ( यत्, यत् ) जो जो ( भवन्ति ) होते हैं ( तत् ) वही ( आ, भवन्ति ) आकर होजाते हैं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-वे प्राणी इस लोकमें पहले व्याघ्र वा सिंह, भेडिया वा शूकर, कीट वा पतङ्ग, डांस वा मच्छर जो २ भी होते हैं, वही सत्से फिर आकर होते हैं, उन अज्ञानी जीवोंकी पूर्व भावित वासनाका नाश नहीं होता है ॥ ३ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( एषः ) यह ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( ऐतदात्म्यम् ) इस ही आत्मावाला

है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब जगत् ( तत् ) वह ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतकेतु ( तत् ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) इसको ( भूयः एव ) फिर ( भगवान् ) आप ( माम् ) मुझको ( विज्ञापयतु ) समझाइये ( इति ) ऐसा कहने पर ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तथा ) ऐसा ही होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) कहा ॥४॥

( भावार्थ )–जिसको पाकर अज्ञानी फिर लौट आते हैं और ज्ञानी लौट कर नहीं आते वह जो सूक्ष्मभाव है वही इस सब जगत्का आत्मा है, वह सत्य है और व्यापक है, हे श्वेतकेतु ! वह सत् तूही है, इस प्रकार पिताने कहा। अपने घरमें सोयाहुआ पुरुष उठकर दूसरे नगरमें गया होय तो वह 'मैं अपने घरसे आया हूं, ऐसा जानता है, इसीप्रकार मैं सत्मेंसे आया हूं, ऐसा ज्ञान सुषुप्ति आदिसे उठेहुए प्राणियोंको क्यों नहीं होता? यह बात मुझे आप दृष्टान्त देकर समझाइये, ऐसा श्वेतकेतुने कहा, तब उसके पिताने कहा, कि- बहुत अच्छा सुन ॥ ४ ॥

षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( इमाः ) ये ( प्राच्यः ) पूर्वदिशाकी ( नद्यः ) नदियें ( पुरस्तात् ) पूर्वकी ओरको ( स्पन्दन्ते ) बहती हैं ( प्रतीच्यः ) पश्चिम दिशाकी ( पश्चात् ) पश्चिमकी ओरको [ स्यन्दन्ते ] बहती हैं ( ताः ) वह

( समुद्रात् ) समुद्रसे ( समुद्रम्, एव ) समुद्रको ही ( अपियन्ति ) प्राप्त होती हैं ( सः ) वह ( समुद्रः, एव ) समुद्र ही ( भवति ) होता है ( ताः ) वह ( यथा ) जैसे ( तत्र ) तहाँ ( इयम् अहम्, अस्मि ) यह मैं हूं ( इयम्, अहम्, अस्मि ) यह मैं हूं ( इति ) ऐसा ( न ) नहीं ( विदुः ) जानती हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य! ये पूर्वदिशाकी गङ्गा आदि नदियें पूर्वको ओरको बहा चलीजाती हैं और पश्चिम दिशाकी नदियें पश्चिमकी ओर को बही चली जाती हैं तथा वह सूर्यके द्वारा समुद्रमेंसे खिंच कर वर्षारूप होती हुई गङ्गा नर्मदा आदि नदियोंके नामसे कहलाने लगती हैं और फिर समुद्रमें जा मिलती हैं तथा समुद्ररूप ही होजाती हैं, उस समय समुद्रमें मिलकर मैं अमुक नदी हूं, मैं अमुक नदी हूं, इस बातको नहीं जानती हैं ॥ १ ॥

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इति, त इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( एवमेव ) इस ही प्रकार ( खलु ) प्रसिद्ध ( इमाः ) ये ( सर्वाः, प्रजाः ) सब प्रजायें ( सतः ) सत्से ( आगम्य ) आकर ( सतः, आगच्छामहे ) सत्से आती हैं ( इति, न, विदुः ) ऐसा नहीं जानती हैं ( ते ) वह ( इह ) यहां ( व्याघ्रः वा, सिंहः, वा ) व्याघ्र वा सिंह ( वृकः, वा, वराहः, वा ) भेडिया वा शूकर ( कीटः, वा, पतङ्गः, वा ) कीडा वा पतङ्गा ( दंशः, वा, मशकः, वा ) डाँस वा मच्छर ( यत्, यत् ) जो जो ( भवन्ति ) होते हैं ( तत् ) सो ( आ, भवन्ति ) आकर होजाते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य ! इसप्रकार ही ये सब प्रसिद्ध प्रजायें सत्स्वरूप परमात्मासे आकर भी हम सत्स्वरूप परमात्मासे आयी हैं, ऐसा नहीं जानती हैं। लौटते समय व्याघ्र सिंह, भेडिया, शूकर, कीट, पतङ्ग, डाँस, मच्छर आदि जो २ भी पहले थे फिर आकर भी वही होजाते हैं २

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( एषः ) यह ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( ऐतदात्म्यम् ) इस ही आत्मावाला है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( तत् ) सो ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतकेतु ( तत् ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) ऐसा पिताने कहा ( भूयः एव ) फिर भी ( भगवान् ) आप ( माम् ) मुझको ( विज्ञापयतु ) समझाइये ( इति ) ऐसा पुत्रने कहा ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तथा ) ऐसा ही होगा ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) कहा ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-यह सूक्ष्मभाव है, यही सब जगत्का आत्मा है, यही सत्य है, यही प्रसिद्ध आत्मपदार्थ है। हे श्वेतकेतु ! वह सत् आत्मा तू ही है। यह बात पिता ने कही, तब श्वेतकेतुने कहा, कि-जिसप्रकार जलमेंसे उठीहुई तरङ्गें जलभावको प्राप्त होते ही विनष्ट होजाती हैं, इसीप्रकार जीव सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें कारणभावको पाकर विनष्ट क्यों नहीं होते हैं ? यह बात आप दृष्टान्त देकर मुझे फिर समझाइये, इस पर पिताने कहा कि-हे सोम्य ! अच्छा कहता हूँ, सुन ॥ ३ ॥

षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्या
ज्जीवन् स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो
ऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत्स एष जीवेनात्मना-
ऽनुभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( अस्य ) इस ( महतः, वृक्षस्य ) बड़े वृक्षकी ( मूले ) जड़में ( यः ) जो ( अभ्याहन्यात् ) घाव करे ( जीवन् ) जीताहुआ ( स्रवेत् ) टपकेगा ( यः ) जो ( मध्ये ) बीचमें ( अभ्याहन्यात् ) घाव करे ( जीवन् ) जीताहुआ ( स्रवेत् ) टपकेगा ( यः ) जो ( अग्रे) अग्रभागमें ( अभ्याहन्यात् ) घाव करे ( जीवन् ) जीताहुआ ( स्रवेत् ) टपकेगा ( सः ) वह ( एषः ) यह (आत्मना ) आत्मा रूप ( जीवेन ) जीवके द्वारा ( अनुभूतः ) व्याप्त हुआ ( पेपीयमानः ) पीता हुआ ( मोदमानः ) हर्ष मनाता हुआ ( तिष्ठति ) स्थित होता है ॥ १ ॥

(भावार्थ )-हे सोम्य ! इस बड़ेभारी वृक्षकी जड़में जो कोई कुहाड़े आदिसे घाव करे तो यह एक वारके घावसे सूखता नहीं है, किन्तु जीवित रहता है और इसका रस टपकता है, इसीप्रकार जो कोई इसके मध्यमें या इसके अग्रभागमें घाव करे तो यह सूखता नहीं, किन्तु इसका रस टपका करता है, क्योंकि-यह वृक्ष जीवरूप आत्मा से व्याप्त और मूलके द्वारा भलेप्रकारसे जलको पीता हुआ तथा भूमिके रसोंको ग्रहण करता हुआ सुखके साथ स्थित रहता है ॥ १ ॥

अस्य यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति
द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ

सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यत्येवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यत् ) जब (अस्य) इसकी (एकाम्) एक ( शाखाम् ) शाखाको ( जीवः ) जीव ( जहाति ) त्यागता है ( अथ ) इसके अनन्तर ( सा ) वह ( शुष्यति ) सूखजाती है ( द्वितीयाम् ) दूसरीको ( जहाति ) त्यागता है ( अथ ) अनन्तर ( सा ) वह ( शुष्यति ) सूखजाती है ( तृतीयाम् ) तीसरी को ( जहाति ) त्यागता है ( अथ ) अनन्तर ( सा ) वह ( शुष्यति ) सूखजाती है ( सर्वम् ) सबको ( जहाति ) त्यागता है ( सर्वः ) सब ( शुष्यति ) सूखजाता है ( सोम्य ) हे प्रिय-दर्शन ( एवमेव ) इसप्रकार ही ( खलु ) निश्चित ( विद्धि ) जान ( इति ) ऐसा ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) बोला ॥ २ ॥

( भावार्थ )-कर्मवश जब इस वृक्षकी रोगग्रस्त एक शाखाको जीव त्यागदेता है अर्थात् उसमें व्याप्त अपने अंशका संकोच करलेता है तब वह शाखा सूखजाती है दूसरीको त्यागदेता है तब वह सूखजाती है, तीसरीको त्यागदेता है तब वह सूखजाती है और जब यह जीव सब वृक्षको त्यागदेता है तो सब ही वृक्ष सूखजाता है। हे सोम्य ! इसीप्रकार सर्वत्र जान ॥ २ ॥

जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ३

अन्वय और पदार्थ-( जीवापेतम् ) जीवसे शून्य ( वाव ) प्रसिद्ध ( इदम् ) यह ( किल ) निश्चय ( म्रियते ) मरजाता है

( जीवः ) जीव ( न ) नहीं ( म्रियते ) मरता है ( इति ) इस प्रकार ( सः ) वह ( यः ) जो ( एषः ) यह ( अणिमा ) सूक्ष्म भाव है ( ऐतदात्म्यम् ) इस ही आत्मावाला है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( तत् ) सो ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतकेतु ! ( तत् ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) ऐसा कहा ( भगवान् ) आप ( मा ) मुझको ( भूयः, एव ) फिर भी ( विज्ञापयतु ) समझाइये ( इति ) यह पुत्रने कहा ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ! ( तथा ) ऐसा ही होगा ( इति ) यह बात ( ह ) स्पष्ट ( उवाच ) कही ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—यह शरीर जीवरहित होने पर मर जाता है, जीव नहीं मरता है,यह बात कर्मके सफलपने आदिसे प्रतीत होती है,यह जो सूक्ष्मभाव है,सब जगत् का आत्मा यही है, यही सत्य है, यही आत्मपदार्थ है। हे श्वेतकेतु ! वह सत् तू ही है, ऐसा पिताने कहा। अत्यन्त सूक्ष्म सद्रूप और नामरूप रहित ब्रह्मसे यह अत्यन्त स्थूल और पृथिवी आदि नामरूपवाला जगत् किसप्रकार उत्पन्न होता है ? इस बातको दृष्टान्त देकर समझाइये ऐसा पुत्रके प्रश्न करने पर पिताने कहा, कि हे पुत्र सुन ॥ ३ ॥

षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्धीति भिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति न किञ्चन भगव इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अतः ) इसमेंसे ( न्यग्रोधाफलम् ) वटके फलको ( आहर ) ला ( इति ) ऐसा पिताने कहा (भगवः) हे भगवन् ( इदम् ) यह है ( इति ) ऐसा कहने पर ( भिन्धि ) तोड़ ( इति ) ऐसा कहा ( भगवः ) हे भगवन् ( भिन्नम् ) तोड़ दिया ( इति ) ऐसा कहने पर ( अत्र ) इसमें ( किम् ) क्या ( पश्यसि ) देखता है ( इति ) ऐसा कहा ( भगवः ) हे भगवन् ( अण्व्यः, इव ) अतिसूक्ष्मसे ( इमाः ) ये ( धानाः ) बीज हैं ( इति ) ऐसा कहने पर ( अङ्ग ) हे पुत्र ( आसाम् ) इनमेंसे ( एकाम् ) एकको ( भिन्धि ) तोड़ (इति) ऐसा कहा (भगवः) हे भगवन् ( भिन्ना ) एकको तोड़दिया ( इति ) ऐसा कहने पर ( अत्र ) इसमें ( किम् ) क्या ( पश्यसि ) देखता है ( इति ) ऐसा कहा ( भगवः ) हे भगवन् ( किञ्चन ) कुछ भी ( न ) नहीं ( इति ) ऐसा पुत्रने कहा ॥ १ ॥

(भावार्थ)-हे पुत्र ! यदि इसको प्रत्यक्ष करना चाहता हो तो इस बड़के वृक्षमेंसे एक फलको तोड़ला,पुत्रने कहा कि—हे भगवन् ! लीजिये यह तोड़लाया, पिताने कहा, कि-बेटा ! इसको भी तोड़डाल, पुत्रने कहा-लीजिये इसको भी तोड़डाला, पिताने कहा-इसमें क्या देखरहा है ?, पुत्रने कहा कि-इसमें बहुत छोटे २ बीज दीखरहे हैं, पिताने कहा, कि—अब इन बीजोंमेंके एक बीजको तोड़ पुत्रने कहा कि—लीजिये भगवन् ! एकबीजको भी तोड़डाला, पिताने कहा—इसमें क्या देखरहा है ?, पुत्र कहा कि-हे भगवन् ! इसमें तो कुछ नहीं दीखता ॥१॥

तꣳ होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयस एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धस्व सोम्येति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तम् ) उसके प्रति ( उवाच, ह ) बोला ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( वै ) निश्चय ) ( यम् ) जिस ( एतम् ) इस ( अणिमानम् ) सूक्ष्मभावको ( न ) नहीं ( निभालयसे ) देखता है ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( एतस्य ) इसही ( अणिम्नः, वै ) सूक्ष्मभावका ही ( एषः ) यह ( महान्न्यग्रोधः ) बड़ा वटका वृक्ष ( तिष्ठति ) स्थित है ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( इति ) ऐसा ( श्रद्धत्स्व ) श्रद्धा कर ( इति ) ऐसा कहा ॥२॥

( भावार्थ )—उससे पिताने कहा, कि—हे सोम्य ! तू वटके बीजके जिस सूक्ष्मभावको देख नहीं सकता है, हे सोम्य ! यह बड़ा भारी वटका वृक्ष इस सूक्ष्मभावका ही कार्यरूप बाहर स्थित दीखरहा है, हे पुत्र ! इस बात का तू श्रद्धाके साथ निश्चय रख, क्योंकि—बाहरी विषय में जिसका मन आसक्त होता है उस पुरुषको परमश्रद्धा विना किये अत्यन्त सूक्ष्म विषयका निश्चय नहीं होसकता ॥ २ ॥

**स य एषोणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( एषः ) यह ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( ऐतदात्म्यम् ) इस आत्मावाला है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( तत् ) वह ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतकेतु ! ( तत ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) ऐसा कहा ( भगवान् ) आप ( भूयः, एव ) फिर भी ( मा ) मुझको ( विज्ञापयतु ) समझाइये ( इति ) ऐसा कहने पर ( सोम्य )

हे प्रियदर्शन ( तथा ) ऐसा ही होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) स्पष्ट कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )-वही सूक्ष्मभाव इस सब जगत्का आत्मा है, वह सत्य है और वही आत्मपदार्थ है, हे श्वेतकेतु! वह सत् तू ही है, इसप्रकार पिताके कहने पर श्वेतकेतु ने कहा, कि-हे भगवन्! यदि वह सत् जगत्का मूल है तो दीखता क्यों नहीं? यह बात मुझे दृष्टान्त देकर समझाइये। पिताने कहा, कि—हे सोम्य! कहता हूं, सुन ॥ ३ ॥

षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार तँ होवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( एतत् ) इस ( लवणम् ) लवणको ( उदके ) जलमें ( अवधाय ) डालकर (अथ) अनन्तर (प्रातः) प्रातःकालके समय ( मा, उपसीदथाः ) मेरे पास आना ( इति) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( तथा ) तैसा ही ( चकार, ह ) करता हुआ ( तम् ) उसके प्रति ( उवाच, ह ) कहता हुआ ( अङ्ग ) हे पुत्र ( यत्, लवणम् ) जिस लवणको ( दोषा ) रातमें ( उदके ) जलमें ( अवाधाः ) डाला था ( तत् ) उसको ( आहर ) ला ( इति ) ऐसा कहा ( तत् ) उसको ( अवमृश्य) खोजकर ( न ) नहीं ( विवेद, ह ) पाता हुआ ॥ १ ॥

( भावार्थ )-पिताने कहा, कि—हे श्वेतकेतु! इस लवणकी डलीको घड़ेमेंके जलमें डालदे और कल प्रातःकालके समय मेरे पास आना। यह सुनकर उसने ऐसा

ही किया, तब दूसरे दिन प्रातःकालके समय उससे पिताने कहा, कि—हेबेटा! जिस लवणको तूने कल रात पानीमें डाला था उसको ला, यह सुनकर वह लवणके टुकड़ेको पानीमें खोजनेलगा, परन्तु जलमें मिल जानेके कारण उसको कुछ पता न मिला ॥ १ ॥

यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्त्तते तꣳ होवाचात्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अङ्ग ) हे पुत्र ( यथा ) जैसे ( विलीनम्, एव ) विलय पाये हुएको ही ( अस्य, अन्तात्, आचाम ) इसके ऊपरसे आचमन कर ( इति ) ऐसा करने पर ( कथम् ) कैसा है ( इति ) ऐसा पिताने पूछा ( लवणम् ) नोनखरा है ( इति ) ऐसा पुत्रने कहा ( मध्यात्, आचाम ) मध्यमेंसे आचमन कर ( इति ) ऐसा करने पर ( कथम् ) कैसा है ( इति ) ऐसा पिताने कहा ( लवणम् ) नोनखरा है ( इति ) ऐसा पुत्रने कहा ( अन्तात्, आचाम ) नीचेसे लेकर आचमान कर ( इति ) ऐसा करने पर ( कथम् ) कैसा है ( इति ) ऐसा पिताने कहा ( लवणम् ) नोनखरा है ( इति ) ऐसा पुत्रने कहा ( एतत् ) इसको ( अभिप्रास्य ) त्यागकर ( अथ ) अनन्तर ( मा, उपसीदथाः ) मेरे समीप आ ( इति ) ऐसा कहने पर ( तत् ) उसको ( तथा ) तैसा ही ( चकार, ह ) करता हुआ ( तत् ) वह (शश्वत्) नित्य ( संवर्त्तते ) विद्यमान है ( तम् ) उसके प्रति ( उवाच, ह ) कहा ( सोम्य ) हि प्रियदर्शन ( अत्र, वाव ) इस शरीरमें भी

( किल ) निश्चय ( सत् ) सत्को ( न ) नहीं ( निभालयसे ) जानता है ( अत्र, एव ) यहाँ ही ( किल ) निश्चय जानेगा ( इति ) ऐसा पिताने कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )—पिताने कहा, कि-हे बेटा ! यद्यपि इस जलमें घुलकर विलीन हुए लवणको तू नेत्रसे और स्पर्श से नहीं जानता है तथापि दूसरे उपायसे उसको जान सकता है। तू इस जलमेंसे थोड़ासा ऊपरसे लेकर आचमन कर, यह सुनकर पुत्रने आचमन किया तब पिताने पूछा कि—इसका स्वाद कैसा है ? पुत्रने उत्तर दिया, कि-नोनखरा है। पिताने कहा, कि अच्छा अब थोड़ासा जल मध्यमेंसे लेकर आचमन कर, यह सुनकर पुत्रने मध्यमेंसे आचमन कर लिया, पिताने कहा इसका स्वाद कैसा है ? पुत्रने उत्तर दिया, कि—नोनखरा है। तब पिताने कहा, कि-थोड़ासा नीचेकी तलीमेंसे लेकर आचमन कर, पुत्रने ऐसा ही किया, तब पिताने कहा, कि—इसमें कैसा स्वाद है ? पुत्रने उत्तर दिया, कि-नोनखरा तदनन्तर पिताने कहा, कि—अब तू इस जलको छोड़ कर मेरे पास आ, यह सुनकर उसने जलको त्याग दिया और कहनेलगा, कि—वह लवण जलमें नित्य विद्यमान है, उससे पिताने कहा, कि—हे बेटा ! इसी प्रकार इस शरीरमें भी आचार्यके उपदेश कियेहुए प्रसिद्ध सत्को तू इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जानपाता है। जैसे जल में देखनेमें और स्पर्श करने पर प्रतीत न होनेवाले लवण को तूने जीभसे जाना है, इसीप्रकार इस शरीरमें ही विद्यमान जगत्के मूल सत्को तू अन्य उपायसे लवण के सूक्ष्मभावकी समान जान जायगा, यह बात श्वेतकेतु से उसके पिताने कही ॥ २ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( एषः ) यह ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( ऐतदात्म्यम् ) इस ही आत्मा-वाला है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( तत् ) वह ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतकेतु ( तत् ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) ऐसा पिता ने कहा ( भगवान् ) आप ( भूयः, एव ) फिर भी ( मा ) मुझ को ( विज्ञापयतु ) समझाइये ( इति ) ऐसा कहने पर ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तथा ) ऐसा ही होगा ( इति ) यह ( उवाच, ह ) कहा ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-वह सूक्ष्मभाव ही इस सब जगत्का आत्मस्वरूप है, वह सत्य है, वह आत्मपदार्थ है, हे श्वेतकेतु ! वही तू है, ऐसा पिताके कहने पर श्वेतकेतुने कहा, कि-जगत्का मूल सत् जिस उपायसे प्रतीत होता हो वह उपाय आप मुझे दृष्टान्त देकर समझाइये, पिताने कहा कि-हे सोम्य ! कहता हूं, सुन ॥ ३ ॥

षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ्वोदङ् वाऽधराङ् वा प्रत्यङ् वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( यथा ) जैसे ( गन्धारेभ्यः ) गन्धारदेशसे ( अभिनद्धाक्षम् ) बँधेहुए नेत्रोंवाले ( पुरुषम् ) पुरुषको ( आनीय ) लाकर ( ततः ) तदनन्तर ( तम् ) उसको ( अतिजने ) निर्जन स्थानमें ( विसृजेत् ) छोड़देय ( तत्र ) तहाँ ( यथा ) जैसे ( सः ) वह ( प्राङ्, वा ) पूर्वाभिमुख ( उदङ् वा ) वा उत्तराभिमुख ( अधराङ्, वा ) वा दक्षिणाभिमुख ( प्रत्यङ्, वा ) वा पश्चिमाभिमुख ( प्रध्मायीत ) चिल्लावे ( अभिनद्धाक्षः ) आंखें बँधाहुआ ( आनीतः ) लायागया हूं ( अभिनद्धाक्षः ) आँखें बँधाहुआ ( विसृष्टः ) छोड़ागया हूं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य ! जिसप्रकार चोर किसी पुरुष को आँखें बाँधकर गान्धारदेशसे ले आवें और तहाँ उस के हाथ पैर बाँधकर किसी घोर निर्जन वनमें छोड़जायँ तो जिसप्रकार उसको दिशाओंका भ्रम होता है और वह कभी पूर्वकी ओरको, कभी उत्तरकी ओरको, कभी दक्षिणकी ओरको तथा कभी पश्चिमकी ओरको मुख करके इसप्रकार पुकारे, कि-चोर मेरी आँखें बाँधकर मुझे गान्धार देशसे ले आये हैं और हाथ पैर बाँधकर यहां डाल गये हैं ॥ १ ॥

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद् ग्रामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसम्पद्येतैवमेवेहाऽऽचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यथा ) जैसे ( तस्य ) उसके ( अभिनहनम् ) बन्धनको ( प्रमुच्य ) खोलकर ( प्रब्रूयात् ) कहे, (एताम्

दिशम् ) इस दिशामेंको ( गन्धाराः ) गन्धारदेश है ( एताम्, दिशम् ) इस दिशामेंको ( व्रज ) जा ( इति ) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( ग्रामाद् ) ग्रामसे ( ग्रामम् ) ग्रामको ( पृच्छन् ) पूछता हुआ ( पण्डितः ) उपदेश पायाहुआ ( मेधावी ) निश्चय करनेमें समर्थ हुआ ( गन्धारान्, एव ) गन्धार देशको ही (उपसम्पद्येत ) पहुंच जायगा ( एवमेव ) इसीप्रकार ( इह ) यहां ( आचार्यवान् ) आचार्य वाला ( पुरुषः ) पुरुष ( वेद ) जानता है ( तस्य ) उसको ( तावदेव ) तबतक ही ( चिरम् ) विलम्ब है ( यावत् ) जबतक ( विमोक्ष्ये ) छूटगया ( इति ) ऐसा ( न ) नहीं है ( अथ ) अनन्तर ( सम्पत्स्ये ) प्राप्त होजायगा ( इति ) ऐसा पिताने कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जिसप्रकार उसके नेत्रोंके और हाथ पैरों के बन्धनको खोलकर कोई दयालु पुरुष उससे कहदेय कि-इधर उत्तरकी ओर गन्धार देश है, इधरको ही चला जा। तब वह बन्धनसे छूटाहुआ पुरुष, एक ग्रामसे दूसरे ग्रामको पूछता २ गान्धारदेशके मार्गका उपदेश पाकर तथा उस उपदेश कियेहुए मार्गका निश्चय करनेमें समर्थ होकर गान्धार देशमें जा पहुँचता है, यदि कोई मूर्ख उस समय देश देशान्तारोंकी शैर करनेकी तृष्णामें पड़जाय तो वह नहीं पहुँच सकता है। इसीप्रकार इस संसारमें किसी श्रेष्ठ गुरुका शिष्य बननेवाला पुरुष जगत् के कारण सत्को पाजाता है। जिसको उपदेश देनेवाला गुरु मिलगया है और अविद्यारूपी बन्धन दूर होगया है ऐसे पुरुषको तबतक ही आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेमें विलम्ब होरहा है, कि-जबतक प्रारब्धका क्षय नहीं होता है, ज्यों ही प्रारब्ध पूरा हुआ कि-शरीरपात होजायगा और उसी समय सत्की प्राप्ति होजायगी, ऐसा श्वेतकेतुके पिताने कहा ॥ २ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( एषः ) यह ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( ऐतदात्म्यम् ) इस ही आत्मा-वाला है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( तत् ) वह ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतकेतु ( तत् ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) पिताके ऐसा कहने पर ( भगवान् ) आप ( भूयः, एव ) फिर भी (मा) मुझको ( विज्ञापयतु ) समझाइये ( इति ) इस पर ( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( तथा ) ऐसा ही होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) कहा ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-यह सूक्ष्मभाव ही सब जगत्का आत्मा रूप है, वह सत्य है और वही आत्मपदार्थ है, हे श्वेत-केतु ! वह सत् तू ही है, ऐसा पिताके कहने पर श्वेत केतुने कहा, कि-हे भगवन्! गुरुकी शरण लेनेवाला विद्वान् जिस क्रमसे सत्को पाजाता है उस क्रमको दृष्टान्त देकर समझाइये, पिताने उत्तर दिया कि-हे सोम्य ! कहता हूं, सुन ॥ ३ ॥

षष्ठाध्यायस्य चतुर्दश. खण्डः समाप्तः

पुरुषꣳ सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( उत ) और ( उपतापिनम् ) उपतापवाले ( पुरुषम् ) पुरुषको ( ज्ञातयः ) भाई बन्धु ( माम्, जानासि ) मुझे जानता है ( माम्, जानासि ) मुझे जानता है ( इति ) ऐसा कहतेहुए ( पर्युपासते ) घेर कर चारों ओर बैठते हैं ( यावत् ) जबतक ( तस्य ) उसकी ( वाक् ) वाणी ( मनसि ) मनमें ( मनः ) मन ( प्राणे ) प्राण में ( प्राणः ) प्राण ( तेजसि ) तेजमें ( तेजः ) तेज ( परस्याम्, देवतायाम् ) पर देवतामें ( न ) नहीं ( सम्पद्यते ) लीन होता है ( तावत् ) तबतक ( जानाति ) जानता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य ! जिसको ज्वर आदिका कष्ट होरहा है, ऐसे मरनेवाले पुरुषको उसके भाई बन्धु चारों ओरसे घेरकर बैठजाते हैं और कहते हैं कि-क्या तू मुझे पहचानता है, क्या तू मुझे जानता है । जबतक उसकी वाणी मनमें लीन नहीं होती है, मन प्राणमें, प्राण उष्णतारूप तेजमें और तेज परम देवतामें लीन नहीं होता है तबतक ही वह जानता है ॥ १ ॥

अथ यदाऽस्य वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अनन्तर ( यदा ) जब ( अस्य ) इसकी ( वाक् ) वाणी ( मनसि ) मनमें ( मनः ) मन ( प्राणे ) प्राणमें ( प्राणः ) प्राण ( तेजसि ) तेजमें ( तेजः ) तेज ( परस्याम्, देवतायाम् ) पर देवतामें ( सम्पद्यते ) लीन होजाता है ( अथ ) अनन्तर ( न ) नहीं ( जानाति ) जानता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-इसके अनन्तर जब इसकी वाणी मनमें मन प्राणमें, प्राण तेजमें और तेज परम देवतामें लीन

होजाता है तब यह कुछ भी नहीं जानता है। इसप्रकार अविद्वान् सत्से उठकर पहिले भावना कियेहुए देव मनुष्य वा व्याघ्र आदि भावोंमें प्रवेश करता है और विद्वान् तो शास्त्र तथा गुरुके उपदेशसे उत्पन्न हुए ज्ञान-रूप दीपकके द्वारा प्रकाशित सत्रूप ब्रह्ममें प्रवेश करके पुनर्जन्मको नहीं पाता है, यही इस ब्रह्मप्राप्तिका क्रम है, इसका सुषुम्ना नाड़ीसे उत्क्रमण नहीं होता है, किन्तु इसका प्राण यहां ही विलीन होजाता है ॥ २ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ३

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( एषः ) यह ( अणिमा ) सूक्ष्मभाव है ( ऐतदात्म्यम् ) इस ही आत्मा वाला है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( तत् ) वह ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वे-तकेतु ( तत् ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) ऐसा पिता के कहने पर ( भगवान् ) आप ( भूयः, एव ) फिर भी ( मा ) मुझको ( विज्ञापयतु ) समझाइये ( इति ) ऐसा कहा ( सोम्य ) हे प्रियदर्शदन ( तथा ) ऐसा ही होगा ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) कहा ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-यह सूक्ष्मभाव ही सब जगत्का आत्मा है, वह सत्य और आत्मपदार्थ है, हे श्वेतकेतु ! वह तू ही है। ऐसा पिताके कहने पर श्वेतकेतुने कहा, कि—हे भगवन् ! यदि मरनेवालेको और मोक्ष पानेवालेको ब्रह्मकी प्राप्ति समान है तो विद्वान् ब्रह्मको पाकर पुन-र्जन्म नहीं पाता है और अविद्वान् पुनर्जन्म पाता है,

ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण दृष्टान्त देकर समझाइये, पुत्रके ऐसा पूछने पर पिताने कहा, कि हे सोम्य ! कहता हूं, सुन ॥ ३ ॥

षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः

पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षी-त्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्त्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सोम्य ) हे प्रियदर्शन ( उत ) और ( हस्तगृहीतम् ) हाथ बांधेहुए ( पुरुषम् ) पुरुषको ( आनयन्ति ) लाते हैं ( अपहार्षीत् ) छीनलिया था ( स्तेयम् ) चोरी ( अकार्षीत् ) की थी ( इति ) इसकारण ( अस्मै ) इसके लिये ( परशुम् ) कुहाड़ीको ( तपत ) तपाओ ( सः ) वह ( यदि ) जो ( तस्य ) उसका ( कर्त्ता ) करनेवाला ( भवति ) होता है ( ततः, एव ) तिससे ही ( आत्मानम् ) अपनेको ( अनृतम् ) मिथ्यायुक्त (कुरुते) करता है ( अनृताभिसन्धः ) मिथ्या प्रतिज्ञा वाला ( सः ) वह ( अनृतेन ) मिथ्यासे ( आत्मानम् ) अपनेको ( अन्तर्धाय ) ढककर ( तप्तम् ) तपायीहुई ( परशुम् ) कुहाड़ीको ( प्रतिगृह्णाति ) ग्रहण करता है ( सः ) वह ( दह्यते) जलता है ( अथ ) अनन्तर ( हन्यते ) मार खाता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे सोम्य ! जिसके ऊपर चोरीका संदेह होता है राजपुरुष उसको हाथ बाँधकर अधिकारी ( हाकिम ) के सामने लाते हैं और कहते हैं कि-महाराज ! इसने अमुक पुरुषका धन छीना है, अमुककी चोरीकी है। वह चोर यदि चोरी करना स्वीकार नहीं

करता है तो हाकिम कहता है कि—इसके लिये कुहाड़ी गरम करो, यदि वह चोर होता है तो बाहरसे छुपाता है और अपनेको कुछ दिखाता है अर्थात् चोर होकर भी कहता है कि-मैं चोर नहीं हूं, वह मिथ्या प्रतिज्ञा करता हुआ उस मिथ्यासे अपनेको ढक कर गरमकी हुई कुहाड़ी को भ्रान्तिसे पकड़लेता है तब जलजाता है और मिथ्या कहनेके कारण मार खाता है ॥ १ ॥

अथ यदि तस्याकर्त्ता भवति ततएव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यदि ) जो ( तस्य ) उसका ( अकर्त्ता ) न करनेवाला ( भवति ) होता है ( ततः, एव ) उससे ही ( आत्मानम् ) अपनेको ( सत्यम् ) सच्चा ( कुरुते ) करता है ( सत्याभिसन्धः ) सत्य प्रतिज्ञावाला ( सः ) वह ( सत्येन ) सत्यसे आत्मानम् ) अपनेको ( अन्तर्धाय ) ढक कर ( तप्तम् ) तपीहुई (परशुम् ) कुहाड़ीको ( प्रतिगृह्णाति ) ग्रहण करता है ( सः ) वह ( न ) नहीं ( दह्यते ) जलता है ( अथ ) और ( मुच्यते ) छूटजाता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-और यदि वह उस चोरीका करनेवाला नहीं होता है तो उससे ही वह अपनेको सच्चा सिद्ध कर देता है, वह सत्य प्रतिज्ञा करता हुआ, सत्यसे अपनेको ढक कर उस गरम कुहाड़ीको उठालेता है, वह उससे जलता नहीं और राजद्वारसे छूटजाता है। जिस प्रकार चोरी करनेवाला और न करनेवाला इन दोनोंमें तपीहुई कुहाड़ीसे हाथको लगाना समान होने पर भी मिथ्या प्रतिज्ञावाला जलता है और सत्य प्रतिज्ञावाले

को आँच नहीं लगती। इसीप्रकार अविद्वान् और विद्वान् दोनों सत्को प्राप्त होते हैं, तो भी कार्यरूप मिथ्याकी प्रतिज्ञावाला अविद्वान् पुनर्जन्मको पाता है और ब्रह्म रूप सत्यकी प्रतिज्ञावाला पुनर्जन्मको नहीं पाता है ॥२॥

स यथा तत्र ना दाह्येतैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यथा ) जैसे ( तत्र ) तहां ( न ) नहीं ( दाह्येत ) जलता है ( ऐतदात्म्यम् ) ऐसे ही आत्मावाला है ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( तत् ) वह ( सत्यम् ) सत्य है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्वेतकेतो ) हे श्वेतकेतु ( तत् ) वह ( त्वम् ) तू ( असि ) है ( इति ) ऐसा पिताने कहा ( अस्य ) इसके ( तत् ) उसको ( विजज्ञौ, ह ) जानताहुआ ( इति ) यह सम्वाद समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जिसप्रकार राजद्वारमें वह सत्य प्रतिज्ञा वाला नहीं जलता है, इसीप्रकार ब्रह्मकी प्रतिज्ञावाला विद्वान् सत्को पाकर पुनर्जन्म नहीं पाता है और कार्य रूप मिथ्याकी प्रतिज्ञावाला अविद्वान् सत्को पाकर कर्मानुसार पुनर्जन्मको पाता है, ऐसे ही आत्मासे यह सब जगत् व्याप्त होरहा है, वह सत्य है, वह आत्म-पदार्थ है, हे श्वेतकेतु ! वह सत् तू है, इसप्रकार पिताने उपदेश दिया, इस पिताके कहेहुए वचनसे श्वेतकेतु 'मैं सत् ही हूं' ऐसा जानगया ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः

॥ षष्ठाध्यायः समाप्तः ॥

# ॥ अथ सप्तम अध्याय ॥

नाम आदि उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तत्त्व है और उसमें अत्यन्त श्रेष्ठ भूमा नामका तत्त्व है, अतः उसकी स्तुतिके लिये नाम आदिके क्रमको कहनेका आरम्भ करते हैं। आत्म ज्ञानके सिवाय परमश्रेयका साधन और कोई नहीं हैं, इस बातको सिद्ध करनेके लिये भगवान् सनत्कुमार और नारदजीका सम्वाद कहते हैं—

ॐ अधीहि भगव इति हो पससाद सनत्कुमारं नारदस्तꣳ होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( भगवः ) हे भगवन् ( अधीहि ) उपदेश दीजिये ( इति ) इसप्रकार ( नारदः ) नारदजी ( सनत्कुमारम्, उपससाद, ह ) सनत्कुमारके पास पहुंचे ( तम् ) उन से ( उवाच, ह ) कहा ( यत् ) जो ( वेत्थ ) जानते हो ( तेन ) उसके द्वारा ( मा ) मुझे ( उपसीद ) पास हूजिये ( ततः ) तदनन्तर ( ते ) तेरे अर्थ ( ऊर्ध्वम् ) आगेको ( वक्ष्यामि ) कहूंगा ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) कहता हुआ ॥ १ ॥

( भावार्थ )—हाथमें समिधालिये नारदजीने ब्रह्मनिष्ठ योगीश्वर सनत्कुमारजीके पास जाकर कहा, कि हे भगवन्! मुझे उपदेश दीजिये। विधिपूर्वक शरणमें आयेहुए नारदजीसे भगवान् सनत्कुमारने कहा, कि-तुम आत्माके विषयमें जो कुछ जानते हो, वह मुझे सुनाओ तो मैं तुम्हें आगेका उपदेश दूँगा, यह सुनकर नारदजीने कहा ॥ १ ॥

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( भगवः ) हे भगवन् ) ( ऋग्वेदम् ) ऋग्वेदको ( अध्येमि ) पढ़ा हूं ( यजुर्वेदम् ) यजुर्वेदको ( सामवेदम् ) सामवेदको ( चतुर्थम् ) चौथे ( आथर्वणम् ) अथर्वणवेदको ( इतिहासपुराणम् ) इतिहास पुराणरूप ( पञ्चमम् वेदम् ) पांचवें वेदको ( वेदानाम्, वेदम् ) वेदोंके वेद ( पित्र्यम् ) श्राद्ध कल्पको ( राशिम् ) गणितको ( दैवम् ) उत्पातज्ञानको ( निधिम् ) निधिशास्त्रको ( वाकोवाक्यम् ) तर्कशास्त्रको ( एकायनम् ) नीति शास्त्रको ( देवविद्याम् ) निरुक्तको ( ब्रह्मविद्याम् ) वेदविद्याको ( भूतविद्याम् ) तन्त्रशास्त्रको ( क्षत्रविद्याम् ) धनुर्वेदको ( नक्षत्रविद्याम् ) ज्योतिषको ( सर्पदेवजनविद्याम् ) सर्पविद्या और देवजनविद्याको ( एतत् ) इस सबको ( भगवः ) हे भगवन् ( अध्येमि ) पढ़ा हूं ॥ २ ॥

( भावार्थ )— हे भगवन् ! मैंने ऋग्वेद पढ़ा है, यजुर्वेद सामवेद, चौथा अथर्ववेद, इतिहास पुराणरूप पाँचवाँ वेद, वेदोंका वेद कहिये वेदोंके जाननेका साधन व्याकरण, श्राद्धकल्प, उत्पात विषयक शास्त्र, निधिविद्या तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या कहिये शिक्षा, कल्प, छन्द और अग्निहोत्रका विधान, भूततन्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड़ी विद्या, और देवजनविद्या कहिये नृत्य, गीत, शिल्प आदि विज्ञानशास्त्र इस सबको हे भगवन् ! मैंने पढ़ा है ॥ २ ॥

सोऽहंभगवो मन्त्रविदेवाऽस्मि नात्मविच्छ्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तꣳ होवाच यद्वै किञ्चैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( भगवः ) हे भगवन् ( सः ) वह ( अहम् ) मैं ( मन्त्रवित्, एव ) मन्त्रको जानेवाला ही ( अस्मि ) हूं ( आत्मवित् ) आत्मज्ञानी ( न ) नहीं ( हि ) क्योंकि ( भगवद्दृशेभ्यः ) आप सरीखोंसे ( मे ) मैंने ( श्रुतम्, एव ) सुना ही है आत्मवित् ) आत्मज्ञानी ( शोकम् ) शोकको ( तरति ) तरजाता है ( इति ) ऐसा है । ( भगवः ) भगवन् ( सः ) वह ( अहम् ) मैं ( शोचामि ) शोक करता हूं ( तम् ) उस ( मा ) मुझको ( भगवान् ) आप ( शोकस्य ) शोकके ( पारम् ) पारको ( तारयतु ) तार दीजिये ( इति ) ऐसा कहनेवाले ( तम् ) उसके प्रति ( उवाच, ह ) कहा ( यत्किञ्च ) जो कुछ ( एतत् ) यह ( अध्यगीष्ठा ) पढ़ा है ( एतत् ) यह ( वै ) निश्चय ( नाम, एव ) नाममात्र ही है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—हे भगवन् ! मैं कर्मकाण्डको जानता हूं, आत्मज्ञानी नहीं हूं । क्योंकि-मैंने आपसरींखे महात्माओंसे सुना है, कि-आत्मज्ञानी अकृतार्थ बुद्धिरूप मनके परितापरूप शोकके पार होजाता है, सो हे भगवन् ! मैं आत्मज्ञानी न होनेके कारण सर्वदा अकृतार्थ बुद्धिसे शोकमग्न रहा करता हूं, आप आत्मज्ञानरूप नौकाके द्वारा मुझे शोकसागरके पार पहुँचा दीजिये । नारदजी की इस बातको सुनकर भगवान् सनत्कुमारने कहा कि-यह जो कुछ तुमने पढ़ा है सो सब नाममात्र है ॥ ३ ॥

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वण-श्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्र-विद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्स्वेति ।

अन्वय और पदार्थ-( नाम, वै ) नाम ही ( ऋग्वेदः ) ऋग्वेद है ( यजुर्वेदः ) यजुर्वेद ( सामवेदः ) सामवेद (चतुर्थः) चौथा ( आथर्वणः ) अथर्वणवेद ( पञ्चमः ) पांचवां वेद (इति-हासपुराणः ) इतिहास पुराण ( वेदानाम् ) वेदोंके ( वेदः ) जाननेका साधन व्याकरण ( पित्र्यः ) श्राद्धकल्प ( राशिः ) गणित ( दैवः ) उत्पातोंको जाननेकी विद्या ( निधिः ) खनि-विद्या ( वाकोवाक्यम् ) तर्कशास्त्र ( एकायनम् ) नीतिशास्त्र ( देवविद्या ) निरुक्त ( ब्रह्मविद्या ) शिक्षाकल्प आदि ( भूत-विद्या ) भूततंत्र ( क्षत्रविद्या ) धनुर्वेद ( नक्षत्रविद्या ) ज्योतिष ( सर्पदेवजनविद्या ) सर्प देवता और मनुष्योंकी विद्या (एतत्) यह ( नाम एव ) नाम ही है ( इति ) इसकारण ( नाम ) नाम को ( उपास्स्व ) उपासना करो ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-नाम ही ऋग्वेद है, यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्ववेद (इतिहास तथा पुराणरूप) पांचवां वेद, वेदोंके ज्ञानका साधन व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातविद्या, भविष्यमें होनेवाले उत्पातोंको आगेसे जान लेनेकी विद्या, खनिशास्त्र तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षाकल्प आदि वेदविद्या, भूततंत्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पोंकी देवताओंकी और मनुष्योंकी विद्या यह सब नाम ही है, जिसप्रकार लोग विष्णु आदिकी बुद्धिसे प्रतिमाकी उपासना करते हैं, इसीप्रकार तुम ब्रह्मबुद्धिसे नामकी उपासना करो ॥ ४ ॥

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवन् ब्रवीत्विति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( नाम ) नामको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते ) उपासना करता है ( अस्य ) इसकी ( यावत् ) जहांतक ( नाम्नः ) नाम का ( गतम् ) विषय है ( तावत् ) यहां तक ( यथाकामचारः ) इच्छानुसार प्रवृत्तिवाला ( भवति ) होता है (यः) जो ( नाम ) नामको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ( नाम्नः ) नामसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदने बूझा ( नाम्नः ) नामसे ( भूयः, वाव ) अधिकतर निश्चय ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा ( तत् ) उसको ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा नारदजीने कहा ॥५॥

(भावार्थ)-जो नामको ब्रह्म मानकर उपासना करता है, उसकी जहांतक नामकी गति है तहां तक इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा, कि-हे भगवन्! क्या ब्रह्मदृष्टि करनेके योग्य कोई नामसे भी बढ़कर है सनत्कुमारने कहा कि हां है। तब नारदजीने कहा, कि-हे भगवन्! मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥

सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं

? न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यत् ॥



निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याᳫं सर्पदेवजनविद्यां दिवञ्च पृथिवीञ्च वायुञ्चाकाशञ्चापश्च तेजश्च देवाᳫंश्च मनुष्याᳫंश्च पशूᳫंश्च वयाᳫंसि च तृणवनस्पतीन् श्वपादान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मञ्चाधर्मञ्च सत्यञ्चानृतञ्च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ् नाभविष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( वाक्, वाव ) वाणी ही (नाम्नः) नामसे ( भूयसी) अधिकतर है (वाक्, वै) वाणी ही (ऋग्वेदम्) ऋग्वेद को ( यजुर्वेदं ) यजुर्वेद को ( सामवेदम् ) सामवेद को ( चतुर्थम् ) चौथे ( अथर्वणम् ) अथर्ववेदको ( पञ्चमम् ) पंचम वेदरूप (इतिहासपुराणम्) इतिहास पुराणको ( वेदानाम्, वेदम्) वेदोंके ज्ञानसाधन व्याकरणको (पित्र्यम्) श्राद्धकल्पको (राशिम्) गणित को ( दैवम् ) उत्पात विद्याको ( निधिम् ) खनिविद्याको ( वाकोवाक्यम् ) तर्कशास्त्रको ( एकायनम् ) नीतिशास्त्र को ( देवविद्याम् ) निरुक्त को ( ब्रह्मविद्याम् ) वेदविद्याको ( भूतविद्याम् ) भूततन्त्रको ( नक्षत्रविद्याम् ) ज्योतिषको ( सर्पदेवजनविद्याम्) सर्पोंकी देवताओंकी और मनुष्योंकी विद्याको (दिवञ्च) स्वर्गको भी ( पृथिवीञ्च ) पृथिवीको भी ( वायुञ्च) वायुको भी ( आकाशञ्च ) आकाशको भी (अपश्च) जलको भी (तेजश्च) तेजको भी (देवान, च) देवताओंको भी (मनुष्यान्, च) मनुष्यों को ( पशून्, च ) पशुओंको भी ( वयांसि,च ) पक्षियोंको भी

( तृणवनस्पतान् )तृण और वनस्पतियोंको (श्वापदानि ) हिंसक पशुओंको ( आकीटपतङ्गपिपीलकम् ) कीड़े, पतङ्ग और चींटी पर्यन्तको ( धर्मम् , च ) धर्मको भी ( अधर्मञ्च ) अधर्मको भी ( सत्यञ्च ) सत्यको भी ( अनृतञ्च ) असत्यको भी ( साधु च) शुभको भी ( असाधु, च ) अशुभको भी ( हृदयज्ञञ्च ) हृदय के प्रियको भी ( अहृदयज्ञं च ) हृदयके अप्रियको भी (विज्ञापयति ) जताती है ( वाक् ) वाणी ( न ) नहीं ( अभविष्यत् ) होती [ ताह ] तो ( धर्मः ) धर्म ( न ) नहीं ( अधर्मः ) अधर्म (न) नहीं ( सत्यम् ) सत्य ( न ) नहीं ( अनृतम् ) मिथ्या ( न ) नहीं ( साधु ) शुभ ( न ) नहीं ( असाधु ) अशुभ ( न ) नहीं ( हृदयज्ञः ) हृदय का प्रिय ( न ) नहीं ( अहृदयज्ञः ) हृदयका अप्रिय (न) नहीं ( व्याज्ञापयिष्यत् ) जानाजाता ( वाक्-एव ) वाणी ही ( एतत् ) इस ( सर्वम् ) सबको (विज्ञापयति) जताती है (इति) इसकारण (वाचम्)वाणीको (उपास्स्व) उपासना कर १

( भावार्थ )-शब्दोंका उच्चारण करनेवाली वाणी ही नामसे अधिकतर है। वाणी ही ऋग्वेदको जानती है। यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण,व्याकरण, श्राद्धकल्प,गणित, उत्पातोंको जतानेवाली विद्या, निधि-शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र,निरुक्त,वेदविद्या, भूततंत्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पोंकी, देवताओंकी और मनुष्योंकी विद्या, स्वर्ग, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज,देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, व्याघ्रादि हिंसक पशु, कीट, पतङ्ग, चींटियें, धर्म, अधर्म, सत्य, मिथ्या, शुभ, अशुभ, हृदयका प्रिय और हृदयका अप्रिय इन सबको वाणी ही जताती है यदि वाणी न होती तो अध्ययन श्रवण आदि न होनेसे धर्म अधर्म नहीं मालूम होते, सत्य मिथ्या नहीं मालूम होते, भला बुरा नहीं

मालूम होता, हृदयका प्रिय अप्रिय नहीं मालूम होता। वाणी ही शब्दके उच्चारणसे इन सबको जताती है, इसप्रकार वाणी नामसे अधिकतर है, इस कारण वाणी की ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते-ऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयो-ऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यहः ) जो ( वाचम् ) वाणी को ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा जानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( अस्य ) इसकी ( यावत् ) जहांतक ( वाचः गतम् ) वाणीका विषय है ( तत्र ) उसमें ( यथाकामचारः ) इच्छानुसार प्रवृत्ति ( भवति ) होती है ( यः ) जो ( वाचम् ) वाणीको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ( वाचः ) वाणीसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदजीने बूझा (वाचः) वाणीसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति, वाव ) है ही ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा ( भगवान् ) आप ( तत् ) वह ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा नारदजीने कहा ॥२॥

( भावार्थ )-जो वाणीको ब्रह्म मानकर उपासना करता है, उसकी जहांतक वाणीका विषय है तहांतक इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। नारदजीने बूझा कि-हे भगवन्! क्या कोई वस्तु वाणीसे भी बढ़कर है, सनत्-कुमारने कहा-हाँ है, नारदजीने कहा कि-तो आप मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वाऽऽमलके द्वे वा कोले द्वौ वाऽक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्राꣳश्च पशूꣳश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमञ्च लोकममुञ्चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनः,वाव) मन ही (वाचः) वाणीसे (भूयः) अधिक है (यथा वै) जैसे (द्वे,आमलके) दो आमलों को (वा)या (द्वे,कोले) दो बेरोंको (वा) या (द्वौ,अक्षौ) दो बहेड़ोंको (मुष्टिः) मुट्ठी (अनुभवति) अनुभव करती है (एवम्) इसी प्रकार (वाचम्, च) वाणीको भी (नाम,च) नामको भी (मनः) मन (अनुभवति) अनुभव करता है (सः) वह (यदा) जब (मनसा) मन से (मन्त्रान्) मन्त्रोंको (अधीयीय) पढ़ूं (इति) ऐसा (मनस्यति) चाहता है (अथ) अनन्तर (अधीते) पढ़ता है (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वीय) करूं (इति) ऐसा चाहता है (अथ) अनन्तर (कुरुते) करता है (पुत्रान्) पुत्रोंको (च) और (पशून्, च) पशुओंको भी (इच्छेय) चाहूं (इति) ऐसा विचारता है (अथ) अनन्तर (इच्छते) इच्छा करता है (इमम्) इस (च) और (अमुम्, च) उस भी (लोकम्) लोक को (इच्छेय) इच्छा करूं (इति) ऐसा विचारता है (अथ) अनन्तर (इच्छते) चाहता है (मनः, हि) मन ही (आत्मा) आत्मा है (मनः, हि) मन ही (लोकः) लोक है (मनः,हि) मन ही (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इस कारण (मनः) मनको (उपास्स्व) उपासना कर ॥ १ ॥

( भावार्थ )-मन ही वाणीसे अधिकतर है, जिस प्रकार दो आमलोंका वा दो बेरोंका अथवा दो बहेड़ोंका मुट्ठी अनुभव करती है ऐसे ही वाणी और नामका मन अनुभव करता है, वह पुरुष जब मनसे 'मंत्रोंका अध्ययन करूं' ऐसा विचारता है और फिर उन मंत्रोंका उच्चारण करता है कर्मोंको करूँ, ऐसी इच्छा करके कर्मों को करता है, पुत्र और पशुओंको प्राप्त करूँ ऐसी इच्छा करके उनको प्राप्त करता है और इस लोकको तथा परलोकको प्राप्त करूँ ऐसी इच्छा करके उनको प्राप्त करलेता है। मनके होनेसे ही आत्माका कर्त्तापना तथा भोक्तापना है, इसकारण मन ही आत्मा है। मनके होनेसे ही लोककी प्राप्ति होती है तथा उसकी प्राप्तिके उपायका अनुष्ठान होता है इसकारण मन ही लोक है, इसप्रकार मन ही ब्रह्म है, ऐसा जान कर मनकी उपासना कर ॥

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( मनः ) मन ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) ऐसा जानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( यावत् ) जहांतक ( मनसः गतम् ) मनका विषय है ( अस्य ) इसकी ( तत्र ) उसमें ( यथाकामचारः ) इच्छानुसार प्रवृत्ति ( भवति ) होती है ( यः ) जो ( मनः ) मन ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) ऐसा जानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन ( मनसः ) मनसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदने बूझा ( मनसः ) मनसे

( भूयः ) अधिक ( अस्ति, वाव ) है ही ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा ( भगवान् ) आप ( तत् ) उसको ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा नारदने कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो मनको ब्रह्म मानकर उपासना करता है, इसकी जहाँतक मनका विषय है, उसमें इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। नारदजीने बूझा कि-हे भगवन्! क्या मनसे भी बढ़कर कोई है ? सनत्कुमारने उत्तरदिया, कि-हां है, इस पर नारदजीने कहा, कि-तो आप मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

**सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान् यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( सङ्कल्पः वाव ) सङ्कल्प ही (मनसः) मनसे ( भूयान् ) अधिकतर है ( यदा ) जब ( वै ) निश्चय ( सङ्कल्पयते ) सङ्कल्प करता है ( अथ ) अनन्तर ( मनस्यति ) इच्छा करता है ( अथ ) अनन्तर ( वाचम् ) वाणीको (ईरयति) प्रेरणा करता है ( ताम्, उ ) उसको ही ( नाम्नि ) नाममें ( ईरयति ) प्रेरणा करता है ( नाम्नि ) नाममें ( मन्त्राः ) मन्त्र ( मन्त्रेषु ) मंत्रोंमें ( कर्माणि ) कर्म ( एकम् ) एक ( भवन्ति ) होते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-सङ्कल्प कहिये कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य रूप विषयका विभाग करनेवाली अन्तःकरणकी वृत्ति ही मनसे बढ़कर है, जब सङ्कल्प करता है तब मंत्रोंच्चारण की इच्छा करता है, फिर मंत्रादिके उच्चारणमें

वाणीको प्रेरणा करता है, उस वाणीको ही नाममें प्रेरणा करता है, नाम सामान्यमें शब्दविशेष मंत्रोंका और मंत्रोंमें कर्मोंका अन्तर्भाव है ॥ १ ॥ (सङ्कल्पात्मकानि)

तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशश्च समकल्पन्ताऽऽपश्च तेजश्च तेषाꣳ संक्लृप्त्यै वर्षꣳ संकल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नꣳ सङ्कल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः सङ्कल्पन्ते प्राणानाꣳ संक्लृप्त्यै मन्त्राः संकल्पन्ते मन्त्राणाꣳ संक्लृप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणाꣳ संक्लृप्त्यै लोकः सङ्कल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वꣳ संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्स्वेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तानि, ह ) वह प्रसिद्ध ( एतानि ) ये ( सङ्कल्पैकायनानि ) एक सङ्कल्परूप आश्रयवाले, सङ्कल्पात्मकानि ) सङ्कल्पसे उत्पन्न होनेवाले ( सङ्कल्पे ) संकल्पमें ( प्रतिष्ठितानि ) स्थितिवाले [ सन्ति ] हैं ( द्यावापृथिवी ) स्वर्ग और पृथिवी ( समक्लृपताम् ) संकल्पवाले हैं ( वायुः ) वायु ( च ) और ( आकाशश्च ) आकाश भी (समकल्पेताम्) सङ्कल्प करनेवाले हैं ( आपः ) जल ( च ) और ( तेजः, च ) तेज भी ( समकल्पन्त ) सङ्कल्प करते हैं ( तेषाम् ) उनके ( संक्लृप्त्यै ) संकल्पसे ( वर्षम् ) वर्षा ( संकल्पते ) समर्थ होती है ( वर्षस्य ) वर्षाके ( संक्लृप्त्यै ) संकल्पसे ( अन्नम् ) अन्न ( संकल्पते ) समर्थ होता है (अन्नस्य) अन्नके (संक्लृप्त्यै, संकल्पसे (प्राणाः)

प्राण ( संकल्पन्ते ) समर्थ होते हैं ( प्राणानाम् ) प्राणोंके ( संक्लृप्त्यै ) संकल्पसे ( मन्त्राः ) मन्त्र ( संकल्पन्ते ) समर्थ होते हैं ( मन्त्राणाम् ) मंत्रोंके ( संक्लृप्त्यै ) संकल्पसे ( कर्माणि ) कर्म ( संकल्पन्ते ) समर्थ होते हैं (कर्मणाम्) कर्मोंके (संक्लृप्त्यै:) संकल्पसे ( लोकः ) लोक (संकल्पते) समर्थ होता है (लोकस्य) लोकके ( संक्लृप्त्यै ) संकल्पसे ( सर्वम् ) सब ( संकल्पते ) समर्थ होता है ( सः ) वह ( एषः ) यह ( संकल्पः ) संकल्प है (इति) इसकारण (संकल्पम्) संकल्पको (उपास्स्व) उपासना कर।

( भावार्थ )- इन मन आदिका एक सङ्कल्पमें ही लय हुआ करता है, ये सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हुए हैं और सङ्कल्प में ही ठहरे हुए हैं, स्वर्ग और पृथिवी सङ्कल्प करते हुएसे निश्चल दीखते हैं, वायु और आकाश सङ्कल्पवालेसे प्रतीत होते हैं जल और तेज सङ्कल्प करनेवालेसे प्रतीत होते हैं। स्वर्ग पृथिवी आदिके सङ्कल्प (सामर्थ्य)से वर्षा समर्थ होती है, वर्षाकी सामर्थ्यसे अन्न समर्थ होता है, अन्नकी सामर्थ्यसे प्राण समर्थ होते हैं, प्राणबलवाला पुरुष मंत्रोंको ठीक २ पढ़सकता है इसकारण प्राणोंकी सामर्थ्यसे मंत्र समर्थ होते है, मंत्रोंकी सामर्थ्यसे अग्नि होत्र आदि कर्म फल देनेमें समर्थ होते हैं, कर्मोंकी सामर्थ्यसे सांसारिक सुखरूप फल समर्थ होता है, फलकी सामर्थ्यसे सब जगत् समर्थ होता है, क्योंकि-यह प्रसिद्ध सब जगत् जिस फलरूप अन्तवाला है उस फल का मूल सङ्कल्प है, ऐसा यह सङ्कल्प श्रेष्ठ है, इसकारण सङ्कल्पकी ब्रह्मबुद्धिसे उपासना करो ॥ २ ॥

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान् वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितो

ऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिद्ध्यति यावत्सं-
कल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः
संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय
इति संकल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्
ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( संकल्पम् ) संकल्पको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा जानकर उपास्ते) उपासना करता है ( सः ) वह ( क्लृप्तान् ) निर्णय कराये हुए ( ध्रुवान् ) नित्य ( प्रतिष्ठितान् ) भोग सामग्रीवाले ( अव्यथमानान् ) त्रास-रहित ( लोकान् ) लोकोंको ( ध्रुवः ) नित्य ( प्रतिष्ठितः) भोग-सामग्रीवाला ( अव्यथमानः ) त्रासरहित होताहुआ ( अभिसि-ध्यति ) पाता है ( यावत् ) जहांतक ( संकल्पस्य ) संकल्पका ( गतम् ) विषय है ( तत्र ) उसमें ( अस्य ) इसकी ( यथाकाम-चारः ) इच्छानुसार गति ( भवति ) होती है (यः) जो (संकल्पम्) संकल्पको ( ब्रह्म इति ) ब्रह्म है ऐसा जानकर ( उपास्ते ) उपा-सना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ( संकल्पात् ) संकल्पसे ( भूयः ) अधिक ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदके बूझनेपर ( संकल्पात् ) संकल्पसे ( भूयः ) अधिक (वाव) अवश्य (अस्ति) है ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा ( तत् ) उसको ( भगवान् ) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा ।

( भावार्थ )—जो संकल्पको ब्रह्म जानकर उपासना करता है वह ईश्वरके निर्णय कराये हुए, कुछ अधिक समय तक रहनेवाले, जिनमें अनेकों भोगसामग्रियें हैं और जिनमें शत्रु आदिसे किसीप्रकारकी व्यथा नहीं होती है ऐसे लोकोंमें जाता है तहां कुछ अधिक समय तक रहकर भोगसामग्रियोंको भोगता है और शत्रु आदि

से किसीप्रकारका त्रास नहीं पाता है, जितने विषय संकल्पमें आसक्त हैं उनमें इसकी अव्याहत गति होती है। यह सुनकर नारदजीने कहा, कि—हे भगवन्! क्या संकल्पसे बढ़कर भी कोई पदार्थ है ? सनत्कुमारजीने कहा, कि—हां है, नारदजीने कहा, कि तो मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ ३ ॥

सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

चित्तं वाव संकल्पाद् भूयो यदा वै चेतयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि॥१॥

अन्वय और पदार्थ—( चित्तम्, वाव ) चित्त ही (संकल्पात्) संकल्पसे ( भूयः ) अधिकतर है ( यदा ) जब (चेतयते) जानता है ( अथ वै ) अनन्तर ही (संकल्पयते) संकल्प करता है (अथ) अनन्तर ( मनस्यति ) चाहता है ( अथ ) अनन्तर ( वाचम् ) वाणीको ( ईरयति ) प्रेरणा करता है ( ताम्, उ ) उसको ही ( नाम्नि ) नाममें ( ईरयति ) प्रेरणा करता है (नाम्नि ) नाममें ( मन्त्राः ) मन्त्र ( मन्त्रेषु ) मन्त्रोंमें ( कर्माणि ) कर्म ( एकम्, भवन्ति ) एक होते हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )—चित्त ही संकल्पसे अधिकतर है, जब चित्त प्राप्त हुई वस्तुको जानता है, उसी समय उसका त्याग वा ग्रहण करनेके लिये संकल्प करता है, फिर तैसा ही करनेकी इच्छा करता है, तदनन्तर वाणीको प्रेरणा करता है, उस वाणीको नाममें प्रेरणा करता है, नाममें मंत्रोंका अन्तर्भाव और मंत्रोंमें कर्मोंका अन्तर्भाव होता है

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविद्-

चित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तᳬ ह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तानि, ह ) वह प्रसिद्ध (एतानि, वै) ये ही ( चित्तैकायनानि ) एक चित्त ही है आश्रय जिनका ऐसे ( चित्तात्मानि ) चित्तसे उत्पन्न होनेवाले ( चित्ते ) चित्तमें ( प्रतिष्ठितानि ) स्थित [ सन्ति ] हैं ( तस्मात् ) तिससे (यद्यपि) यद्यपि ( बहुवित् ) बहुत जाननेवाला (अचित्तः) अचित्त (भवति) होता है ( अयम् ) यह ( न ) नहीं ( अस्ति ) है ( इति, एव ) ऐसा ही ( एनम् ) इसको ( आहुः ) कहते हैं ( यत् ) जो (अयम्) यह ( वेद ) जानता है ( यद्वा ) अथवा ( अयम् ) यह ( विद्वान ) विद्वान् है ( इत्थम् ) इसप्रकार ( अयम् ) यह ( अचित्तः ) चित्तहीन ( न ) नहीं ( स्यात् ) होना चाहिये ( इति ) ऐसा कहते हैं ( अथ ) और ( यदि ) जो ( अल्पवित् ) अल्पज्ञ ( चित्तवान् ) चित्तवाला ( भवति ) होता है ( तस्मै, एव ) उसके लिये ही (शुश्रूषन्ते) श्रवण करना चाहते हैं (हि) क्योंकि (चित्तम्, एव) चित्त ही ( एषाम् ) इनका (एकायनम्) एक आश्रय है (चित्तम्) चित्त (आत्मा) आत्मा है ( चित्तम् ) चित्त ( प्रतिष्ठा ) स्थितिस्थान है ( इति ) इसकारण (चित्तम्) चित्तको (उपास्स्व) उपासना कर ॥

( भावार्थ )-ये संकल्पसे लेकर कर्मफल पर्यन्तकी वस्तुएं चित्तमें ही लीन हुआ करती हैं, चित्तसे ही उत्पन्न होती हैं और चित्तमें ही इनकी स्थिति है, क्योंकि चित्त संकल्प आदिका मूल है, इसकारण बहुत से शास्त्रादिको जाननेवाला होने पर भी जो अचित्त

कहिये वस्तुओंको पहचाननेकी शक्तिसे शून्य होता है तो उसको चतुर पुरुष 'यह तो होताहुआ भी मानो नहीं है' ऐसा कहते हैं, इसने जो कुछ शास्त्र आदि पढ़ा है इसका वह भी वृथा ही है, क्योंकि-यदि यह विद्वान् होता तो ऐसा अचित्त न होता, तथा जो थोड़ा ज्ञाता होकर भी चित्तवाला होता है, उसके पास लोग उसका उपदेश सुननेको जाते हैं क्योंकि चित्त ही संकल्प आदि का मुख्य आश्रय है, चित्त ही उत्पत्तिस्थान है और चित्तमें ही ये सब स्थित रहते हैं, इसकारण चित्तको ही ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ २ ॥

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान् वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमाना-नव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्यु-पास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद् भूय इति चित्ताद् वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ३

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( चित्तम् ) चित्तको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा जानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह ( वै ) निश्चय ( चित्तान् ) वृद्धि पायेहुए ( ध्रुवान् ) आपेक्षिक नित्य ( प्रतिष्ठितान् ) भोगसामग्रीयुक्त ( अव्यथमानान् ) व्यथारहित ( लोकान् ) लोकोंको ( ध्रुवः ) नित्य ( प्रतिष्ठितः ) भोगसामग्री युक्त ( अव्यथमानः ) त्रासरहित होताहुआ ( अभिसिध्यति ) पाता है ( यावत् ) जहांतक ( चित्तस्य,गतम् ) चित्तका विषय है ( तत्र ) उसमें ( अस्य ) इसका ( कामचारः ) इच्छित गति ( भवति ) होती है ( यः ) जो ( चित्तम् ) चित्तको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना

करता है, ( भगवः ) हे भगवन् ( चित्तात् ) चित्तसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदने बूझा ( चित्तात् चित्तसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति, वाव ) है ही ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा ( तत् ) उसको ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरें अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा नारदने कहा ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-जो चित्तको ब्रह्म जानकर उपासना करता है वह बुद्धिमत्ताके गुणोंसे वृत्तिको प्राप्त हुए, और पदार्थों की अपेक्षा अधिक समय तक रहनेवाले, भोगसामग्रियों से युक्त और व्यथारहित लोकोंको पाता है और तहां चिरकालतक रहता है, अनेकों प्रकारके भोग भोगता है और किसीप्रकारका कष्ट नहीं पाता है, जितने चित्तके विषय हैं, उनमें इसकी यथेच्छ प्रवृत्ति होती है । नारद जीने बूझा, कि-हे भगवन् ! क्याचित्तसे भी अधिकतर कोई है ? सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि-हाँ है, नारदजी ने कहा, कि-तो आप मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥३॥

सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

ध्यानं वाव चित्ताद् भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादांशा इवैव ते भवंति ध्यानमुपास्स्वेति ।

अन्वय और पदार्थ-(ध्यानम्, वाव ) चित्तकी एकाग्रता ही ( चित्तात् ) चित्तसे ( भूयः ) अधिकतर है ( पृथिवी )

पृथिवी ( ध्यायति इव ) ध्यान करती हुई सी है ( अन्तरिक्षम् ) आकाश ( ध्यायति इव ) ध्यान करता हुआसा है ( द्यौः ) स्वर्ग ( ध्यायति, इव ) ध्यान करता हुआसा है ( आपः ) जल (ध्यायन्ति,इव) ध्यान करते हुएसे हैं (पर्वताः पहाड़ ( ध्यायन्ति, इव ) ध्यान करते हुएसे हैं ( देवमनुष्याः ) देवताओं की समान मनुष्य ( ध्यायन्ति, इव ) ध्यान करतेहुएसे हैं ( तस्मात् ) तिससे ( ये ) जो ( इह ) इसलोकमें ( मनुष्याणाम् ) मनुष्योंमें ( महत्ताम् ) गौरवको ( प्राप्नुवन्ति ) पाते हैं ( ते ) वह ( ध्याना-पादांशाः, इव, एव ) ध्यानलाभके अंशवालेसे ही ( भवन्ति ) होते हैं ( अथ ) और ( ये ) जो ( अल्पाः ) क्षुद्र ( कलहिनः ) कलही ( पिशुनाः ) चुगलखोर ( उपवादिनः ) समीपमें कहने वाले भवन्ति ) होते हैं ( अथ ) और ( ये ) जो ( प्रभवः ) प्रभु होते हैं ( ते ) वह ( ध्यानापादांशा, इव, एव ) ध्यानप्राप्ति के अंशवाले ही (भवन्ति) होते हैं (इति ) इसकारण ( ध्यानम् ) ध्यानको ( उपास्स्व ) उपासना कर ॥ १ ॥

( भावार्थ )-ध्यान कहिये अन्तःकरणकी एकाग्रता ही चित्तसे अधिकतर है। पृथिवी मानो ध्यान करती हो ऐसी निश्चल दीखती है, आकाश ध्यान करता हुआसा निश्चल दीखता है, स्वर्ग ध्यान करताहुआसा निश्चल दीखता है, जल ध्यान करते हुएसे निश्चल दीखते हैं, पहाड़ ध्यान करतेहुएसे निश्चल दीखते हैं, शम दम आदि गुणोंवाले देवतुल्य मनुष्य ध्यान करतेहुएसे निश्चल प्रतीत होते हैं,इसकारण जो इस लोकमें मनुष्यों में धन, विद्या और गुणोंके कारण गौरवके हेतुरूप उत्तम कर्मको पाते हैं, वह ध्यानके फलकी प्राप्तिके अंशवाले निश्चलसे होजाते हैं और जो क्षुद्र कहिये धनादिसे

गौरवके एक अंशको भी प्राप्त नहीं हुए हैं वह कलही चुगलखोर और दूसरोंके दोष उघाड़नेवाले होते हैं तथा जो प्रभु हैं वह ध्यान फलकी प्राप्तिके अंशवाले निश्चल से ही होते हैं इसप्रकार ध्यानका निश्चलतारूप फलसे गौरव देखनेमें आता है, इसकारण ध्यानकी ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद् ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद् भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( ध्यानम् ) ध्यानको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( यावत् ) जहांतक ( ध्यानस्य, गतम् ) ध्यानका विषय है ( तत्र ) उसमें (अस्य) इसकी ( कामचारः ) यथेच्छ गति (भवति) होती है ( यः ) जो ( ध्यानम् ) ध्यानको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ( ध्यानात् ) ध्यानसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदने बूझा ( ध्यानात् ) ध्यानसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति, वाव ) है ही ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा (तत्) उसको ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये ( इति ) ऐसा नारदने कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो इस ध्यानको ब्रह्म मानकर उपासना करता है, उसकी ध्यानके विषयमात्रमें इच्छानुसार गति होजाती है। नारदजीने बूझा कि—क्या ध्यानसे बढ़कर भी कोई पदार्थ है सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि-हाँ अवश्य है, तब नारदजीने कहा, कि-उसका भी मुझे उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

विज्ञानं वाव ध्यानाद् भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳसर्पदेवजनविद्यां दिवञ्च पृथिवीञ्च वायुञ्चाऽऽकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीन् श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाऽहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञानम्, वाव) विज्ञान ही (ध्यानात्) ध्यानसे ( भूयः ) अधिकतर है ( विज्ञानेन ) विज्ञानके द्वारा ( वै) निश्चय ( ऋग्वेदम् ) ऋग्वेदको ( विजानाति ) जानता है ( यजुर्वेदको ( सामवेदम् ) सामवेदको ( चतुर्थम् ) चौथे (आथर्वणम्) अथर्वण वेदको ( पञ्चमम् ) पांचवें ( इतिहासपुराणम् ) इतिहास पुराणको ( वेदानाम्, वेदम् ) वेदोंके वेद व्याकरणको (पित्र्यम् श्राद्धकल्पको ( राशिम् ) गणितको ( दैवम् ) उत्पातविद्याको ( निधिम् ) निधिशास्त्रको ( वाकोवाक्यम् ) तर्कशास्त्रको ( एकायनम् ) नीतिशास्त्रको ( देवविद्याम् ) निरुक्तको ( ब्रह्मविद्याम् ) वेदविद्याको ( भूतविद्याम् ) भूततंत्रको ( क्षत्रविद्याम् ) धनुर्वेदको ( नक्षत्रविद्याम् ) ज्योतिषको (सर्पदेवजनविद्याम् ) सर्प, देवता और मनुष्योंकी विद्याको (दिवम्) स्वर्गको (च) और (पृथिवीञ्च)

पृथिवीको भी ( वायुम् ) वायुको ( च ) और ( आकाशञ्च ) आकाशको भी ( आपः ) जलको ( च ) और ( तेजः, च ) तेजको भी ( देवान् ) देवताओंको ( च ) और ( मनुष्यान्, च ) मनुष्योंको भी ( पशून् ) पशुओंको ( च ) और ( वयांसि, च ) पक्षियोंको भी ( तृणवनस्पतीन् ) तृण और वनस्पतियोंको ( श्वापदान् ) हिंसक पशुओंको ( आकीटपतङ्गपिपीलकम् ) कीड़े, पतङ्ग और चींटियोंतकको ( धर्मम् ) धर्मको ( च ) और ( अधर्मञ्च ) अधर्मको भी ( सत्यम् ) सत्यको ( च ) और ( अनृतञ्च ) असत्यको भी ( साधु ) शुभको ( च ) और ( असाधु, च ) अशुभको भी ( हृदयज्ञम् ) हृदयके प्रियको ( च ) और ( अहृदयज्ञञ्च ) हृदयके अप्रियको भी ( अन्नम् ) अन्नको ( च और ( रसञ्च ) रसको भी ( इमम् ) इस ( च ) और ( अमुञ्च ) उस भी ( लोकम् ) लोकको ( विज्ञानेन, एव ) विज्ञानके द्वारा ही ( विजानाति ) जानता है ( इति ) इसकारण ( विज्ञानम् ) विज्ञानको ( उपास्स्व ) उपासना कर ॥ १ ॥

( भावार्थ )-विज्ञान कहिये शास्त्रके अर्थको विषय करनेवाला ज्ञान ही ध्यानसे बढ़कर है, विज्ञानसे ही ऋग्वेदको जानता है तथा यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्ववेद, पाँचवाँ इतिहास पुराण, वेदोंके ज्ञानका साधन व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातविद्या, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूततंत्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्प देवता और मनुष्योंकी विद्या, स्वर्ग, पृथिवी, वायु, अकाश, जल, तेज, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसकपशु, कीट, पतङ्ग, चींटियेंतक धर्म, अधर्म, सत्य, मिथ्या, शुभ, अशुभ, हृदयका प्रिय वा अप्रिय, अन्न, रस, यह लोक और परलोक इन सब

को विज्ञानसे ही जानाजाता है, इसकारण विज्ञानकी ही ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकान् ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद् भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( विज्ञानम् ) विज्ञानको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह ( वै ) निश्चय ( विज्ञानवतः ) विज्ञान वालेके ( ज्ञानवतः ) ज्ञानवालेके ( लोकान् ) लोकोंको ( अभिसिध्यति ) पाता है ( यावत् ) जहांतक ( विज्ञानस्य, गतम् ) विज्ञानका विषय है ( तत्र ) उसमें ( अस्य ) इसकी (यथाकामचारः ) यथेच्छ प्रवृत्ति ( भवति ) होती है (यः) जो (विज्ञानम्) विज्ञानको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ( विज्ञानात् ) विज्ञानसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदने बूझा ( विज्ञानात् ) विज्ञानसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति, वाव ) है ही ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा २

( भावार्थ )-जो विज्ञानको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह शास्त्रविषयक ज्ञान रखनेवालोंके और अन्यविषयोंमें चतुराई रखनेवालोंके प्रसिद्ध लोकोंको पाता है,जो कुछ भी विज्ञानका विषय है उसमें इसकी यथेच्छ प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा कि-क्या विज्ञान

से भी अधिकतर कोई पदार्थ है ? सनत्कुमार ने कहा-हाँ अवश्य है, नारदजीने कहा तो उसको भी कहिये ॥२॥

सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

बलं वाव विज्ञानाद् भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन् परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्त्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतंगपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( बलम्, वाव ) बल ही ( विज्ञानात् ) विज्ञानसे ( भूयः ) अधिकतर है ( एकः, अपि ) एक भी ( बलवान् ) बली ( विज्ञानवताम् ) विज्ञानवालोंके ( शतम् ) सैंकड़ेको ( आकम्पयते ) कम्पायमान कर देता है ( सः ) वह ( यदा ) जब ( बली ) बलवान् ( भवति ) होता है ( अथ ) तो ( उत्थाता ) उठनेवाला ( भवति ) होता है ( उत्तिष्ठन् ) उठताहुआ ( परिचरिता ) सेवा करनेवाला ( भवति ) होता है ( परिचरन् ) सेवा करता हुआ ( उपसत्ता ) पास पहुंचा हुआ ( भवति ) होता है ( उपसीदन् ) समीप पहुंचता हुआ ( द्रष्टा ) देखनेवाला ( भवति ) होता है ( श्रोता, भवति ) सुननेवाला होता है ( मन्ता, भवति ) मनन करनेवाला होता है ( बोद्धा, भवति ) जाननेवाला होता है ( कर्त्ता, भवति ) करनेवाला होता है ( विज्ञाता, भवति ) अनु

भव करनेवाला होता है ( बलेन, वै ) बलसे ( पृथिवी, तिष्ठति ) पृथिवी ठहरी हुई है ( बलेन ) बलसे ( द्यौः ) स्वर्ग ( बलेन ) बलसे ( पर्वताः ) पहाड़ ( बलेन ) बलसे ( देवमनुष्याः ) देव-मनुष्य ( बलेन ) बलसे ( पशवः ) पशु ( च ) और ( वयांसि ) पक्षी ( च ) और ( तृणवनस्पतयः ) तृणवनस्पति ( श्वापदानि ) हिंसक पशु ( आकीटपतङ्गपिपीलकम् ) कीट पतङ्ग और चींटीतक ( बलेन ) बलसे ( लोकः ) लोक ( तिष्ठति ) ठहरा हुआ है ( इति ) इसकारण ( बलम् ) बलको ( उपास्व ) उपासना कर ॥१॥

( भावार्थ )-बल कहिये शरीरका सामर्थ्य ही विज्ञान से बढ़कर है, क्योंकि-एक भी बलवान् पुरुष सौ विज्ञान वालोंको कम्पायमान करदेता है, पुरुष जब बलवान् होता है तब ही उठसकता है, उठकर ही आचार्यकी सेवा कर सकता है, सेवा करनेपर ही समीप पहुँचकर गुरुका प्यारा होसकता है, एकाग्रताके साथ उनका दर्शन पासकता है, उनके उपदेशको सुनसकता है, उसकी सम्भवता असंभवताके विषयमें मनन करसकता है, मनन करके उसके तत्त्वको जान सकता है, तदनन्तर उसका अनुष्ठान करने वाला और उसके फलका अनुभव करनेवाला होता है यह सब बलके ही आधार पर होता है, बलसे ही पृथिवी ठहरीहुई है, बलसे ही आकाश, स्वर्ग, पहाड़, शम दम आदि सम्पन्न देवसमान मनुष्य पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक, पशु, कीट, पतंग और चींटियेंतक ठहरीं हुई हैं अधिक क्या कहें यह सब लोक बलसे ही ठहरा हुआ है, इसकारण बलको ब्रह्म मानकर उपासना कर ॥

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य

कामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति

भगवो बलाद् भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह (यः) जो (बलम्) बलको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( यावत् ) जहाँतक ( बलस्य, गतम् ) बलका विषय है (तत्र) उसमें ( अस्य ) इसकी ( कामचारः ) यथेच्छगति (भवति) होती है ( यः ) जो ( बलम् ) बलको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मान कर ( उपास्ते ) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (बलात्) बलसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदने बूझा ( बलात् ) बलसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति, वाव ) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने उत्तर दिया (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) यह नारदने कहा २

( भावार्थ )-जो बलको ब्रह्म मानकर उपासना करता है उसकी बलके विषय मात्रमें गति होजाती है। नारद जीने कहा, कि-क्या कोई पदार्थ बलसे भी अधिक है सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि-हाँ है, इसपर नारदजीने कहा, कि-तो मुझे उसका भी उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः

अन्नं वाव बलाद् भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्रीर्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्त्ताऽविज्ञाता भवत्यथान्नस्याऽऽये द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति भवत्यन्नमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अन्नम्, वाव ) अन्न ही ( बलात् ) बलसे ( भूयः ) अधिकतर है ( तस्मात् ) तिससे ( यद्यपि )जो

( दश, रात्रीः ) दशरात्र पर्यन्त ( न ) नहीं ( अश्नीयात् ) खाय ( अथवा ) या ( यदि ) जो (जीवेत्) जिये (उ, ह) तो अवश्य ही (अद्रष्टा) न देखनेवाला (अश्रोता) न सुननेवाला (अमन्ता) मनन न करनेवाला ( अबोद्धा ) न समझनेवाला ( अकर्ता ) न करनेवाला ( अविज्ञाता ) अनुभव न करनेवाला (भवति) होता है ( अथ ) और ( अन्नस्य ) अन्नकी ( आये ) प्राप्ति होनेपर ( द्रष्टा ) देखनेवाला ( भवति ) होता है ( श्रोता ) सुननेवाला ( भवति ) होता है ( मन्ता ) मनन करनेवाला ( भवति ) होता है ( बोद्धा ) समझनेवाला ( भवति ) होता है (विज्ञाता) फलके अनुभववाला ( भवति ) होता है ( इति ) इसकारण (अन्नम्) अन्नकी ( उपास्स्व ) उपासना कर ॥ १ ॥

( भावार्थ )—बलका कारण होनेसे अन्न ही बलसे अधिकतर है। क्योंकि, अन्न बलका कारण है, इससे यदि कोई दश रात तक भोजन न करे तो बलकी हानि होकर मरजाता है, और यदि जीता भी रहजाता है तो बलकी अत्यन्त न्यूनता होजानेके कारण देख नहीं सकता सुन नहीं सकता, मनन नहीं कर सकता, समझ नहीं सकता, अनुष्ठान नहीं कर सकता, तथा फलका अनुभव भी नहीं कर सकता और यदि उसको फिर अन्न मिल जाय तो देखने लगता है, सुनने लगता है, मनन करने लगता, समझने लगता है, काम करने लगता है, यह देखने आदिकी क्रिया अन्नके अधीन है, इसकारण अन्नकी ब्रह्म बुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्ते ऽन्नवतो वै स लोकान् पानवतो ऽभिसिद्ध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति

भगवोऽन्नाद् भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( अन्नम् ) अन्नको ( ब्रह्म इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सः ) वह ( वै ) निश्चय ( अन्नवतः ) अन्नवाले ( पानवतः ) जलवाले ( लोकान् ) लोकोंको ( अभिसिध्यति ) पाता है ( यावत् ) जहांतक ( अन्नस्य ) अन्नका ( गतम् ) विषय है ( तत्र ) तहां ( अस्य ) इसकी (यथाकामचारः) इच्छानुसार गति ( भवति ) होती है ( यः ) जो (अन्नम् ) अन्नको ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ( अन्नात् ) अन्नसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदजीने कहा ( अन्नात् ) अन्न से ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति, वाव ) है ही ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने उत्तर दिया (तत् ) उसको ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये (इति) ऐसा नारदजीने कहा ॥ २॥

( भावार्थ ) जो अन्नको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह अधिक अन्न और जलवाले लोकोंको पाता है। जहाँतक भी अन्नका विषय है उसमें उसकी प्रवृत्ति होती है। नारदजीने बूझा, कि-हे भगवन्! क्या अन्न से बढ़कर भी कोई पदार्थ है ? सनत्कुमारजीने उत्तर दिया, कि-हां है, नारदजीने कहा, कि-तो मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

आपो वावान्नाद्भूयस्यस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राण अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा

भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्त्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद् द्यौर्यत्पर्वता यद् देवमनुष्या यत्पशवश्च वयाँसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं आप एवेमा मूर्त्ता अप उपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आपः, वाव ) जल ही ( अन्नात् ) अन्नसे ( भूयस्यः ) अधिकतर है ( तस्मात् ) तिससे ( यदा ) जब ( सुवृष्टिः ) सुवर्षा ( न ) नहीं ( भवति ) होती है ( अन्नम् ) अन्न ( कनीयः ) थोड़ा ( भविष्यति ) होगा ( इति ) ऐसा मानकर ( प्राणाः ) प्राण ( व्याधीयन्ते) दुःखित होते हैं (अथ) अनन्तर ( यदा ) जब ( सुवृष्टिः ) सुवर्षा ( भवति ) होती है ( अन्नम् ) अन्न ( बहु ) बहुतसा ( भविष्यति ) होगा (इति) ऐसा मानकर ( प्राणाः ) प्राण ( आनन्दिनः ) आनन्दयुक्त ( भवन्ति ) होते हैं ( आपः, एव ) जल ही (इमाः) ये ( मूर्त्ताः ) मूर्त्तिमान् हैं ( या ) जो ( इयम् ) यह ( पृथिवी ) पृथिवी है (यत्) जो ( अन्तरिक्षम् ) आकाश है ( यत् ) जो ( द्यौः ) स्वर्ग है( यत् )जो ( पर्वताः ) पहाड़ हैं (यत्) जो (देवमनुष्याः) देवमनुष्य है ( यत् ) जो ( पशवः ) पशु हैं ( च) और (वयांसि) पक्षी हैं ( च ) और ( तृणवनस्पतयः ) तिनुके तथा वनस्पति ( श्वापदानि ) हिंसक पशु ( आकीटपतङ्गपिपीलकम् ) कीट पतङ्ग और चींटी पर्यन्त ( इमाः ) ये (मूर्त्ताः) मूर्त्तिमान् ( आपः एव ) जल ही हैं ( इति ) इसकारणसे (अपः) जलको (उपास्व) उपासना कर ॥ १ ॥

( भावार्थ )-अन्नोत्पत्तिका कारण होनेसे जल ही अन्नसे अधिकतर है, इसकारण ही जब सुवर्षा नहीं होती है तब अन्न थोड़ा होगा ऐसा मानकर प्राणी दुःखी

होते हैं और जब सुवर्षा होती है तब बहुतसा अन्न उत्पन्न होगा ऐसा मानकर प्राणी सुखी होते हैं। आकारवाले अन्नकी जलसे उत्पत्ति होती है, इस कारण जल ही इन भिन्न मूर्त्तियोंके आकारमें दीख रहा है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, पहाड़, देवमनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक पशु और कीट, पतंग, तथा चींटी पर्यन्त जो कुछ हैं ये सब जलकी ही मूर्त्तियें हैं, इस कारण जलको ही ब्रह्म मानकर] उसकी उपासना कर १

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्ते आप्नोति सर्वान् कामाꣳस्तृप्तिमान् भवति, यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह ( यः ) जो ( अपः ) जलको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( सर्वान् ) सब ( कामान् ) मनोरथोंको ( आप्नोति ) पाता है ( तृप्तिमान् ) तृप्त ( भवति ) होता है ( यावत् ) जहांतक ( अपाम् ) जलोंका ( गतम् ) विषय है ( तत्र ) उसमें ( अस्य ) इसकी ( यथाकामचारः ) यथेच्छ गति ( भवति ) होती है (यः) जो (अपः) जलको (ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ! ( अद्भ्यः ) जलसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा नारदने बूझा (अद्भ्यः ) जलसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति वाव) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने उत्तर दिया ( तत् ) उसको ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा ॥२॥

( भावार्थ )-जो जलको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह सकल मूर्त्तिमान् विषयोंको पाता है, तृप्त रहता है, जहां तक जलका विषय है उसमें इसकी यथेच्छगति होती है, नारदजीने कहा कि-हे भगवन् ! क्या जलसे भी बढ़कर कोई पदार्थ है सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि-हां है, नारदजीने कहा कि, तो मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याऽऽकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽऽथापः सृजते तेज उपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तेजः, वाव ) तेज ही ( अद्भ्यः ) जलसे ( भूयः ) अधिकतर है ( वै ) निश्चय (तत्) वह (एतत्) यह ( वायुम् ) वायुको ( आगृह्य ) निश्चल करके ( आकाशम् ) आकाशको ( अभितपति ) चारों ओरसे व्यापकर तपता है ( तत् ) उसको ( निशोचति ) तपाता है ( नितपति ) तपता है ( वै ) निश्चय ( वर्षिष्यति ) वरसेगा ( इति ) ऐसा ( आहुः ) कहते हैं (इति) इसप्रकार (तेजः एव) तेज ही ( तत्पूर्वम् ) उस से पहले ( दर्शयित्वा ) दिखाकर ( अथ ) अनन्तर ( अपः ) जलको ( सृजते ) रचता है ( तत् ) सो (एतत्) यह ( ऊर्ध्वाभिः ) ऊँची ( च ) और ( तिरश्चाभिः, च ) तिरछी भी ( विद्युद्भिः )

बिजलियोंसे (आह्लादाः) शब्दोंको (चरन्ति) करते हैं (तस्मात्) जिससे (विद्योतते) बिजली चमकती है (स्तनयति) गरजता है (वर्षिष्यति) बरसेगा (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (वै) निश्चय (तेजः,एव) तेज ही (तत्पूर्वम्) उससे पहले (दर्शयित्वा) दिखाकर (अथ) अनन्तर (अपः) जलको (सृजते) रचता है (इति) इसकारण (तेजः) तेजको (उपास्स्व) उपासना कर॥१॥

(भावार्थ) जलका कारण होनेसे तेज ही जलसे बढ़कर है,यह तेज वायुको निश्चल करके आकाशमें चारों ओर भरजाता है, उस समय जगत् तपने लगता है, शरीर गरमीसे घबड़ा उठते हैं, तब लोग कहते हैं कि, वर्षा अवश्य होगी,इस प्रकार तेज ही पहले अपने स्वरूप को दिखाकर पीछे जलोंकी रचना करता है और तेज वर्षाके लिये ऊँची तिरछी बिजलियोंके साथ गरजता है तब बिजली चमकती, मेघ गरजता है, अतः वर्षा अवश्य ही होगी, ऐसा लोग कहा करते हैं, इसप्रकार तेज ही पहले अपने स्वरूपको दिखाकर पीछे जलको रचता है इस कारण तेजको ब्रह्म जानकर उपासना कर ॥ १ ॥

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान् भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यः) जो (तेजः) तेजको (ब्रह्म इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (वै) निश्चय (तेजस्वी) तेजस्वी होता है (तेजस्वतः)

तेजवाले ( भास्वतः ) प्रकाशवाले ( अपहततमस्कान् ) जिन्होंने अन्धकारको दूर करदिया है ऐसे ( लोकान् ) लोकोंको ( अभिसिध्यति ) पाता है ( यावत् ) जहांतक ( तेजसः ) तेजका ( गतम् ) विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) यथेच्छ गति ( भवति ) होती है ( यः ) जो ( तेजः ) तेजको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् ( तेजसः ) तेजसे ( भूयः) बढ़कर (अस्ति) है ( इति ) ऐसा नारदजीने बूझा ( तेजसः ) तेजसे ( भूयः ) अधिकतर (अस्ति, वाव) अवश्य ही है (इति) ऐसा सनत्कुमारने उत्तर दिया ( तत् ) उसको ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा नारदजीने कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ ) जो तेजको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह तेजोमय, प्रकाशवान् तथा अन्धकार एवं अज्ञान राग आदिको दूर करनेवाले लोकोंमें पहुँचता है, जहां तक तेजका विषय है उसमें इसकी यथेच्छ प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा, कि-हे भगवन् ! क्या तेजसे बढ़कर भी कोई पदार्थ है ?, सनत्कुमारने कहा, हां अवश्य है, नारदजीने कहा कि,तो आप मुझे उसका भी उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचंद्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आकाशः वाव) आकाश ही (तेजसः)

तेजसे ( भूयान् ) अधिकतर है ( वै ) निश्चय ( आकाशे ) आकाशमें (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य चन्द्रमा (उभौ, दोनों ( विद्युत् ) बिजली ( नक्षत्राणि ) तारागण ( अग्निः ) अग्नि [ अस्ति ] है ( आकाशेन ) आकाश के द्वारा ( आह्वयति ) पुकारता है (आकाशेन) आकाशके द्वारा (शृणोति) सुनता है (आकाशेन) आकाशके द्वारा (प्रतिशृणोति)प्रति शब्दको सुनता है (आकाशे) आकाशमें ( रमते ) क्रीड़ा करता है ( ( आकाशे ) आकाशमें ( न, रमते ) क्रीड़ा नहीं करता है ( आकाशे ) आकाश में ( जायते ) उत्पन्न होता है ( आकाशम्, अभिजायते ) आकाश के प्रति अंकुर आदि उत्पन्न होता है ( इति ) इसकारण (आकाशम् ) आकाशको ( उपास्व ) उपासना कर ॥१॥

(भावार्थ) आकाश वायु सहित तेजका कारण है, अतः आकाश ही तेजसे अधिकतर है,आकाशमें सूर्य, चन्द्रमा, बिजली, तारागण और अग्नि रहते हैं, आकाशके द्वारा एक दूसरेको बुलाता है दूसरेकी कही बातको सुनता है और आकाशको सहायता से ही प्रतिध्वनिको सुनता है, आकाशमें सब परस्पर क्रीड़ा करते हैं और कभी प्रिय-वियोग होजाने पर आकाशमें क्रीड़ा नहीं करते आकाश में प्राणी उत्पन्न होते हैं और आकाशमें ही अंकुर आदि की उत्पत्ति होती है, अतः आकाशकी ब्रह्मबुद्धि से उपासना कर ॥ १ ॥

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्ते आकाशवतो वै स लोकान् प्रकाशवतोऽसंबाधानुरुगायवतोऽभि-सिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथा-कामचारो भवति यः आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति

भगव आकाशाद् भूय इत्याकाशाद्वाव भूयो-
स्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( आकाशम् ) आकाशको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है ( सः ) वह ( वै ) निश्चय (आकाशवतः ) विस्तारवाले वाले ( प्रकाशवतः ) प्रकाशवाले ( असम्बाधान् ) जिनमें परस्पर को पीड़ा न हो ऐसे ( उरुगायवतः ) विस्तारयुक्त मार्गवाले ( लोकान् ) लोकोंको ( अभिसिध्यति ) पाता है ( यावत् ) जहां तक ( आकाशस्य ) आकाश का ( गतम् ) विषय है ( तत्र ) उसमें ( अस्य ) इसकी ( यथाकामचारः ) यथेच्छ प्रवृत्ति (भवति) होती है ( यः ) जो ( आकाशम् ) आकाशको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् (आकाशात्) आकाशसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति ) है (इति) ऐसा कहा (आकाशात्) आकाशसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति वाव ) है ही (इति) ऐसा उत्तर दिया ( तत् ) उसको ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा नारदजीने कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जो आकाशको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह विस्तीर्ण, प्रकाशमय, परस्पर की पीड़ासे रहित और बड़े २ मार्गोंवाले लोकोंको पाता है, जो कुछ आकाशका विषय है उसमें इसकी यथेच्छ प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा कि हे भगवन्! क्या आकाशसे बढ़कर भी कोई पदार्थ है? सनत्कुमारने उत्तर दिया कि हां अवश्य ही है, इसपर नारदजीने कहा कि, तो मुझे उसका भी उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः

अंकाशाद्भूयान् इति लिंगव्याप्तिरेन दृष्टव्याः ॥ इति शंकरः ॥



स्मरो वावाकाशाद् भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न स्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन् विजानीरन् यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन् स्मरेण वै पुत्रान् विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्मरः, वाव) स्मरण ही (आकाशात्) आकाश से ( भूयः ) अधिकतर है ( तस्मात् ) तिससे ( यदि ) जो ( बहवः ) बहुतसे ( अपि ) भी ( आसीरन् ) बैठे हों ( न, स्मरन्तः ) स्मरण न करते हुए ( ते ) वे ( कंचन ) कुछ ( नैव ) कदापि नहीं ( शृणुयुः ) सुनेंगे ( न, मन्वीरन् ) न मनन करेंगे ( न, विजानीरन् ) न जानेंगे ( यदा, वाव ) जब ही ( ते ) वे ( स्मरेयुः ) स्मरण करें ( अथ ) अनन्तर (मन्वीरन) मनन करें ( अथ ) अनन्तर ( विजानीरन् ) जानें ( स्मरेण, वै ) स्मरण से ही ( पुत्रान् ) पुत्रोंको ( विजानाति ) जानता है ( स्मरेण ) स्मरणसे ( पशून् ) पशुओंको [ विजानाति ] जानता है (इति) इसकारण ( स्मरम् ) स्मरणको ( उपास्स्व ) उपासना कर ॥१॥

( भावार्थ )-स्मरणकर्त्ताको स्मरणके होनेसे आकाश आदि सब सार्थक होजाते हैं, इसलिये स्मरण ही आकाशसे अधिकतर है, इसी कारण यदि बहुतसे पुरुष इकट्ठे होकर बोलते हुए बैठे हों, परन्तु उनको स्मरण न हो तो वे एक भी शब्दको नहीं सुनते हैं, न उसका मनन करते हैं और न उसको जानते ही हैं, परन्तु यदि वे श्रोतव्य आदिका स्मरण करें तो वे उसको सुनते हैं, मनन करते हैं और जानते हैं । स्मरणसे ही प्राणी पुत्रोंको जानता है और स्मरणसे ही पशुओंको जानता है, इस कारण स्मरणकी ही ब्रह्मबुद्धिसे उपासना करो ॥ १ ॥

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रा-
स्य यथाकामचारो भवति, यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते-
ऽस्ति भगवः स्मराद् भूय इति, स्मराद्वाव
भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( स्मरम् ) स्मरणको ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते) उपासना करता है ( यावत् ) जहांतक (स्मरस्य) स्मरणका (गतम्) विषय है ( तत्र ) उसमें ( अस्य ) इसकी ( यथाकामचारः ) यथेच्छ गति ( भवति ) होती है ( यः ) जो ( स्मरम् ) स्मरण को ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ! ( स्मरात् ) स्मरणसे ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति ) है ( इति ) ऐसा बूझा (स्मरात् ) स्मरण से ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति,वाव ) है ही (इति) ऐसा उत्तर दिया ( तत् ) उसको ( भगवान् ) आप ( मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये ( इति ) ऐसा कहा ॥ २ ॥

(भावार्थ )-जो स्मरणको ब्रह्म मानकर उपासना करता है, उसकी स्मरणके विषयमात्रमें यथेच्छ प्रवृत्ति होजाती है। नारदजीने कहा कि, हे भगवन् ! क्या स्मरणसे भी अधिक कोई पदार्थ है ? सनत्कुमारजीने उत्तर दिया, कि-हां है, नारदजीने कहा, कि-तो मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः

आशा वाव स्मराद् भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रा-
नधीते कर्माणि कुरुते पुत्राꣳश्च पशूꣳ-
श्चेच्छत इमञ्च लोकममुञ्चेच्छत आशामुपा-
स्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आशा, वाव) आशा ही ( स्मरात् ) स्मरणसे ( भूयसी ) बढ़कर है ( आशेद्धः वै ) आशायुक्त हुआ ही ( स्मरः ) स्मरण करता हुआ ( मन्त्रान् ) मन्त्रोंको (अधीते) पढ़ता है ( कर्माणि ) कर्मोंको ( कुरुते ) करता है ( पुत्रान् ) पुत्रोंको ( च ) और ( पशून्, च ) पशुओंको भी ( इच्छते ) इच्छा करता है ( इमम् ) इस ( च ) और ( अमुम्, च ) उस भी ( लोकम् ) लोकको ( इच्छते ) इच्छा करता है ( इति ) इसकारण ( आशाम् ) आशाको ( उपास्स्व ) उपासना कर ॥१॥

( भावार्थ )-अन्तःकरणमें रहनेवाली आशासे स्मरण करनेयोग्यका स्मरण करता है, इस कारण आशा ही स्मरणसे अधिकतर है, आशायुक्त हुआ प्राणी ही स्मरण करता हुआ ऋगादिके मंत्रोंको पढ़ता है उनके अर्थोंको तथा विधियोंको जानकर फलकी आशासे कर्म करता है, कर्मके फलरूप पुत्रोंको तथा पशुओंको आशासे ही चाहता है, इस लोकको तथा परलोकको भी आशावाला ही चाहता है, अतः आशा स्मरणसे अधिकतर है, इस कारण आशाकी ही ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हाऽस्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्राऽस्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यः ) जो ( आशाम् ) आशाको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते ) उपासना

करता है ( आशया ) आशाके द्वारा ( अस्य ) इसके ( सर्वे ) सब ( कामाः ) अभिलाष ( समृध्यन्ति ) सफल होते हैं ( अस्य ) इसकी ( आशिषः ) आशीर्वाद ( अमोघा, ह ) अमोघ ही ( भवन्ति ) होते हैं ( यावत् ) जहां तक ( आशायाः, गतम् ) आशाका विषय है ( तत्र ) उसमें ( अस्य ) इसकी ( यथाकामचारः ) यथेच्छ प्रवृत्ति ( भवति ) होती है ( यः ) जो ( आशाम् ) आशा को ( ब्रह्म, इति ) ब्रह्म है ऐसा मानकर ( उपास्ते ) उपासना करता है ( भगवः ) हे भगवन् ( आशायाः ) आशा से ( भूयः ) अधिकतर ( अस्ति, वाव ) है ही ( इति ) ऐसा उत्तर दिया ( तत् ) उसको ( भगवान् ) आप ( मे ) मेरे अर्थ ( ब्रवीतु ) कहिये ( इति ) ऐसा कहा ॥ २ ॥

( भावार्थ )—जो आशाको ब्रह्म मानकर उपासना करता है उसके भोग्य विषय आशासे बढ़ते हैं, इसकी सब प्रार्थनायें अवश्य ही सफल होती हैं और जहांतक आशाका विषय है उसमें इसकी यथेच्छ प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा कि हे भगवन्! क्या आशासे भी बढ़कर कोई पदार्थ है? सनत्कुमारने कहा कि हां है तब नारदजीने कहा कि मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्वꣳ समर्पितम्। प्राणः प्राणेन याति: प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राणः आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( प्राणः, वै ) प्राण ही ( आशायाः )

आशासे ( भूयान् ) अधिकतर है ( यथा ) जैसे ( वै ) स्पष्ट ( नाभौ ) नाभिमें ( अराः ) अरे ( समर्पिताः ) बैठाये हुए होते हैं ( एवम् ) इसीप्रकार ( अस्मिन्, प्राणे ) इस प्राणमें (सर्वम्) सब ( समर्पितम् ) स्थापन कराहुआ है (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राणके द्वारा ( याति ) गमन करता है (प्राणः) प्राण (प्राणम्) प्राणको ( ददाति ) देता है ( प्राणाय ) प्राणके अर्थ ( ददाति ) देता है ( प्राणः, ह ) प्राण ही ( पिता ) पिता है ( प्राणः ) प्राण ( माता ) माता है ( प्राणः ) प्राण ( भ्राता ) भाई है ( प्राणः ) प्राण ( स्वसा ) बहिन है (प्राणः) प्राण (आचार्यः) गुरु है ( प्राणः ) प्राण ( ब्राह्मणः ) ब्राह्मण है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—प्राण ही आशासे बढ़कर है, जैसे रथके पहियेकी धुरीमें सब अरे जमाये हुए होते हैं ऐसे ही इस समष्टि प्राणमें सब जगत् स्थित है, प्राण स्वतंत्र होकर प्राणरूप अपनी शक्तिसे चलता है, प्राण प्राणको दान करता है,प्राणके लिये दान करता है,प्राण ही पिता, माता, भाई, बहिन, गुरु और ब्राह्मण है ॥ १ ॥

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाऽऽचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद् भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमसि, आचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह (यदि) जो (पितरम्, वा) पिताको ( मातरम्, वा ) माताको ( भ्रातरम्, वा ) भ्राताको ( स्वसारम्, वा ) बहिनको (आचार्यम्, वा) गुरुको ( ब्राह्मणम्, वा ) ब्राह्मणको ( किञ्चित् ) कुछ ( भृशमिव ) बढ़कर (प्रत्याह )

कहे [ तर्हि ] तो ( एनम् ) इसको ( त्वम् ) तू ( पितृहा, वै ) निःसन्देह पितृहत्यारा ( असि ) है ( त्वम् ) तू ( मातृहा, वै ) निःसन्देह मातृहन्ता ( असि ) है ( त्वम् ) तू ( भ्रातृहा, वै ) निःसन्देह भ्रातृ हन्ता ( असि ) है ( त्वम् ) तू ( स्वसृहा ) निःसन्देह बहिनका हननकर्त्ता (असि) है (त्वम्) तू (आचार्यहा, वै) निःसन्देह गुरुहन्ता (असि) है (त्वम्) तू (ब्रह्महा, वै) निःसन्देह ब्रह्महत्यारा ( असि ) है ( इति) इसकारण (त्वा) तुझको (धिक्, एव ) धिक्कार ही ( अस्तु ) हो ( इति ) ऐसा है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—जो पिता, माता, भाई, बहिन, गुरु वा ब्राह्मणसे कुछ बढ़कर बात ( अनुचित शब्द ) कहता है, उसे समझदार कहते हैं कि—तू निःसन्देह पितृहन्ता, मातृहन्ता, भ्रातृहन्ता, बहनका हननकर्त्ता, गुरुहन्ता वा वा ब्राह्मणहन्ता है, इसकारण तुझे बार २ धिक्कार है २

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहाऽसीति, न मातृहाऽसीति न भ्रातृहाऽसीति न स्वसृहाऽसीति नाऽऽचार्यहाऽसीति न ब्राह्मणहाऽसीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) अनन्तर (उत्क्रान्तप्राणान्) प्राणहीन हुए ( एनान् ) इनको ( यदि ) जो ( शूलेन, अपि ) नोकवाले काठसे भी ( समासम् ) इकट्ठे करके ( व्यतिषम् ) लपट २ करके ( दहेत ) जलावे [ तदा ] उस समय ( एनम् ) इसको ( पितृहा, असि ) पितृहन्ता है ( इति ) ऐसा ( नैव ) नहीं ( मातृहा, असि ) मातृहन्ता है ( इति, न ) ऐसा नहीं (भ्रातृहा, असि ) भ्रातृहन्ता है ( इति, न ) ऐसा नहीं ( स्वसृहा, असि ) बहिनका हननकर्त्ता है ( इति, न) ऐसा नहीं (आचार्यहा, असि) गुरुहन्ता है (इति, न) ऐसा नहीं (ब्राह्मणहा, असि) ब्रह्महत्यारा है ( इति ) ऐसा ( न ) नहीं (ब्रूयुः ) कहते हैं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जिनके प्राण निकल गये हों ऐसे मनुष्यों को यदि कोई नोकदार काष्ठसे इकट्ठे करदेय वा उनके टुकड़े २ करके जलादेय तो उनको—तू पितृहत्यारा है, तू मातृहत्यारा है, तू भ्राताका हननकर्त्ता है, तू बहिन का हत्यारा है, तू गुरुहन्ता है वा तू ब्रह्महत्यारा है ऐसा नहीं कहतेहैं ॥३ ॥

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद् ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राणः, हि, एव) प्राण ही (एतानि) ये ( सर्वाणि ) सब ( भवति ) होता है ( वै ) निश्चय ( सः ) वह ( एषः ) यह ( एवम् ) इसप्रकार ( पश्यन् ) देखताहुआ ( एवम् ) इसप्रकार ( मन्वानः ) मानताहुआ ( एवम् ) इसप्रकार ( विजानन् ) जानताहुआ ( अतिवादी ) सर्वोपरि प्राणात्मवादी ( भवति ) होता है ( चेत् ) जो (तम्) उसके प्रति ( अतिवादी, असि ) अतिवादी है ( इति ) ऐसा ( ब्रूयुः ) कहै ( अतिवादी, अस्मि ) अतिवादी हूं ( इति ) ऐसा ( ब्रूयात् ) कहै ( न, अपह्नुवीत ) छुपाये नहीं ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—इसकारण प्राण ही पिता आदि सब कुछ है, यह प्रसिद्ध प्राणवेत्ता इसप्रकारके फलसे अनुभव करताहुआ, ऐसी युक्तियोंसे चिन्तवन करता हुआ और इसप्रकार निश्चय करताहुआ अतिवादी कहिये नामसे लेकर आकाशपर्यन्त जगत्का अतिक्रमण करके सब जगत्का प्राणरूप आत्मा मैं ही हूं ऐसा कहनेवाला होजाता है, उससे यदि कोई कहे कि—तू अतिवादी है

तो कहदेय कि, हाँ मैं अतिवादी हूं, इस विचारको छुपावे नहीं ॥ ४ ॥

सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति १

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( सत्येन ) सत्यके द्वारा ( अतिवदति ) अतिवाद करता है ( एषः, तु ) यह तो ( वै ) निश्चय ( अतिवदति ) अतिवाद करता है ( भगवः ) हे भगवन् ! ( सः ) वह ( अहम् ) मैं ( सत्येन ) सत्यके द्वारा (अतिवदानि) अतिवाद करता हूं ( इति ) इसप्रकार (सत्यम्, तु, एव) सत्य ही ( विजिज्ञासितव्यम् ) विशेषरूपसे जाननेयोग्य है ( इति ) ऐसा कहा ( भगवः ) हे भगवन् (सत्यम्) सत्यको (विजिज्ञासे) विशेषरूपसे जानना चाहता है ( इति ) ऐसा कहा ॥ १ ॥

( भावार्थ )-प्राणवेत्ता वास्तविक अतिवादी नहीं है. परन्तु जो परमार्थ सत्यसे अतिवाद करता है वह तो अवश्य अतिवाद करता है, ऐसा भगवान् सनत्कुमारने कहा, तब नारदजीने कहा, कि-हे भगवन् ! आपकी शरणमें आया हुआ मैं सत्यसे अतिवाद करूँ, ऐसी युक्ति कीजिये । भगवान् सनत्कुमारने कहा, कि-सत्य विशेषरूपसे जाननेयोग्य है, नारदजीने कहा, कि—हे भगवन् ! मैं सत्यको विशेषरूपसे जानना चाहता हूं १

सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यदा ) जब ( वै ) निश्चय ( विजानाति ) जानता है ( अथ ) अनन्तर ( सत्यम् ) सत्यको ( वदति ) बोलता है ( अविजानन् ) न जानता हुआ (सत्यम्) सत्यको ( न ) नहीं ( वदति ) बोलता है ( विजानन्, एव ) विशेष रूपसे जानता हुआ ही ( सत्यम् ) सत्यको ( वदति ) बोलता है ( विज्ञानम् तु, एव ) विज्ञान ही (विजिज्ञासितव्यम्) विशेष रूपसे जानने योग्य है ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा ( भगवः ) हे भगवन् ( विज्ञानम् ) विज्ञानको ( विजिज्ञासे ) जानना चाहता हूं ( इति ) ऐसा नारदने कहा ॥ १ ॥

( भावार्थ )-सनत्कुमारने कहा, कि-जब विशेष रूप से जानता है तब ही सत्य बोलता है, विशेष रूपसे विना जाने कोई भी सत्य नहीं बोलसकता, लोकमें विशेषरूपसे जानने पर ही सत्य बोला जाता है, इस कारण विज्ञान ही विशेष रूपसे जानने योग्य है। नारदने कहा, कि-हे भगवन्! मैं विज्ञान को ही विशेषरूपसे जानना चाहता हूं ॥ १ ॥

सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः समाप्तः

**यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ-( यदा ) जब ( वै ) निश्चय (मनुते ) मनन करता है (अथ) अनन्तर (विजानाति) जानता है (अमत्वा) विना मनन किये (न) नहीं ( विजानाति ) जानता है ( मत्वा, एव ) मनन करके ही ( विजानाति ) जानता है (मतिः, तु,एव) मनन ही (विजिज्ञासितव्यम्) विशेष रूपसे जानने योग्य है (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा ( भगवः ) हे भगवन् ( मतिम् ) मनन

को ( विजिज्ञासे ) विशेष रूपसे जानना चाहता हूं ( इति ) ऐसा नारदने कहा ॥ १ ॥

( भावार्थ )-सनत्कुमारने कहा कि-जब मनुष्य मनन करता है तब ही विशेष रूपसे जानता है, विना मनन करे नहीं जानता, इस लिये मनन ही विशेष रूपसे जानने योग्य है, नारदने कहा कि-हे भगवन् ! मैं मननको ही विशेष रूपसे जानना चाहता हूं ॥ १ ॥

सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः समाप्तः

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यदा, वै ) जब ( श्रद्दधाति ) श्रद्धा करता है ( अथ ) अनन्तर ( मनुते ) मनन करता है (अश्रद्दधत्) श्रद्धा न करता हुआ ( न ) नहीं ( मनुते ) मनन करता है ( श्रद्दधदेव ) श्रद्धा करता हुआ ही ( मनुते ) मनन करता है ( श्रद्धा, तु, एव ) श्रद्धा ही ( विजिज्ञासितव्या ) विशेष रूपसे जानने योग्य है (इति) ऐसा सनतकुमारने कहा (भगवः) हे भगवन् ( श्रद्धाम् ) श्रद्धाको ( विजिज्ञासे ) विशेष रूपसे जानना चाहता हूं ( इति ) ऐसा नारदने कहा ॥ १ ॥

( भावार्थ ) सनत्कुमारने कहा कि जब श्रद्धा करता है तब ही मनन करता है, विना श्रद्धाके कोई भी मनन नहीं करता, इस लिये श्रद्धा ही विशेष रूपसे जानने योग्य है। नारदने कहा, कि-हे भगवन् ! मैं श्रद्धा को ही विशेष रूपसे जानना चाहता हूं ॥ १ ॥

सप्तदशाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः समाप्तः

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्

दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति १

अन्वय और पदार्थ-(यदा, वै) जब ( निस्तिष्ठति ) निष्ठा करता है ( अथ ) अनन्तर ( श्रद्दधाति ) श्रद्धा करता है (अनिस्तिष्ठन् ) निष्ठा न करता हुआ ( न ) नहीं ( श्रद्दधाति ) श्रद्धा करता है. ( निस्तिष्ठन् ,एव ) निष्ठा करता हुआ ही (श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है ( निष्ठा, तु, एव) निष्ठा ही (विजिज्ञासितव्या) विशेष रूपसे जानने योग्य है ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा ( भगवः ) हे भगवन् ( निष्ठाम् ) निष्ठा को (विजिज्ञासे ) विशेष रूपसे जानना चाहता हूँ ( इति ) ऐसा नारदने कहा ॥ १ ॥

( भावार्थ )-जब निष्ठा करता है तब ही श्रद्धा करता है, जिसको निष्ठा न हो वह श्रद्धा कर ही नहीं सकता इसलिये निष्ठा ही विशेष रूपसे जानने योग्य है ऐसा सनत्कुमारने कहा, तब नारदजीने कहा, कि-हे भगवन्! मैं निष्ठाको जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य विंशः खण्डः समाप्तः

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाऽकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यदा, वै ) जब ( करोति ) करता है ( अथ ) अनन्तर ( निस्तिष्ठति ) निष्ठा करता है (अकृत्वा) विना किये ( न ) नहीं (निस्तिष्ठति ) निष्ठा करता है (कृत्वा, एव ) करके ही ( निस्तिष्ठति ) निष्ठा करता है (कृतिः,तु,एव) कृति ही (विजिज्ञासितव्या) विशेष रूपसे जानने योग्य है (इति) ऐसा कहने पर ( भगवः ) हे भगवन् ! ( कृतिम् ) कृतको ( विजिज्ञासे ) जानना चाहता हूं ( इति ) ऐसा कहा ॥ १ ॥

( भावार्थ )-सनत्कुमारने कहा, कि-यत्न के साथ गुरुसेवा आदि करने पर ही निष्ठा उत्पन्न होती है, गुरुसेवा आदि कृति विना किये निष्ठा उत्पन्न होती ही नहीं, इसलिये यत्नरूप कृति ही विशेष रूपसे जानने योग्य है, नारदने कहा कि-हे भगवन् ! यत्नरूप कृतिको ही जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः समाप्तः

**यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नाऽसुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखन्त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति॥१॥**

अन्वय और पदार्थ-( यदा, वै ) जब ( सुखम् ) सुखको (लभते) पाता है (अथ) अनन्तर (करोति) करता है (असुखम्) असुखको ( लब्ध्वा ) पाकर ( न ) नहीं ( करोति ) करता है ( सुखम्, एव ) सुखको ही ( लब्ध्वा ) पाकर ( करोति )करता है ( सुखम्, तु, एव) सुख ही ( विजिज्ञासितव्यम् ) जानने योग्य है ( इति ) ऐसा कहने पर ( भगवः ) हे भगवन् ! ( सुखम् ) सुखको ( विजिज्ञासे ) जानना चाहता हूं (इति) ऐसा कहा ॥१॥

( भावार्थ )-जब गुरुसेवामें सुख पाता है तब ही परमसुख पानेका अभिलाष रखकर लोकसेवामें यत्न करता है, आगेको मुझे दुःख मिले ऐसा समझकर कोई भी यत्न नहीं करता है, भविष्यमें सुख पानेकी आशा रखकर ही कृति करता है, इस कारण सुख ही विशेष रूपसे जानने योग्य है, नारदने कहा, कि-हे भगवन् ! मैं सुखको ही जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः समाप्तः

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( यः, वै ) जो ( भूमा ) निरतिशय है ( तत् ) वह ( सुखम् ) सुख है ( अल्पे ) अल्पमें ( सुखम् ) सुख ( न ) नहीं ( अस्ति ) है ( भूमा, एव ) निरतिशय ही ( सुखम् ) सुख है ( भूमा, तु, एव ) निरतिशय ही (विजिज्ञासितव्यः ) जाननने योग्य है ( इति ) ऐसा कहने पर ( भगवः ) हे भगवन् ( भूमानम् ) निरतिशयको (विजिज्ञासे) जानना चाहता हूं ( इति ) ऐसा कहा ॥ १ ॥

( भावार्थ )-जो भूमा कहिये सबसे अधिक है ( निरतिशय ) है वही सुख है, अल्प अधिक तृष्णाका हेतु है और तृष्णा दुःखका बीज है, इस कारण अल्पमें सुख नहीं है। जिसमें तृष्णा आदि दुःखके बीजका होना संभव ही नहीं है, ऐसा निरतिशय वा भूमा ही सुख है, वह ही विशेष रूपसे जानने योग्य है, ऐसा सनत्कुमारने कहा तब नारदजीने कहा, कि-हे भगवन्! मैं भूमा वा निरतिशयको जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः समाप्तः

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति॥१॥

अन्वय और पदार्थ-( यत्र ) जिसमें ( अन्यत् ) अन्यको

( न ) नहीं ( पश्यति ) देखता है ( अन्यत् ) अन्यको ( न ) नहीं ( शृणोति ) सुनता है ( अन्यत् ) अन्यको ( न ) नहीं ( विजानाति ) जानता है ( सः ) वह ( भूमा ) निरतिशय है ( अथ ) और ( यत्र ) जिसमें ( अन्यत् ) औरको ( पश्यति ) देखता है ( अन्यत् ) औरको ( शृणोति ) सुनता है ( अन्यत् ) औरको ( विजानाति ) जानता है ( तत् ) वह ( अल्पम् ) अल्प है (यः) जो ( भूमा ) निरतिशय है ( तत् ) वह ( अमृतम् ) अमृत है (अथ) और ( यत् ) जो (अल्पम्) अल्प है (तत्) वह (मर्त्यम्) नाशवान् है [ इति ] ऐसा कहने पर ( भगवः ) हे भगवन् ! (सः) वह ( कस्मिन् ) किसमें ( प्रतिष्ठितः ) स्थित है ( इति ) ऐसा प्रश्न किया ( स्वे ) अपनी ( महिम्न ) विभूतिमें ( यदि वा ) पक्षान्तर में ( महिम्नि ) विभूतिमें (न) नहीं (इति) ऐसा उत्तर दिया ॥१॥

( भावार्थ )- जिस तत्त्वमें अन्य अन्यसे अन्यको नहीं देखता है, अन्यको नहीं सुनता है, अन्यका मनन नहीं करता है और अन्यको विशेष रूपसे नहीं जानता है अर्थात् जो संसारके सकल व्यवहारसे रहित है वह भूमा है और जिस अविद्यामें अन्य अन्यसे अन्यको देखता है, अन्यको सुनता है, अन्यका मनन करता है और अन्यको विशेषरूपसे जानताहै अर्थात् जिसमें दर्शन आदि संसारका व्यवहार है वह अल्प कहिये अज्ञानकाल में रहनेवाला है और इसीकारण वह स्वप्नके पदार्थ की समान नाशवान् है, उससे विपरीत जो प्रसिद्ध भूमा है वह अविनाशी है और जो परिच्छिन्न है वह विनाशी है, ऐसा सनत्कुमारजीने कहा तब नारदजीने बूझा, कि-हे भगवन् ! भूमा काहेमें स्थित है ? सनत्कुमारने उत्तर दिया कि-हे नारद ! यदि व्यवहारदृष्टिसे बूझते हो तो वह अपनी विभूतिमें स्थित है और परमार्थदृष्टिसे बूझते हो तो वह विभूतिमें स्थित नहीं है, किंतु आश्रयरहित है॥

गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दास-
भार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि
ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन् प्रतिष्ठित इति २

अन्वय और पदार्थ-( गोअश्वम् ) गौ, घोड़ा ( हस्ति-हिरण्यम् ) हाथी, सोना ( दासभार्यम् ) दास, स्त्री ( क्षेत्राणि) खेत ( आयतनानि ) स्थान ( इह ) यहाँ(महिमा, इति) विभूति है इसप्रकार ( आचक्षते ) कहते हैं ( इति ) इसप्रकार ( अन्य-स्मिन् ) अन्यमें ( अन्यः ) अन्य ( प्रतिष्ठितः ) प्रतिष्ठित है ( एवम् ) ऐसा ( अहम् ) मैं ( न ) नहीं ( ब्रवीमि ) कहता हूं ( ब्रवीमि ) कहता हूं (इति) ऐसा (उवाच,ह)सनत्कुमारने कहा २

( भावार्थ )-सनत्कुमारने कहा, कि-इस लोकमें विभूति और विभूतिमान् परस्पर भिन्न२ रहते हैं। गौ, घोड़ा, हाथी, सोना, दास, स्त्री, खेत और घर आदि लोगोंकी विभूति कहलाते हैं, लोग इन गौ घोड़ा आदि विभूतियोंसे भिन्न होते हैं, मैं भूमा और उसकी विभूति को इसप्रकार परस्पर बिभिन्न नहीं करता हूं। भूमा इस प्रकार अपने से भिन्न महिमामें प्रतिष्ठित नहीं है, किंतु स्वस्वरूप भूत महिमामें ही स्थित है ॥ २ ॥

सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः समाप्तः

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स
दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातोऽ-
हङ्कारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चा-
दहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳ
सर्वमिति १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः, एव ) वह ही ( अधस्तात् )

नीचे है ( सः ) वह ( उपरिष्टात् ) ऊपर है (सः) वह ( पश्चात् ) पश्चिममें है (सः) वह ( पुरस्तात् ) पूर्वमें है ( सः ) वह ( दक्षिणतः ) दक्षिणकी ओर है ( सः ) वह ( उत्तरतः ) उत्तरकी ओर है ( सः, एव ) वह ही ( इदम्, सर्वम् ) यह सब है (इति) ऐसा कहकर ( अथ ) अब (अतः) इसकारण ( अहङ्कारादेशः, एव ) अहङ्कारसे ही कथन होता है (अहम्, एव) मैं ही ( अधस्तात् ) नीचे हूं ( अहम् ) मैं ( उपरिष्टात् ) ऊपर हूं ( अहम् ) मैं (पश्चात्) पश्चिममें हूं (अहम्) मैं ( पुरस्तात् ) पूर्वमें हूं (अहम्) मैं ( दक्षिणतः ) दक्षिणमें हूं ( अहम् ) मैं ( उत्तरतः ) उत्तरमें हूं ( इदम् ) यह ( सर्वम् ) सब ( अहम्, एव ) मैं ही हूं (इति) यह सिद्धान्त है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—वह भूमा ही नीचे है, वही ऊपर है, वही पश्चिममें है, वही पूर्वमें है, वही दक्षिणमें है, वही उत्तरमें है, वही यह सब है, इसप्रकार भूमासे भिन्न कोई वस्तु न होनेसे यह भूमा किसीमें स्थित नहीं है, ऐसा कहकर अब द्रष्टासे अनन्यपनेके ज्ञानके लिये उस भूमाका अहङ्कारसे ही कथन कियाजाता है-मैं ही नीचे हूं, मैं ही ऊपर हूं, मैं ही पश्चिममें हूँ, मैं ही पूर्वमें हूँ, मैं ही दक्षिणमें हूं, मैं ही उत्तरमें हूँ, मैं ही यह सब हूँ १

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो

भवत्यथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाᳫ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अब ( अतः ) इससे ( आत्मादेशः, एव ) आत्मा शब्दसे ही कहाजाता है ( आत्मा, एव ) आत्मा ही ( अधस्तात् ) नीचे है ( आत्मा, उपरिष्टात् ) आत्मा ऊपर है ( आत्मा, पश्चात् ) आत्मा पश्चिममें है (आत्मा, पुरस्तात्) आत्मा पूर्वमें है (आत्मा, दक्षिणतः) आत्मा दक्षिणमें है ( आत्मा, उत्तरतः ) आत्मा उत्तरमें है ( इदम्, सर्वम् ) यह सब ( आत्मा, एव ) आत्मा ही है ( इति ) यह सिद्धान्त है ( सः, वै, एषः ) वह प्रसिद्ध यह ( एवम्, पश्यन् ) इसप्रकार देखता हुआ ( एवं, मन्वानः) इसप्रकार मनन करता हुआ (एवं, विजानन्) इसप्रकार विशेषरूपसे जानता हुआ ( आत्मरतिः ) आत्मामें रमण करने वाला ( आत्मक्रीडः ) आत्माके साथ क्रीड़ा करनेवाला (आत्ममिथुनः ) आत्मामें मिथुनवाला (आत्मानन्दः) आत्मरूप आनन्द वाला ( सः ) वह ( स्वराड् ) स्वराज्यमें अभिषिक्त ( भवति ) होता है ( तस्य ) उसकी ( सर्वेषु, लोकेषु ) सब लोकोंमें (कामचारः ) यथेच्छ प्रवृत्ति ( भवति ) होती है ( अथ ) और ( ये ) जो ( अतः ) इससे ( अन्यथा ) और प्रकार ( विदुः ) जानते हैं ( ते ) वे ( अन्यराजानः ) अन्य राजाओंवाले ( क्षय्यलोकाः) विनाशी लोकोंवाले ( भवन्ति ) होते हैं ( तेषाम् ) उनकी (सर्वेषु, लोकेषु ) सब लोकोंमें ( अकामचारो, भवति ) यथेच्छ प्रवृत्ति नहीं होती है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—अब अहङ्कारसे यदि देहादि संघातकी आशङ्का होय तो उसको दूर करनेके लिये आत्म शब्द से ही भूमाको कहते हैं-आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही

ऊपर है, आत्मा ही पश्चिममें है, आत्मा ही पूर्वमें है, आत्मा ही दक्षिणमें है, आत्मा ही उत्तरमें है और यह सब आत्मा ही है, यह सिद्धान्त है। इस तत्त्वको जानने वाला महात्मा निःसन्देह अन्यरहित परिपूर्ण आत्माको इसप्रकार देखता, इसप्रकार मनन करता और इसप्रकार विशेषरूपसे जानता हुआ आत्मामें ही रति कहिये परम-प्रेम करता है आत्माके साथ ही क्रीड़ा करता है, आत्मा में ही स्त्रीसमागमके सुखका अनुभव करता है, वह आत्मरूप आनन्दवाला विद्वान् आत्मरूप स्वराज्यमें अभिषिक्त होजाता है-उसके ऊपर किसीका शासन नहीं रहता और वह चाहे तिस लोकमें अपनी इच्छानुसार जासकता है तथा जो इस भूमाको ऐसा न देखकर और प्रकारका देखतेहैं, वे दूसरोंके शासनमें चलनेवाले पराधीन होते हैं, उनके लोकोंका शीघ्र ही नाश होजाता है, वे किसी लोकमें भी अपनी इच्छानुसार नहीं जासकते॥ २॥

सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः समाप्तः

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्न-मात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यान-मात्मतश्चित्तमात्मतः सङ्कल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मंत्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तस्य, ह ) तिस ( एतस्य ) इस

( एवं, पश्यतः ) ऐसा देखनेवालेके ( एवं, मन्वानस्य ) ऐसा मनन करनेवालेके ( एवं, विजानतः ) ऐसा जाननेवालेके ( आत्मतः ) आत्मा से ( प्राणः ) प्राण ( आत्मतः ) आत्मासे ( आशा ) आशा ( आत्मतः ) आत्मासे ( स्मरः ) स्मरण ( आत्मतः ) आत्मासे ( आकाशः ) आकाश ( आत्मतः ) आत्मासे ( तेजः ) तेज ( आत्मतः ) आत्मासे ( आपः ) जल ( आत्मतः ) आत्मासे ( आविर्भावतिरोभावौ ) प्रकट होना और अन्तर्धान होना ( आत्मतः ) आत्मासे ( अन्नम् ) अन्न ( आत्मतः ) आत्मासे ( बलम् ) बल ( आत्मतः ) आत्मासे ( विज्ञानम् ) विज्ञान ( आत्मतः ) आत्मासे ( ध्यानम् ) ध्यान ( आत्मतः ) आत्मासे ( चित्तम् ) चित्त ( आत्मतः ) आत्मा से ( सङ्कल्पः ) संकल्प ( आत्मतः ) आत्मासे ( मनः ) मन ( आत्मतः ) आत्मासे ( वाक् ) वाणी ( आत्मतः ) आत्मसे ( नाम ) नाम ( आत्मतः ) आत्मासे ( मन्त्राः ) मन्त्र ( आत्मतः ) आत्मासे ( कर्माणि ) कर्म ( आत्मतः ) आत्मासे ( इदम् ) यह ( सर्वम्, एव ) सब ही [ भवति ] होता है ( इति ) ऐसा सनत्कुमारने कहा ॥ १ ॥

( भावार्थ )-इसप्रकार जो भूमा पुरुषका दर्शन, मनन और अनुभव करते हैं वे आत्मामें ही प्राण, आशा, स्मरण, आकाश, तेज, जल, आविर्भाव तिरोभाव, अन्न, बल, विज्ञान, ध्यान, चित्त, संकल्प, मन, वाणी, नाम, मन्त्र और कर्म आदि सबका ही अनुभव करते हैं ॥१॥

तदेष श्लोको—"न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताॅं सर्वॅं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वशः" इति, स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः, शतञ्च दश चैकश्च सहस्राणि च वि

थ्ँशतिः, आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तथ्ँ स्कन्द इत्याचक्षते तँ स्कन्द इत्याचक्षते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है (पश्यः) ज्ञानी ( मृत्युम् ) मृत्युको (न) नहीं ( पश्यति) देखता है ( रोगम् ) रोगको ( न ) नहीं (उत) और ( दुःखताम् ) दुःखभावको ( न ) नहीं ( पश्यः ) ज्ञानी ( सर्वम् , ह ) सबको ही ( पश्यति ) देखता है (सर्वशः) सब प्रकारसे (सर्वम्) सबको ( आप्नोति ) प्राप्त होता है ( इति ) इसप्रकार ( सः )वह ( एकधा ) एकप्रकारका ( भवति ) होता है ( त्रिधा) तीनप्रकार का ( भवति ) होता है ( पञ्चधा ) पांचप्रकारका (सप्तधा ) सात प्रकार का (च) और (नवधा) नौ प्रकारका (एव) ही (च ) और (पुनः,एव) फिर भी(एकादशः) ग्यारहवां (स्मृतः) कहा है (शतम्) सौ ( च ) और ( दश,च) दश भी (च और ( एकः ) एक ( विंशतिः, च ) वीस भी ( सहस्राणि ) सहस्र ( [भवति] होता है ( आहारशुद्धौ ) भोजनकी शुद्धिमें (सत्त्वशुद्धिः ) अन्तःकरण की शुद्धि ( सत्त्वशद्धौ ) अन्तःकरणकी शुद्धिमें ( ध्रुवा ) अविच्छिन्न ( स्मृतिः ) स्मृति [भवति] होती है ( स्मृतिलम्भे ) स्मृति का लाभ होने पर (सर्वग्रन्थीनाम् ) सकल गांठोंका (विप्रमोक्षः) विशेषरूपसे खुलना होता है ( मृदितकषायाय ) नष्ट होगये हैं कषाय जिसके ऐसे ( तस्मै ) तिस नारदके अर्थ (तमसः) अज्ञान के (पारम्) पारको (भगवान्, सनत्कुमारः) भगवान् सनत्कुमार ( दर्शयति ) दिखाते हैं ( तम् ) उसको ( स्कन्दः, इति ) स्कन्द इस नामसे ( आचक्षते ) कहते हैं ( तम् ) उसको ( स्कन्दः,इति) स्कन्द इस नामसे ( आचक्षते ) हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )—इस विषयमें यह मन्त्र है, कि ज्ञानी मृत्युको नहीं देखता है, रोगको नहीं देखता है, ज्ञानी सबको आत्मरूप ही देखता है, इसकारण सबप्रकारसे सबको पाता है। वह ज्ञानी सृष्टिसे पहले एक प्रकारका होता है, फिर सृष्टिकालमें तेज, जल और पृथिवी ऐसे तीनप्रकारका होजाता है,शब्दादि विषयरूपसे पांचप्रकार का, भू आदि लोकरूपसे सात प्रकारका, और ग्रहरूपसे नौ प्रकारका, वही फिर कर्मेन्द्रियें, ज्ञानेन्द्रियें और मन रूपसे ग्यारह प्रकारका, उसमेंसे हरएककी दश२ वृत्तियें होकर एकसौ दश प्रकारका, दिनरातके श्वास प्रश्वास रूपसे इक्कीस सहस्र छः सौ प्रकारका होता है। आहार की शुद्धिमें शब्दादि विषयोंको राग द्वेष और मोहरहित ग्रहण करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होजाता है, अन्तःकरण की शुद्धिमें भूमारूप आत्माकी अविच्छिन्न स्मृति होती है, और उस स्मृति का लाभ होजाने पर अविद्याकी सकल गांठोंका अत्यन्त विनाश होजाता है, इसलिये आहार की शुद्धि आवश्यक है। अब श्रुति आख्यायिका का उपसंहार करती है, कि-जिसके रागद्वेष आदि दोष रूप कषायोंका नाश होगया है ऐसे नारदजीको भगवान् सनत्कुमारने अज्ञानका पाररूप तत्त्व दिखादिया था, उन सनत्कुमारको ज्ञाता पुरुष स्कन्द नामसे पुकारते हैं, उन को स्कन्द ( स्वामिकार्त्तिकेय ) कहते हैं॥ २॥

इति सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः समाप्तः

॥ सप्तमाध्यायः समाप्तः॥

# अष्टम अध्याय

यद्यपि उत्तम बुद्धिवाले सर्वव्यापक ब्रह्मको जान-सकते हैं, परन्तु मन्दबुद्धिवाले नहीं जानसकते, इसकारण उनको ब्रह्मका निश्चय करानेके लिये हृदयकमलरूप देश का उपदेश करना चाहिये और यद्यपि ब्रह्मतत्त्व वास्तव में निर्गुण है तथापि मन्द बुद्धिवालोंको गुणवान्पना इष्ट होता है अतः उसका सत्यकाम आदि गुणवान्पना भी कहना उचित है। इसके अतिरिक्त यद्यपि ब्रह्मवेत्ताओं को विधिके विना भी स्त्री आदि विषयोंसे विमुखता हो सकती है तथापि अनेक जन्मोंमें विषयसेवनका अभ्यास रहनेके कारण उत्पन्न हुई विषयोंकी तृष्णा सहसा नहीं हटायी जासकती, इस कारण ब्रह्मचर्य आदि साधनोंका विधान करना चाहिये तथा जो आत्माके एकत्वको जानते हैं उनकी दृष्टिमें गन्ता, गमन और गन्तव्यका अभाव होता है, इसकारण देहस्थितिका क्षय होजाने पर जलेहुए ईंधनवाले अग्निकी समान उनकी अपने स्वरूपमें ही स्थिति होती है, परन्तु गन्ता गमन आदि की वासनावाली जिनकी बुद्धि है उनके प्रति हृदयदेशमें गुणवान ब्रह्मकी उपासना करनेवालोंकी जो सुषुम्ना नाड़ीसे गति होती है वह कहनी उचित है, इसके लिये ही इस आठवें अध्यायका आरम्भ होता है-

॥ॐ॥ अथ यदिदमस्मिन्न ब्रह्मपुरे दहरं पुंडरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्त-स्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥१॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अब ( अस्मिन् ) इस ( ब्रह्मपुरे ) ब्रह्मपुरमें ( यत् ) जो ( इदम् ) यह ( दहरम् ) छोटासा ( पुण्डरीकम् ) कमलरूप (वेश्म) घर है (तस्मिन्) उसमें (दहरः) छोटासा ( अन्तराकाशः ) अन्तराकाश है ( तस्मिन् ) उसमें ( यत् ) जो ( अन्तः ) अन्तर् है ( तत् ) वह ( अन्वेष्टव्यम् ) खोजनेयोग्य है (तत्, वाव) वह ही ( विजिज्ञासितव्यम् ) विशेष रूपसे जाननेयोग्य है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-उत्तम बुद्धिवालोंको निर्विशेष ब्रह्मका उपदेश करके अब मन्दबुद्धिवालोंको सविशेष ब्रह्मका उपदेश कियाजाता है, कि-इस ब्रह्मकी प्राप्तिके स्थानरूप शरीरमें जो यह छोटासा हृदयकमलरूप घर है, इसमें और छोटासा अन्तराकाश नामक ब्रह्म है, उसमें जो अन्तर् है वह आश्रयसहित खोजने योग्य है और वही सद्गुरुके आश्रय तथा श्रवण आदि उपायोंसे साक्षात्कार करने योग्य है। तात्पर्य यह है, कि-जिन्होंने हृदयकमल में अपनी इन्द्रियोंका निरोध किया है, जो बाहरी विषयों से विरक्त हैं और जो विशेष रूपसे ब्रह्मचर्य तथा सत्य रूप साधनावाले हैं उनको ही ध्यानके द्वारा हृदयमें ब्रह्म की प्राप्ति होती है औरको नहीं होती है ॥ १ ॥

तं चेद् ब्रूयुर्यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किन्तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तम् ) उसको ( चेत् ) जो (ब्रूयुः) कहें ( अस्मिन् ) इस ( ब्रह्मपुरे ) ब्रह्मपुरमें ( यत् ) जो (इदम्) यह ( दहरम् ) छोटासा ( पुण्डरीकम् ) कमलरूप (वेश्म) स्थान

है ( अस्मिन् ) इसमें ( दहरः ) छोटासा ( अन्तराकाशः ) अन्तराकाश है ( अत्र ) इसमें ( तत् ) वह ( किम् ) क्या ( विद्यते ) है ( यत् ) जो ( अन्वेष्टव्यम् ) खोजना चाहिये ( यद्, वाव ) जो अवश्य ( विजिज्ञासितव्यम् ) जानना चाहिये ( इति ) ऐसा प्रश्न करनेवालोंसे ( सः ) वह ( ब्रूयात् ) कहे ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—ऊपरोक्त उपदेश करनेवाले आचार्यसे यदि शिष्य कहें, कि-इस ब्रह्मपुरमें जो अल्प कमलरूप घर है, उसमें जो अल्पतर अन्तराकाश है, उसमें वह कौनसा तत्त्व है कि-जिसको आश्रयसहित खोजना चाहिये और जिसका साक्षात्कार अवश्य ही करना चाहिये ? उस अल्पतरमें तो कुछ हो नहीं सकता, इस कारण उसको आश्रयसहित खोजनेसे वा जाननेसे कोई फल नहीं है। ऐसा प्रश्न करनेवाले शिष्योंको वह आचार्य यह उत्तर देय कि—॥ २ ॥

यावान् वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन् समाहितमिति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( यावान् ) जितना ( वै ) प्रसिद्ध ( अयम् ) यह ( आकाशः ) आकाश है ( तावान् ) उतना ही ( अन्तर्हृदये ) हृदयके भीतर ( एषः ) यह ( आकाशः ) आकाश है ( अस्मिन् ) इसके ( अन्तरेव ) भीतर ही ( द्यावापृथिवी ) स्वर्ग और पृथिवी ( उभे ) दोनों ( समाहिते ) भले प्रकार स्थित हैं ( अग्निः ) अग्नि ( च ) और ( वायुः, च ) वायु भी ( उभौ )

दोनों (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा (उभौ) दोनों (विद्युत्) बिजली ( नक्षत्राणि ) तारागण ( च ) और ( अस्य ) इसका ( यत् ) जो ( इह ) यहां ( अस्ति ) है ( च ) और ( यत् ) जो ( न ) नहीं ( अस्ति ) है ( तत् ) वह ( सर्वम् ) सब (अस्मिन्) इसमें ( समाहितम् ) भले प्रकारसे स्थित है ॥ ३॥

( भावार्थ )-जितना यह प्रसिद्ध भौतिक आकाश है, उतना ही वा उससे भी अधिक हृदयके भीतर यह ब्रह्म रूप आकाश है, इस बुद्धिरूप उपाधिवाले ब्रह्मरूप आकाशके भीतर ही स्वर्ग और पृथिवी दोनों उत्तमप्रकारसे स्थित हैं, तथा अग्नि और वायु, सूर्य और चन्द्रमा तथा बिजली और नक्षत्र तथा इसलोकमें जो कुछ इस जीव की ममताका विषय विद्यमान है और जो कुछ विद्यमान नहीं है अर्थात् नाशको प्राप्त होगया है वा भविष्यत्में होनेवाला है वह सब इसमें स्थित है ॥ ३ ॥

तं चेद् ब्रूयुरस्मिꣳश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वꣳ समाहितꣳ सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरा वाऽऽप्नोति प्रध्वꣳसते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( चेत् ) यदि ( तम् ) उससे (ब्रूयुः) कहें ( चेत् ) यदि ( अस्मिन् ) इस ( ब्रह्मपुरे ) ब्रह्मपुरमें (इदम्) यह ( सर्वम् ) सब ( समाहितम् ) उत्तम प्रकारसे स्थित है ( च ) और ( सर्वाणि ) सब ( भूतानि ) भूत ( च ) और ( सर्व)सब ( कामाः ) विषय [ समाहिताः ] उत्तमप्रकारसे स्थित हैं [तर्हि] तो (यदा वा) जब (एतत् ) इसको (जरा) वृद्धावस्था (आप्नोति) प्राप्त होती है ( वा ) अथवा ( प्रध्वंसते ) नाशको प्राप्त होता है

( ततः ) तब ( किम् ) क्या ( अतिशिष्यते ) शेष रहता है (इति) ऐसा कहै ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-ऐसा उपदेश करनेवाले आचार्यसे कदाचित् शिष्य प्रश्न करें, कि-यदि इस ब्रह्मपुर शरीरमें स्थित अन्तराकाशमें यह सब उत्तम प्रकारसे स्थित हैं, सकल भूत तथा सकल विषय उत्तम प्रकारसे स्थित हैं तो जिस समय बुढ़ापा आकर इस शरीरको घेरता है अथवा यह शरीर नाशको प्राप्त होता है उस समय क्या शेष रहता है ? देहका नाश होने पर इसके आधारसे रहने वाले उस सबका भी तो नाश होजाता होगा ? इसके उत्तरमें आचार्य यह कहे, कि— ॥ ४ ॥

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन् कामा समाहिता एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवंति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( ब्रूयात् ) कहे (अस्य) इसकी ( जरया ) वृद्धावस्थासे ( एतत् ) यह ( न ) नहीं ( जीर्यति ) जीर्ण होता है ( अस्य ) इसके ( वधेन ) वधसे ( न ) नहीं ( हन्यते ) माराजाता है ( एतत् ) यह ( सत्यम् ) सच्चा ( ब्रह्मपुरम् ) ब्रह्मपुर है ( अस्मिन् ) इसमें ( कामाः ) विषय( समाहिताः ) सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं ( एषः ) यह ( आत्मा ) आत्मा ( अपहतपाप्मा ) पापसे रहित ( विजरः )

वृद्धावस्थासे रहित ( विमृत्युः ) मृत्युरहित ( विशोकः ) शोकशून्य ( विजिघत्सः ) भूखरहित ( अपिपासः ) पिपासाशून्य ( सत्यकामः ) सत्य भोग वाला ( सत्यसङ्कल्पः ) सत्यसङ्कल्प वाला ( अस्ति ) है ( यथा, हि एव ) जिस प्रकार ( इह ) इस लोकमें ( प्रजाः ) प्रजायें ( यथानुशासनम् ) राजाकी आज्ञाके अनुसार ( अन्वाविशन्ति ) वर्ताव करती हैं ( यम्, यम् ) जिस जिस ( अन्तम् ) सीमावाले स्थानको ( यम् ) जिस ( जनपदम् ) देशको ( यम् ) जिस (क्षेत्रभागम् ) क्षेत्रके भागको ( अभिकामाः,भवन्ति ) भोगनेकी इच्छावाली होती हैं ( तम्, तम्, एव ) उस २ को ही ( उपजीवन्ति ) भोगती हैं ॥ ४ ॥

( भावार्थ) -उन शिष्योंके प्रश्नका उत्तर देता हुआ आचार्य कहे, कि-इस शरीरकी जरासे यह अन्तराकाश नामवाला ब्रह्म जीर्ण नहीं होता है और इस शरीरके वधसे यह ब्रह्म मारा नहीं जाता है, यह ब्रह्मपुर सत्यस्वरूप है, इसमें मनुष्य जिन बाहरके विषयोंकी इच्छा करता है वे सब विषय स्थित हैं, इसकारण इसकी प्राप्तिके उपायका अनुष्ठान करो,बाहरी विषयोंकी तृष्णा का त्याग करो, यह ब्रह्मरूप आत्मा धर्म अधर्मरूप पाप से रहित, जरारहित, मृत्युरहित, प्यारे परिवार आदि के वियोगरूप निमित्तवाले मानसिक सन्तापसे रहित. खाने पीनेकी इच्छासे रहित, सत्यभोगवाला और सत्य सङ्कल्पवाला है,स्वराज्यकी कामनावाले पुरुषोंको उचित है कि—सद्गुरुसे, शास्त्रसे, और अपने अनुभवसे इस को अवश्य जाने, इसको न जाननेसे पुण्यफलको भोगने में पराधीनता रहती है, जैसे इसलोकमें प्रजायें अपने राजाकी जैसी आज्ञा होती है उसके अनुकूल वर्ताव करती हैं, वे प्रजाये अपनी बुद्धिके अनुसार जिस २

सोमान्तस्थानकी, जिस २ देशकी और जिस २ क्षेत्र-भागकी इच्छा करती हैं उसको राजाकी आज्ञानुसार ही भोगसकती हैं ॥ ५ ॥

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहाऽऽत्मानमननुविद्य ब्रजन्त्येताꣳश्च सत्यान् कामाꣳस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवत्यथ य इहाऽऽत्मानमनुविद्य ब्रजन्त्येताꣳश्च सत्यान् कामाꣳस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) उसमें ( यथा ) जिसप्रकार ( इह ) यहां ( कर्मजितः ) कर्मसे सम्पादन किया हुआ (लोकः) भोग ( क्षीयते ) नाशको प्राप्त होता है ( एवमेव ) इसीप्रकार ( अमुत्र ) परलोकमें ( पुण्यजितः ) पुण्यसे संपादन कियाहुआ ( लोकः ) भोग ( क्षीयते ) नाशको प्राप्त होता है ( तत् ) उसमें ( ये ) जो ( इह ) यहां ( आत्मानम् ) आत्माको ( च ) और ( एतान् ) इन ( सत्यान्, कामान् ) सत्य भोगोंको (अननुविद्य ) न जानकर ( ब्रजन्ति ) प्रयाण करते हैं (तेषाम्) उनका ( सर्वेषु, लोकेषु ) सब लोकोंमें ( अकामचारः ) अस्वतन्त्रपना ( भवति ) होता है ( अथ ) और ( ये ) जो ( इह ) यहां ( आत्मानम् ) आत्माको ( च ) और ( एतान ) इन ( सत्यान्, कामान् ) सत्य भोगोंको ( अनुविद्य ) अनुभवमें लाकर ( ब्रजन्ति ) प्रयाण करते हैं ( तेषाम् ) उनका ( सर्वेषु, लोकेषु ) सब लोकोंमें (कामचारः) स्वतन्त्रपना ( भवति ) होता है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-उसमें जिसप्रकार इस लोकमें सेवा आदि कर्मके द्वारा प्राप्त किया हुआ ऐश्वर्य-सुखका

उपभोग नाशको प्राप्त होजाता है इसीप्रकार परलोकमें भी पुण्यसे प्राप्त किया हुआ सुखभोग क्षीण होजाता है। उसमें जो यहां आत्माको विना जाने तथा अपने आत्मामें रहेहुए सत्यभोगोंका अनुभव विना किये मरणको प्राप्त होजाते हैं वे सब भोगोंमें पराधीन ही रहते हैं और जो यहाँ आत्मस्वरूपको जानकर तथा अपने आत्मामें रहनेवाले सत्य भोगोंका अनुभव करके मरते हैं उनकी सब लोकोंमें स्वतन्त्र गति होती है ॥६॥

अष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

स यदि पितृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सः ) वह ( यदि ) जो ( पितृलोककामः ) पिताके भोगकी इच्छावाला ( भवति ) होता है [ तर्हि ] तो ( अस्य ) इसके ( सङ्कल्पात्, एव ) सङ्कल्पसे ही ( पितरः ) पितर ( समुत्तिष्ठन्ति ) सम्यक् प्रकारसे उठते हैं ( तेन ) उस ( पितृलोकेन ) पिताके सम्बन्धसे ( सम्पन्नः ) युक्तहुआ ( महीयते ) महिमाका अनुभव करता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-जिसने ब्रह्मचर्य आदि साधनोंके द्वारा अपने हृदयमें आत्माका तथा उसमें रहनेवाले सत्य भोगोंका अनुभव करलिया है वह यदि पितासे प्राप्त होनेवाले सुखको भोगनेकी इच्छा करे तो इसके सङ्कल्प से पिता पितामह आदि आकर इसके साथ उत्तम प्रकार से मिलते हैं और उनसे मिलकर यह महिमाका अनुभव करता है ॥ १ ॥

अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादे-

वास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यदि ) जो ( मातृलोककामः ) माताके संबन्धकी इच्छावाला ( भवति ) होता है [ तर्हि ] तो ( अस्य ) इसके ( सङ्कल्पात्, एव ) सङ्कल्पसे ही ( मातरः ) मातायें ( समुत्तिष्ठन्ति ) सम्यक् प्रकारसे उठती है ( तेन ) उस ( मातृलोकेन ) मातृसम्बन्धसे ( सम्पन्नः ) युक्त होताहुआ ( महीयते ) महिमाका अनुभव करता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )—और यदि वह माताके सम्बन्धी सुख की इच्छा करता है तो इसके सङ्कल्पसे ही मातायें आकर मिलजाती हैं और यह माताओंके सम्बन्धसे युक्त होता हुआ महिमाका अनुभव करता है ॥ २ ॥

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यदि ) जो ( भ्रातृलोककामः ) भ्राताओंके सम्बन्धकी इच्छावाला ( भवति ) होता है [ तर्हि ] तो ( अस्य ) इसके ( सङ्कल्पात्, एव ) सङ्कल्पसे ही ( भ्रातरः ) भाई (समुत्तिष्ठन्ति) सम्यक् प्रकारसे उठते हैं (तेन ) उस ( भ्रातृलोकेन ) भ्रातृसम्बन्धसे ( संपन्नः ) युक्त हुआ ( महीयते ) महिमाका अनुभव करता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-और यदि यह भाइयोंके सम्बन्धी सुख को चाहता है तो इसके सङ्कल्पमात्रसे ही भाई आकर उत्तम प्रकारसे मिलते हैं और यह उनका सम्बन्ध पाकर महिमाका अनुभव करता है ॥ ३ ॥

अथ यदि स्वसृलोककामो भवति संकल्पादेवा-स्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यदि ) जो ( स्वसृ-लोककामः ) बहनोंके संबन्धकी इच्छावाला ( भवति ) होता है ( अस्य ) इसके ( सङ्कल्पात्, एव ) सङ्कल्पसे ही ( स्वसारः ) बहिनें ( समुत्तिष्ठन्ति ) सम्यक् प्रकारसे उठती हैं ( तेन ) उस ( स्वसृलोकेन ) बहनोंके संबन्धसे ( संपन्नः ) युक्त हुआ (मही-यते ) महिमाका अनुभव करता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-और यदि बहनोंसे मिलनेकी इच्छा करता है तो इसके सङ्कल्पमात्रसे बहने आकर मिल जाती हैं और उनके मिलापको पाताहुआ यह महिमा का अनुभव करता है ॥ ४ ॥

अथ यदि सखिलोककामो भवति संकल्पादेवा-स्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यदि ) जो ( सखि-लोककामः ) मित्रोंके सम्बन्धकी इच्छावाला ( भवति ) होता है ( अस्य ) इसके ( सङ्कल्पात्, एव ) सङ्कल्पसे ही ( सखायः ) मित्र ( समुत्तिष्ठन्ति ) सम्यक्प्रकारसे उठते हैं ( तेन ) उस ( सखिलोकेन ) मित्रोंके संबन्धसे ( सम्पन्नः ) युक्त होताहुआ ( महीयते ) महिमाका अनुभव करता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-यदि मित्रोंसे मिलनेकी इच्छा करता है तो इसके सङ्कल्पसे ही मित्र आकर मिलजाते हैं और उन मित्रोंसे मिलता हुआ यह ऐश्वर्यका अनुभव करता है।

अथ यदि गंधमाल्यलोककामो भवति संकल्पा-
देवास्य गंधमाल्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गंधमाल्य-
लोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ६ ॥

( अन्वय और पदार्थ )-( अथ ) और ( यदि ) जो ( गन्धमाल्यलोककामः ) गन्ध मालाओंके भोगकी इच्छावाला ( भवति ) होता है ( अस्य ) इसके (सङ्कल्पात्, एव) कल्पसे ही (गन्धमाल्ये ) गन्ध और मालायें (समुत्तिष्ठतः) सम्यक् प्रकार से उठते हैं ( तेन ) उस (गन्धमाल्यलोकेन) गन्ध और मालाकी प्राप्तिसे ( सम्पन्नः ) युक्त होता हुआ ( महीयते ) महिमाका अनुभव करता है ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-और यदि सुगन्ध तथा पुष्पमालाओंके भोगको चाहता है तो इसके सङ्कल्पसे ही सुगन्ध और पुष्पमालायें आकर प्राप्त होजाती हैं और यह उनका उपभोग करता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥६॥

अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति,संकल्पादेवा-
स्यान्नपाने समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन
सम्पन्नो महीयते ॥ ७ ॥

अन्वय और पदाथ-( अथ ) और ( यदि ) जो (अन्न-पानलोककामः ) अन्नजलको भोगनेकी कामना वाला ( भवति ) होता है ( अस्य ) इसके ( संकल्पात्, एव ) संकल्पसे ही (अन्नपाने ) अन्न जल ( समुत्तिष्ठतः ) प्राप्त होजाते हैं ( तेन) तिस ( अन्नपानलोकेन ) अन्न जलके भोगसे ( सम्पन्नः ) युक्त होता हुआ ( महीयते ) ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥७॥

( भावार्थ )-और यदि अन्न जलके भोगका इच्छुक होता है तो इसके सङ्कल्पमात्रसे अन्न जल मिलजाते हैं और यह उनको भोगता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करताहै

अथ यदि गीतवादित्रादिकामो भवति सङ्कल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यदि ) जो (गीतवादित्रकामः ) गाने बजानेके उपभोगका इच्छुक ( भवति ) होता है (अस्य) इसके ( संकल्पात्, एव ) संकल्पसे ही गीतवादित्रे ) गाने बजाने ( समुत्तिष्ठतः ) प्राप्त होजाते हैं ( तेन ) उस ( गीतवादित्रलोकेन ) गाने बजानेके संबन्धसे ( सम्पन्नः) युक्त होता हुआ ( महीयते ) ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥८॥

( भावार्थ )- और यदि गाने बजाने आदिका उपभोग करना चाहता है तो इसके सङ्कल्पमात्रसे गाना बाजे आदि मिलजाते हैं और यह गाता बजाता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ ८ ॥

अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और (यदि ) जो (स्त्रीलोककामः ) स्त्रीके उपभोगका इच्छुक ( भवति ) होता है (अस्य) इसके ( संकल्पात्, एव ) संकल्पसे ही ( स्त्रियः ) स्त्रियें (समुत्तिष्ठन्ति ) प्राप्त होजाती हैं ( तेन ) तिस (स्त्रीलोकेन ) स्त्रियों के उपभोगसे ( सम्पन्नः ) युक्त होता हुआ ( महीयते ) ऐश्वर्य का अनुभव करता है ॥

( भावार्थ )-और यदि स्त्रियोंके उपभोगका अभिलाषी होता है तो इसके सङ्कल्पमात्रसे स्त्रियें आजाती हैं और यह उनका उपभोग करता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ ९ ॥

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन सम्पन्नो महीयते ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-( यम्, यम् ) जिस जिस ( अन्तम्, अभिकामः ) प्रदेशकी इच्छावाला ( भवति ) होता है ( यम् ) जिस ( कामम् ) भोगको ( कामयते ) चाहता है ( सः ) वह ( अस्य ) इसके ( सङ्कल्पात्, एव ) सङ्कल्पसे ही ( समुत्तिष्ठति ) प्राप्त होजाता है ( तेन ) उससे (सम्पन्नः) युक्तहुआ (महीयते) महिमाका अनुभव करता है ॥ १० ॥

( भावार्थ )-जिस २ प्रदेशको चाहता है और पीछे कहे भोगोंके सिवाय और भी जिस भोगको चाहता है वह इसके सङ्कल्पसे ही प्राप्त होजाती है और उस यथेच्छ पदार्थको पाता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है

अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषाᳫ सत्यानाᳫ सतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( ते ) वे ( इमे ) ये ( सत्याः ) सत्य (कामाः) भोग (अनृतापिधानाः) मिथ्यासे ढके हुए हैं ( तेषाम् ) उन ( सत्यानाम्, सताम् ) सत्य होतेहुओंका ( अनृतापिधानम् ) मिथ्याका आच्छादन है (हि) क्योंकि ( यः, यः ) जो जो ( इह ) यहां ( इतः ) यहांसे ( प्रैति ) चलाजाता है ( तम् ) उसको ( दर्शनाय ) देखनेके लिये ( न ) नहीं ( लभते ) पाता है ॥१॥

( भावार्थ )-अपने आत्मामें स्थित तथा प्राप्त होसकनेवाले ये सत्य भोग, मिथ्या बाहरी विषयोंकी तृष्णासे ढकेहुए हैं, वे सत्य भोग आत्मामें विद्यमान हैं तथापि

उनके ऊपर मिथ्याका परदा पड़ा हुआ है, इसकारण इस प्राणीका जो जो प्रियपुरुष मरकर यहांसे चलाजाता है, उसको फिर यहां देखनेकी इच्छा होनेपर भी नहीं देख पाता है ॥ १ ॥

अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानास्तद्यथाऽपि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि सञ्चरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दत्यनृतेन हि प्रत्यूढाः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( ये च ) जो (अस्य) इसके ( इह ) यहां ( जीवाः ) जीवित हैं ( च ) और ( ये ) जो ( प्रेताः ) मरकर चले गये ( च ) और ( यत् ) जो (अन्यत्,च) और कुछ भी है ( इच्छन् ) चाहता हुआ ( न ) नहीं ( लभते ) पाता है ( तत् ) उस ( सर्वम् ) सबको ( अत्र ) यहां ( गत्वा ) जाकर ( विन्दते ) पाता है ( हि ) क्योंकि ( अत्र ) यहां (अस्य) इसके ( एते ) ये ( सत्याः ) सत्य ( कामाः ) भोग ( अनृतापिधानाः ) मिथ्यासे ढकेहुए हैं ( तत् ) सो ( यथा ) जैसे ( अक्षेत्रज्ञाः ) निधिके स्थानको न जाननेवाले ( निहितम् ) स्थित किये हुए भी ( हिरण्यनिधिम् ) सुवर्णके भण्डारको ( उपर्युपरि ) उसके ऊपर ही ऊपर ( सञ्चरन्तः ) विचरतेहुए ( न ) नहीं ( विन्देयुः ) पासकते हैं ( एवमेव ) इसप्रकार ही ( इमाः ) ये ( सर्वाः ) सब (प्रजाः) प्रजायें (अहरहः) प्रतिदिन (गच्छन्त्यः) जातीहुई ( एतम् ) इस ( ब्रह्मलोकम् ) ब्रह्मलोकको ( न ) नहीं

( विन्दन्ति ) जानती हैं (हि) क्योंकि ( अनृतेन ) मिथ्यासे ( प्रत्यूढाः ) ढकी हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )—इस प्राणीके जो पुत्रादि यहाँ जीवित हैं तथा जो मर चुके हैं और जिस अन्न वस्त्र आदिको चाहता हुआ भी नहीं पाता है, उस सबको हृदयाकाश मेंके ब्रह्ममें उपासनासे पहुँच कर पाजाता है, क्योंकि-इस हृदयाकाशमें इसके ये सत्य भोग मिथ्यासे ढकेहुए विद्यमान हैं। तहां स्वाधीनकी अप्राप्तिमें दृष्टान्त कहते हैं, कि-जिसप्रकार गाढ़े हुए सुवर्णके भण्डारको, जो निधिशास्त्रके द्वारा निधिके स्थानको नहीं पहचानते हैं व उस धनभण्डारके ऊपर ही विचरते हुए भी उस धनभण्डारको नहीं पाते हैं, इसप्रकार ही, अविद्यावाली ये सब प्रजायें इस हृदयाकाश नामक ब्रह्मलोकमें नित्य प्रति सुषुप्तिकालमें पहुँचती हुई भी ब्रह्मको नहीं पाती हैं, क्योंकि-वे पीछे कहे हुए मिथ्याके द्वारा स्वरूपसे बाहर खिची हुई हैं ॥ २ ॥

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तꣳ हृदयमिति तस्मात् हृदयमहरहर्वा एवम्वित् सर्वं लोकमेति ॥ ३ ॥

स्वर्ग

अन्वय और पदार्थ—( सः ) वह ( वै ) प्रसिद्ध ( एषः ) यह ( आत्मा ) आत्मा ( हृदि ) हृदयमें [आकाशशब्देन, उक्तः] आकाश शब्दसे कहागया है ( अयम् ) यह आत्मा ( हृदि ) हृदयमें है ( इति ) इसप्रकार ( तस्य ) उसका ( एतत्, एव ) यह ही ( निरुक्तम् ) निर्वचन है ( तस्मात् ) तिससे ( अयम् ) यह ( हृद ) हृदयरूप है ( एवम्वित् ) ऐसा जाननेवाला ( वै ) निश्चय ( अहरहः ) प्रतिदिन ( स्वर्गम्, लोकम् ) सदा सुखरूप ब्रह्मको ( एति ) पाता है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-यह प्रसिद्ध आत्मा हृदयमें आकाश शब्दसे अर्थात् हृदयाकाश नामसे कहाजाता है । अपने हृदयमें यह आत्मा है, अतः इस हृदयका यही निर्वचन है, इसलिये अपना आत्मा हृदयमें है ऐसा जानो, ऐसा जाननेवाला निःसन्देह प्रतिदिन हृदयमें रहनेवाले सदा सुखरूप ब्रह्मको पाता है ॥ ३ ॥

अथ य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ४

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यः ) जो ( एषः ) यह ( सम्प्रसादः ) सम्प्रसाद है ( अस्मात् ) इस ( शरीरात् ) शरीरसे ( समुत्थाय ) उठकर ( परम् ) उत्तम ( ज्योतिः ) निर्मल रूपको ( उपसम्पद्य ) पाकर ( स्वेन ) अपने (रूपेण) रूप करके ( अभिनिष्पद्यते ) उत्तम प्रकारसे स्थित होता है ( अयम् ) यह ( आत्मा ) आत्मा है ( इति, उवाच, ह ) ऐसा कहा ( अयम् ) यह ( अमृतम् ) अविनाशी है ( अभयम् ) निर्भय है ( एतत् ) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) इसप्रकार ( तस्य ) तिस ( वै ) प्रसिद्ध ( एतस्य ) इस ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मका ( सत्यम्, इति नाम ) सत्य यह नाम है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-जाग्रत् और स्वप्नमें विषय और इन्द्रियों के संयोगसे उत्पन्न हुई मलिनताको जीव सुषुप्तिमें त्याग देता है, इस कारण सुषुप्तिको प्राप्त हुआ जीव सम्प्रसाद अर्थात् सम्यक् प्रकारसे निर्मल हुआ कहलाता है, यह सम्प्रसाद विद्वान् इस शरीरमें आत्मभावको त्याग उत्तम निर्मल ज्योतिः स्वरूपको पाकर अपने स्वरूप

से बड़ी उत्तमताके साथ स्थित होता है, यह आत्मा है, इसप्रकार आचार्यने कहा, यह अविनाशी तथा निर्भय है, यह ब्रह्म है इसमें प्रसिद्ध ब्रह्म का ही नाम सत्य है ॥४॥

तानि हवा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यत् ति तन्मर्त्यमथ यत् यं तेनोभे यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्य-महरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-( सतीयम्, इति ) सतीय ऐसे (तानि) वे ( एतानि ) ये ( वै ) प्रसिद्ध ( त्रीणि ) तीन ( अक्षराणि ) अक्षर हैं ( तत् ) उसमें ( यत् ) जो ( सत् ) स है ( तत् ) वह ( अमृतम् ) अविनाशी है ( यत् ति ) जो त अक्षर है ( तत् ) वह ( मर्त्यम् ) विनाशी है ( अथ ) और ( यत् ) जो ( यम् ) य है ( तेन ) उसके द्वारा ( उभे ) दोनोंको ( यच्छति ) वशमें करता है ( यत् ) जो ( अनेन ) इसके द्वारा ( उभे ) दोनोंको ( यच्छति ) वशमें करता है ( तस्मात् ) तिससे ( यम् ) यं है ( एवंवित् ) ऐसा जाननेवाला ( वै ) निश्चय ( अहरहः ) नित्यप्रति ( स्वर्गम्, लोकम् ) सदा सुखरूप ब्रह्मको ( एति ) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )-ब्रह्मके नामके ( सत्यके स्थानमें ) सतीयं ये तीन अक्षर हैं, इनमें जो सत् ( स ) है वह अविनाशी है तथा जो ति ( त् ) है वह विनाशी है और जो यम् ( य ) है उससे उन दोनों अक्षरोंको प्रयोग करने वाला वशमें करलेता है, क्योंकि—इस यं से दोनोंको वशमें करता है, इस कारण यह यम् है, ऐसा जानने वाला नित्यप्रति निश्चय हृदयमें रहनेवाले ब्रह्मको पा-

जाता है ( यहां सतीयं ति के स्थानमें दीर्घ ती उच्चारण सुभीतेके लिये है और सतीयं सत्यके स्थानमें है ) ॥५॥

अष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय नैतꣳसेतुमहोरात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतꣳ सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्त्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) अब ( यः ) जो ( आत्मा ) आत्मा है ( सः ) वह ( एषाम् ) इन ( लोकानाम् ) लोकोंके ( असंभेदाय ) विनाश न होनेके लिये ( एषाम् ) इनका ( विधृतिः ) विशेषरूपसे धारक है ( सेतुः ) सेतुरूप है ( एतम् ) इस ( सेतुम् ) सेतुको ( अहोरात्रे ) दिन रात ( न ) नहीं ( तरतः ) लांघ सकते ( जरा ) बुढापा ( न ) नहीं ( मृत्युः ) मृत्यु ( न ) नहीं ( शोकः ) शोक ( न ) नहीं ( सुकृतम् ) पुण्य ( न ) नहीं ( दुष्कृतम् ) पाप ( न ) नहीं ( सर्वे ) सब ( पाप्मानः ) पाप ( अतः ) इससे ( निवर्त्तन्ते ) पीछेको लौट जाते हैं ( हि ) क्योंकि ( एषः ) यह ( अपहतपाप्मा ) पापरहित ( ब्रह्मलोकः ) ब्रह्मरूप है ॥ १ ॥

( भावार्थ )--ब्रह्मचर्यरूप साधनके विधानके लिये अब आत्माकी दूसरे प्रकारसे स्तुति करते हैं, कि—यह जो आत्मा है यह, पृथिवी आदि लोकोंका विनाश न हो, इसलिये इनको धारण करने वाला है इसलिये यह वर्णाश्रमादिकी मर्यादाका सेतुरूप है, इस सेतुरूप आत्माको दिन रात परिच्छिन्न नहीं बना सकते वृद्धावस्था इसके पास नहीं आसकती, मृत्यु इसके पास नहीं पहुँच सकता, इसको मानसिक सन्ताप नहीं होता

है, इसको पुण्य और पाप स्पर्श नहीं कर सकते हैं, इस आत्माके समीपसे सकल पाप स्पर्श किये विना ही पीछेको लौट जाते हैं, क्योंकि—यह आत्मा पापरहित और ब्रह्मरूप है ॥ १ ॥

तस्माद्वा एतꣳसेतुं तीर्त्वाऽन्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एतꣳसेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरे-वाभिनिष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः २

अन्वय और पदार्थ—( तस्मात् ) तिससे ( वै ) निश्चय ( एतम् ) इस ( सेतुम् ) सेतुको ( तीर्त्वा) तरकर (अन्धः सन्) अन्धा होता हुआ ( अनन्धः ) अन्धता रहित ( भवति ) होता है ( विद्धः सन् ) दुःखादिसे विंधाहुआ होकर ( अविद्धः ) दुःखादिके संबन्धसे रहित ( भवति ) होता है ( उपतापी सन ) उपतापवाला होकर ( अनुपतापी ) उपताप रहित ( भवति ) होता है ( तस्मात् ) तिससे ( वै ) निश्चय ( एतम् ) इस (सेतुम्) सेतुको पाकर ( नक्तम्, अपि ) रात्रि भी ( अहः एव दिन ही ( अभिनिष्पद्यते ) सिद्ध होती है ( हि ) क्योंकि ( एषः ) यह ( ब्रह्मलोकः ) ब्रह्मरूप आत्मा ( सकृत्, विभातः, एव ) सदा प्रकाशरूप ही है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-पापके फलरूप कार्य जो अन्धपना आदि वे शरीरधारीको ही प्राप्त होते हैं, शरीर रहितको नहीं प्राप्त होते हैं इस कारण ही इस आत्मरूप सेतुको पाकर, पहले देहधारीपनेमें अन्ध होने पर भी अन्धपनेसे रहित होजाता है, पहले दुःखादिके संबन्धवाला होकर भी दुःखादिके संबन्धसे रहित होजाता है, पहले रोगादि के कारण सन्तापयुक्त होकर भी सन्तापरहित

होजाता है, आत्मा में दिन रात नहीं हैं, इस कारण इस आत्मरूप सेतुको पाकर विद्वान्‌को अन्धकाररूप रात्रि भी दिनरूप ही सिद्ध होजाती है, क्योंकि-यह ब्रह्मरूप आत्मा सर्वदा प्रकाशस्वरूप ही है ॥ २ ॥

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाᳪं सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) तिनमें ( ये ) जो ( एव ) प्रसिद्ध ( एतम् ) इस ( ब्रह्मलोकम् ) ब्रह्मलोकको ( ब्रह्मचर्येण ) ब्रह्मचर्य के द्वारा ( अनुविन्दन्ति ) जानते हैं ( तेषाम्, एव ) उनका ही ( एषः ) यह ( ब्रह्मलोकः ) ब्रह्मलोक है ( तेषाम् ) उनकी ( सर्वेषु ) सब ( लोकेषु ) भोगोंमें (कामचारः) इच्छानुसार प्रवृत्ति ( भवति ) होती है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-जो इस प्रसिद्ध ब्रह्मरूप लोक को स्त्री और अन्य बाहरी विषयोंकी तृष्णाके त्यागरूप ब्रह्मचर्य के द्वारा शास्त्र और आचार्यके उपदेशके अनुसार जानते हैं, उन ब्रह्मचर्यरूप साधनवाले ब्रह्मवेत्ताओं का ही यह ब्रह्मरूप लोक है, स्त्री आदि विषयोंमें तृष्णावाले कथन-मात्रके ब्रह्मवेत्ताओंका नहीं है, उनकी सब भोगोंमें इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है ॥ ३ ॥

अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ।

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येष्ट्वाऽऽत्मानमनुविन्दते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यत् ) जिसको

( यज्ञ, इति ) यज्ञ इस नामसे ( आचक्षते ) कहते हैं ( तत् ) वह ( ब्रह्मचर्यम्, एव ) ब्रह्मचर्य ही है ( हि ) क्योंकि ( ब्रह्मचर्येण, एव ) ब्रह्मचर्यके द्वारा ही ( यः ) जो ( ज्ञाता ) जाननेवाला है वह( तम् ) उसको ( विन्दते ) पाता है ( यत् ) जिसको(इष्टम्, इति) इष्ट इस नामसे ( आचक्षते ) कहते हैं ( तत् ) वह (ब्रह्मचर्यम्, एव ) ब्रह्मचर्य ही है ( हि ) क्योंकि ( ब्रह्मचर्येण,एव ) ब्रह्मचर्यके द्वारा ही ( इष्ट्वा ) इच्छा करके ( आत्मानम् ) आत्मा को ( अनुविन्दते ) पाता है ॥ १ ॥

( भावार्थ ) -शिष्ट पुरुष जिसको यज्ञ नामसे कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि—जो आत्माका ज्ञाता है वह ब्रह्मचर्यके द्वाराही ब्रह्मलोकको पाता है और जिस को इष्ट कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है,क्योंकि - ब्रह्मचर्यसे ही आत्माकी इच्छा करके आत्माको पाता है॥१॥

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव
तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं
विंदतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव
तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवाऽऽत्मानमनुविद्य मनुते ॥२॥

अन्वय और पदार्थ- ( अथ ) और ( यत् ) जिसको ( सत्त्रायणम्, इति ) सत्त्रायण इस नामका यज्ञ ( आचक्षते ) कहते हैं तत् ) वह ( ब्रह्मचर्यम्, एव ) ब्रह्मचर्य ही है ( हि ) क्योंकि ( सतः ) सत्से ( आत्मनः, त्राणम् ) अपनी रक्षाको ( ब्रह्मचर्येण, एव ) ब्रह्मचर्यके द्वारा ही ( विन्दते ) पाता है ( अथ ) और ( यत् ) जिसको (मौनम्, इति ) मौन इस नामसे ( आचक्षते ) कहते हैं ( तत ) वह ( ब्रह्मचर्यम्, एव ) ब्रह्मचर्य ही है ( हि ) क्योंकि ( ब्रह्मचर्येण,एव ) ब्रह्मचर्यके द्वारा ही ( आत्मानम् ) आत्माको ( अनुविद्य ) जानकर ( मनुते ) मनन करता है ॥ २ ॥

( भावार्थ )-जिसको सत्त्रायण नामक बहुतसे यजमानोंके द्वारा होनेवाला वैदिक कर्म कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि—सत् परमात्मासे अपनी रक्षाको ब्रह्मचर्यके द्वारा ही पाता है और जिसको मौन कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य को धारण करनेवाला पुरुष ही आत्माको शास्त्र और आचार्य की सहायतासे जान कर उसका मनन करता है ॥ २ ॥

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष आत्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविंदतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वै ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं मदीयꣳ सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳ हिरण्मयम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत् ) जिसको ( अनाशकायनम्, इति ) अनाशकायन इस नामसे ( आचक्षते ) कहते हैं ( तत् ) वह ( ब्रह्मचर्यम्, एव ) ब्रह्मचर्य ही है ( यम् ) जिसको ( ब्रह्मचर्येण ) ब्रह्मचर्यके द्वारा ( अनुविन्दते ) पाता है ( एषः ) यह ( आत्मा ) आत्मा ( न ) नहीं ( नश्यति ) नष्ट होता है ( अथ ) और ( यत् ) जिसको ( अरण्यायनम्, इति ) आरण्यायन इस नामसे ( आचक्षते ) कहते हैं ( तत् ) वह ( ब्रह्मचर्यम्, एव ) ब्रह्मचर्य ही है ( वै, ह ) क्योंकि ( इतः ) यहांसे ( तृतीयस्याम्, दिवि ) तीसरे स्वर्गरूप ( ब्रह्मलोके ) ब्रह्मलोकमें ( तत् ) वह ( अरः ) अर ( च ) और ( ण्यश्च ) ण्य भी ( अर्णवौ ) समुद्र हैं ( तत् ) तहां ( ऐरम् ) अन्नरससे भरा ( मदीयम् ) हर्षदायक ( सरः ) सरोवर है ( तत् ) तहां ( सोम-

सवनः ) अमृत टपकानेवाला ( अश्वत्थः ) पीपलका वृक्ष है ( तत् ) तहां ( अपराजिता ) अपराजिता नामकी ( ब्रह्मणः ) ब्रह्माकी ( पूः ) पुरी है ( प्रभुविमितम् ) स्वामीका रचाहुआ ( हिरण्मयम् ) सुवर्णका मण्डप है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )—जिसको अनाशकायन कहिये अनशन कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि—जिस आत्माको ब्रह्मचर्यसे जानता है उस आत्माका नाश नहीं होता है और जिसको अरण्यायन कहिये अरण्यमें गमन कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि—यहांसे तीसरे स्वर्गरूप ब्रह्मलोकमें प्रसिद्ध अर और ण्य नामके समुद्रकी समान दो सरोवर हैं तहां अन्नके रस से भरा और अपनेको व्यवहारमें लानेवालेको हर्ष उपजानेवाला सरोवर है और उस ब्रह्मलोकमें जिसमेंसे अमृत टपका करता है ऐसा पीपलका वृक्ष है और तहां जिसको ब्रह्मचर्यहीन पुरुष जीत नहीं सकता ऐसी अपराजिता नामवाली ब्रह्माकी नगरी है तथा ब्रह्मरूप स्वामीका रचाहुआ सोने का मण्डप है ॥ ३ ॥

तद्य एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाᳫं सर्वेषु लोकेषु कामचारोभवति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) तहां ( ब्रह्मलोके ) ब्रह्मलोकमें ( ये ) जो ( एतौ ) इन ( एव ) प्रसिद्ध ( अरम् ) अर ( च ) और ( ण्यम्, च ) ण्य भी ( अर्णवौ ) समुद्रसमान सरोवरोंको ( ब्रह्मचर्येण ) ब्रह्मचर्य द्वारा ( अनुविन्दति ) पाते हैं ( तेषाम्, एव ) उनका ही ( एषः ) यह ( ब्रह्मलोकः ) ब्रह्मलोक है ( तेषाम् ) उनकी ( सर्वेषु, लोकेषु ) सब लोकोंमें ( कामचारः ) यथेच्छ प्रवृत्ति ( भवति ) होती है॥ ४ ॥

( भावार्थ )—उस ब्रह्मलोकमें जो प्रसिद्ध अर और ण्य नाम के समुद्र समान दो सरोवर हैं उनको जो ब्रह्म चर्यके द्वारा पाते हैं उनका ही यह ब्रह्मलोक है, वे ब्रह्म-चर्यरूप साधनवाले ब्रह्मज्ञानी ही सकल भोगों को इच्छानुसार भोगते हैं और जिनकी बुद्धि स्त्री आदि बाहरी भोगोंमें आसक्त रहती है वे न ब्रह्मलोकमें ही पहुँच सकते हैं और न उनको यथेच्छ भोग ही मिल सकते हैं, क्योंकि शुद्धसत्त्वमय-सङ्कल्पजन्य ब्रह्मलोकके विषय तथा तैसे ही सङ्कल्पजन्य पिता आदि भोग मानसज्ञानरूप हैं ॥ ४ ॥

अष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब ( याः ) जो (एताः) ये (हृदयस्य) हृदयकी ( नाड्यः ) नाडियें हैं (ताः) वे ( पिङ्गलस्य ) सुनहरे ( शुक्लस्य ) स्वेत ( नीलस्य ) नीले ( पीतस्य ) पीले ( लोहितस्य ) लाल (अणिम्नः) सूक्ष्मरसकी (तिष्ठन्ति ) स्थित रहती हैं (इति) इसकारण (असौ) यह वै) प्रसिद्ध (आदित्यः ) आदित्य ( पिङ्गलः ) सुनहरा ( एषः ) यह ( शुक्लः ) स्वेत ( एषः ) यह ( नीलः ) नील वर्णका ( एषः ) यह ( पीतः ) पीला ( एषः ) यह ( लोहितः ) लाल [ अस्ति ] है ॥ १ ॥

( भावार्थ )—जो पुरुष ब्रह्मचर्यादि साधनसे सम्पन्न होकर हृदयमें वर्त्तमान ब्रह्मकी उपासना करता है उसकी गति सुषुम्ना नाडीसे कहनी चाहिये, इस

कारण अब नाड़ीखण्डका आरम्भ करते हुए कहते हैं, कि-ये जो हृदयकमलसे सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ियें हैं ये सुनहरी, स्वेत, नीले पीले और लाल सूक्ष्मरसके सारसे भरी हुई तैसे ही रङ्गकी हैं, नाड़ियोंमें ये रङ्ग आदित्यके तेजके हैं, क्योंकि-आदित्य ही सुनहरी, स्वेत, नीला, पीलाऔर लाल है, प्रकाशका पृथक्करण करने पर जो सात रङ्ग प्रतीत होते हैं वे सूर्यमें है और उससे ही मज्जातन्तुओंमें है ॥ १ ॥

तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं चामुं चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाड़ीसु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः ।२।

अन्वय और पदार्थ- ( तत् ) उसमें ( यथा ) जैसे (महापथः ) बड़ामार्ग ( आततः ) विस्तार पाता हुआ ( उभौ,ग्रामौ) दोनों ग्रामोंको ( गच्छति ) जाता है ( इमम् ) इसको (च) और ( अमुम्, च ) उसको भी ( एवमेव ) इसीप्रकार ( एताः ) ये ( आदित्यस्य ) सूर्यका ( रश्मयः ) किरणें ( उभौ, लोकौ ) दोनों लोकोंके प्रति ( गच्छन्ति ) जाती हैं ( इमम् ) इस लोकको ( च ) और ( अमुम्, च ) उस लोकको भी ( अमुष्मात् ) इस ( आदित्यात्)आदित्यसे ( प्रतायन्ते ) प्रवृत्त होती है (ताः) वे (आसु) इन ( नाडीषु ) नाड़ियोंमें (प्रतायन्ते ) प्रवृत्त होती हैं ( ते ) वे ( अमुष्मिन्, आदित्ये ) इस आदित्यमें ( सृप्ताः ) प्रविष्ट होरही हैं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-आदित्यका जो शरीरमें की नाड़ियोंके साथ सम्बन्ध है,इस बातको दृष्टान्तके द्वारा समझाते

हैं, कि-जैसे कोई बड़ीभारी सड़क दूरतक चली जाकर समीपके और दूरके दोनों ही ग्रामोंमेंको जाती है, इसी-प्रकार आदित्यकी किरणें भी दोनों लोकोंमेंको जाती हैं, इस सूर्य मण्डलमेंको भी और पुरुषमेंको भी, इस आदित्यमण्डलमें से जो किरणें फैलती हैं वे इन नाड़ि-योंमेंको घुसी हुई हैं और इन नाड़ियोंसे प्रवाहरूपसे जो किरणें चलती हैं वे इस आदित्यमण्डलमेंको गयी हुई हैं।

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तदा सम्पन्नो भवति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) उसमें ( एतत् ) यह ( समस्तः ) सम्पूर्ण ( सुप्तः ) सोया हुआ ( संप्रसन्नः ) सम्यक् प्रकारसे प्रसन्न ( भवति ) होता है ( स्वप्नम् ) स्वप्नको ( न ) नहीं ( विजानाति ) अनुभव करता है ( तदा ) उस समय ( आसु, नाड़ीषु ) इन नाड़ियों में ( सृप्तः ) प्रवेश किया हुआ ( भवति ) होता है ( तम् ) उसको ( कश्चन ) कोई ( पाप्मा ) पाप ( न ) नहीं ( स्पृशति ) स्पर्श करता है ( हि ) क्योंकि ( तदा ) उस समय ( तेजसा, सम्पन्नः ) तेजसे युक्त ( भवति ) होता है ॥३॥

( भावार्थ )—जिस समय यह जीव सकल किरणों का विलय होजानेके कारण सोया हुआ होता है, बाहरी विषयों के संबन्धसे उत्पन्न होनेवाली मलिनता न होने के कारण उत्तम रीतिसे प्रसन्न होता है और स्वप्नका अनुभव नहीं करता है उस समय इस सूर्यके तेजसे पूर्ण नाड़ियोंके द्वारा हृदयाकाशमें प्रवेश पाजाता है, उसको धर्म अधर्मरूप कोई पाप स्पर्श नहीं करता है,

क्योंकि—उस समय यह सोया हुआ पुरुष नाड़ियोंमें भरे हुए सूर्यके तेजसे युक्त होता है इस कारण पाप को उत्पन्न करनेवाला जो उसकी इन्द्रियोंका विषयोंसे संबन्ध वह नहीं होता है ॥ ३ ॥

अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तो भवति तावज्जानाति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ) और ( यत्र ) जब ( एतत् ) यह ( अबलिमानम्, नीतः ) निर्बलताको प्राप्त हुआ ( भवति ) होता है ( तम् ) उसको ( अभितः ) चारों ओरसे (आसीनाः) बैठे हुए ( माम्, जानासि ) मुझको जानता है ( माम्, जानासि) मुझको जानता है ( इति ) ऐसा ( आहुः ) कहते हैं (सः) वह ( यावत् ) जबतक ( अस्मात्, शरीरात् ) इस शरीरसे ( अनुत्क्रान्तः ) न निकला हुआ ( भवति ) होता है (तावत्) तबतक ( जानाति ) जानता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-नाड़ियोंके द्वारा ऊर्ध्वगमन दिखाने के लिये मरणकालका वर्णन करते हैं, कि—जिस समय यह मनुष्य रोगादिसे निर्बल होकर मरने को होता है उस समय उसको सब ओरसे घेरकर बैठे हुए सम्बन्धी पुरुष उससे कहते हैं कि--तू मुझे पहिचानता है? वह मरनेवाला जबतक इस शरीरमें से निकलता नहीं है तब सगे सम्बंधियोंको पहिचानता है ॥ ४ ॥

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमयते स ओमिति वा होद्वा मीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्ये-

तद्वैखलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधो-
ऽविदुषाम् ॥ ५ ॥

अन्वय औरपदार्थ--( अथ ) अनन्तर ( यत्र ) जब ( एतत् ) यह ( अस्मात्, शरीरात् ) इस शरीरमेंसे ( उत्क्रामति ) निकलता है ( अथ ) तब ( एतैः एव ) इन ही ( रश्मिभिः ) किरणोंके द्वारा ( ऊर्ध्वम् ) ऊपरको ( आक्रमयते ) जाता है सः ) वह ( ओमिति ) ओम् ऐसा ध्यान करता हुआ ( उत्, मीयते ) ऊपरको चला जाता है ( वा ) और ( सः ) वह ( यावत् ) जितने समयमें ( मनः ) मन ( क्षिप्येत् ) फेंकाजाय ( तावत् ) उतने समयमें ( आदित्यम्, गच्छति ) आदितयको प्राप्त होजाता है ( खलु ) निश्चय ( वै ) प्रसिद्ध ( एतत् ) यह आदित्य ( लोकद्वारम् ) ब्रह्मलोकका द्वार ( विदुषाम् ) विद्वानोंका ( प्रपदनम् ) पहुँचानेवाला ( अविदुषाम् ) उपासना न करनेवालोंका ( निरोधः ) निरोधन करनेवाला [अस्ति] है५

( भावार्थ )—यह प्राणी जब इस शरीरमें से निकलता है उस समय यह किरणोंके द्वारा ही ऊपरको जाता है, हृदयमें विद्यमान ब्रह्मकी उपासना करनेवाला वह उपासक ॐ ॐ कह कर आत्माका ध्यान करता हुआ स्वस्थ अवस्था युक्तसा ऊपरको चलाजाता है ( और यदि उपासना नहीं की होती है तो इससे भिन्न गति होती है ) वह उपासक शरीरमेंसे निकल कर जितने समयमें मनको फेंकाजाय उतने ही समयमें आदित्यमण्डलमें जापहुँचता है, आदित्य ही ब्रह्मलोक का प्रसिद्ध द्वार है, उस द्वारसे उपासक ब्रह्मलोकमें जाता है अतः वह उपासक को ब्रह्मलोक प्राप्त करानेवाला है और उपासना न करनेवाला अविद्वान् सूर्यके

तेजसे शरीरमें ही रुकजाने पर सुषुम्ना नाड़ीसे न निकलकर दूसरी नाड़ियोंसे निकलता है, इस कारण आदित्य उनको रोधक होता है ॥ ५ ॥

**तदेष श्लोकः शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥६॥**

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) उसमें (एषः ) यह (श्लोकः) मन्त्र है ( शतम् ) सौ ( च ) और (एका, च) एक भी (हृदयस्य) हृदयकी ( नाड्यः ) नाड़ियें हैं ( तासाम् ) उनमें ( एका ) एक ( मूर्धानम्, अभि ) मूर्धाकी ओरको ( निःसृता ) निकली है ( तया ) उसके द्वारा ( ऊर्ध्वम्, आयन् ) ऊपरको गमन करता हुआ ( अमृतत्वम् ) अमरभावको ( एति ) प्राप्त होता है (विष्वक्) चारों ओरको जानेवालीं ( अन्याः ) और नाड़ियें ( उत्क्रमणे, भवन्ति ) निकलनेके लिये होती हैं (उत्क्रमणे, भवन्ति ) निकलने के लिये होती हैं ॥ ६ ॥

( भावार्थ )-इस विषयमें मन्त्र भी है-हृदयकी मुख्य नाड़ियें एक सौ एक हैं, उनमेंसे एक सुषुम्ना नामकी नाड़ी ही ऊपर मस्तककी ओरको गई है, जो उपासक इस नाड़ीके द्वारा ऊपरको जा सकता है वही क्रमसे मोक्षरूप अमरपनेको पाता है, चारों ओरको फैली हुई और जो एक सौ नाड़ियें हैं वे तो जीवके देहमेंसे निकलनेका मार्गमात्र हैं। मंत्रमें पिछले दो पदोंको दो बार जो कहा है वह दहरविद्या कहिये हृदयगत अल्पाकाश रूप ब्रह्मकी उपासनाकी समाप्तिको जतानेके लिये है ६

अष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ।

य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच १

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( आत्मा ) आत्मा ( अपहतपाप्मा ) पापशून्य ( विजरः ) वृद्धावस्था रहित ( विमृत्युः ) मृत्युरहित ( विशोकः ) शोकशून्य ( विजिघत्सः ) क्षुधारहित ( अपिपासः ) प्यासरहित ( सत्यकामः ) सत्य कामनावाला ( सत्यसङ्कल्पः ) सत्य सङ्कल्पवाला [ अस्ति ] है ( सः ) वह ( अन्वेष्टव्यः ) खोज करने योग्य है (विजिज्ञासितव्यः) अनुभव का विषय करने योग्य है ( यः ) जो ( तम् ) उस (आत्मानम्) आत्माको ( अनुविद्य ) जानकर ( विजानाति ) अनुभवमें लाता है ( सः ) वह ( सर्वान् ) सब ( लोकान् ) लोकोंको ( च ) और ( सर्वान् ) सब ( कामान्, च ) भोगोंको भी ( आप्नोति ) प्राप्त होता है (इति) ऐसा ( प्रजापतिः ) प्रजापति [ ह ] स्पष्ट (उवाच) कहता हुआ ॥ १ ॥

( भावार्थ )-आत्माके स्वरूपका विषय निर्णय करने के लिये अब ग्रन्थके अगले भागका आरम्भ होता है, विद्या प्राप्त करना चाहनेवालेमें विनय, विद्याके महत्त्वका ज्ञान, श्रद्धा और ब्रह्मचर्य आदि होने चाहियें, इस बातको जतानेके लिये आख्यायिकाका आरम्भ होता है-जो आत्मा धर्माधर्मरूप पापसे रहित, वृद्धावस्था आदि विकारोंसे रहित, मृत्युसे रहित, मानसिक संताप से रहित, क्षुधा तृषासे रहित, सत्यभोग और सत्य सङ्कल्पवाला है तथा उपासनाके द्वारा जिसकी प्राप्तिके

लिये हृदयकमलका वर्णन किया है, वह शास्त्र और आचार्यके उपदेशके द्वारा जानने योग्य है तथा अपने अनुभवका विषय करने योग्य है, जो उस आत्माको शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे जानकर अपने अनुभवमें ले आता है, प्रजापति कहते हैं कि वही सकल लोक और सकल भोगोंका अधिकारी होता है ॥ १ ॥

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वा-ꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामानितीन्द्रो हैव देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाश-माजग्मतुः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) उसको ( ह ) प्रसिद्ध (उभये) दोनों ( देवासुराः ) देवता और असुर ( अनुबुबुधिरे ) परम्परा से जानते थे ( ते, ह ) वे ( ऊचुः ) कहनेलगे ( हन्त ) अनुमति हो तो ( तम् ) उस ( आत्मानम् ) आत्माको ( अन्विच्छामः ) अन्वेषण कर ( यम् ) जिस ( आत्मानम् ) आत्माको (अन्विष्य) अन्वेषण करके ( सर्वान् ) सब ( लोकान् ) लोकोंको ( च ) और ( सर्वान् ) सब ( कामान्,च ) भोगोंको भी ( आप्नोति ) पाजाता है ( इति ) ऐसा कहकर ( देवानाम् ) देवताओंमेंसे (ह) प्रसिद्ध ( इन्द्रः एव ) इन्द्र ही ( अभिप्रवव्राज) चलागया ( असु-राणाम् ) असुरोंमेंसे ( विरोचनः ) विरोचन [ प्रवव्राज ] गया ( तौ ) वे दोनों ( असंविदानौ, एव ) परस्पर मित्रता न रखते हुए ही ( समित्पाणी ) हाथमें समिधा लेकर (प्रजापतिसकाशम्) प्रजापतिके पास ( आजग्मतुः ) आये ॥ २ ॥

( भावार्थ )—प्रजापतिके इस कथनको प्रसिद्ध देवता और असुर दोनों परम्परासे जानते थे वे दोनों अपनी२ सभामें कहने लगे, कि-यदि आप सबोंकी अनुमति हो तो हम प्रजापतिके कहेहुए उस आत्माको खोजनेका यत्न करें, क्योंकि-उस आत्माको जानकर पुरुष सब लोकोंको और सब भोगोंको पाजाता है। इसके अनन्तर देवताओंमेंसे एक इन्द्र सकल ऐश्वर्यको त्यागकर प्रजापतिके पास गया, इसीप्रकार असुरोंमेंसे एक विरोचन गया, वे दोनों आपसमें एक दूसरेके स्वभावसे सहमत नहीं थे तथापि इस विषयमें एकमत होने पर हाथमें समिधायें लेकर विनयके साथ प्रजापतिके पास गये ॥ २॥

तौ ह द्वात्रि ँ॒ शतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तौ होचतुर्य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वा ँ॒ श्च लोकानाप्नोति सर्वा ँ॒ श्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्तमिति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तौ, ह ) वे दोनो ( द्वात्रिंशतम्, - वर्षाणि ) बत्तीस वर्ष तक ( ब्रह्मचर्यम्, ऊषतुः ) ब्रह्मचर्य धारण करके रहे ( प्रजापतिः ) प्रजापति ( तौ, ह ) उन दोनोंके प्रति ( उवाच ) बोला ( किम्, इच्छन्तौ ) क्या चाहते हुए ( अवास्तम् ) रहते हो ( इति ) ऐसा कहने पर ( तौ, ह ) वे दोनो ( ऊचतुः ) बोले ( यः ) जो ( आत्मा ) आत्मा ( अपहतपाप्मा )

पापरहित ( विजरः ) बुढ़ापेसे रहित ( विमृत्युः ) मृत्युके वशमें न रहने वाला ( विशोकः ) शोकशून्य ( विजिघत्सः ) भूखा न होनेवाला ( अपिपासः ) प्यासा न होनेवाला ( सत्यकामः ) सत्यकाम ( सत्यसङ्कल्पः ) सत्यसङ्कल्प [ अस्ति ] है ( सः ) वह ( अन्वेष्टव्यः ) जानने योग्य है ( विजिज्ञासितव्यः ) अनुभव करने योग्य है ( यः ) जो ( तम् ) उस ( आत्मानम् ) आत्माको ( अनुविद्य ) जानकर ( विजानाति ) अनुभव करता है ( सः ) वह ( सर्वान् ) सब (लोकान् ) लोकोंको ( च) और ( सर्वान् ) सब (कामान्,च) भोगोंको भी (आप्नोति ) पाता है ( इति ) ऐसा ( भगवतः ) आपके [ वचनम् ] वचनको (वेदयन्ते ) जताते हैं (इति) इस कारण ( तम् ) उसको ( इच्छन्तौ) चाहते हुए ( अवास्तम् ) बस रहे हैं ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-दोनों प्रजापतिके पास जा परस्पर की ईर्षाको छोड़कर बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए तहाँ रहे। प्रजापतिने उनसे कहा, कि-तुम दोनों किस फलको पानेकी इच्छासे यहां रहते हो ? इसके उत्तरमें उन दोनोंने कहा, कि-जो आत्मा पापरहित, जरारहित,मृत्युरहित,शोकशून्य, क्षुधारहित, तृषारहित, सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प है वह जानने योग्य और अनुभव करने योग्य है,जो उस आत्माको जानकर उस का अनुभव करता है वह सकल लोकोंको और सकल भोगोंको पाता है, ऐसा आपका कथन है, यह बात शिष्टपुरुष कहते हैं, इसकारण उस आत्माको जाननेकी इच्छा करते हुए हम दोनों यहाँ निवास कर रहे हैं॥३॥

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमे-

तद्ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते
यश्चायमादर्शे कतम एष इत्येष उ एवैषु सर्वे-
ष्वन्तेषु परिख्यायत इति होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तौ,ह ) उनके प्रति ( उवाच ) बोला ( अक्षिणि ) आंख में ( यः ) जो ( एषः ) यह ( पुरुषः ) पुरुषरूप ( दृश्यते ) दीखता है (एषः ) यह ( आत्मा ) आत्मा है ( इति,ह ) ऐसा ( उवाच ) कहा ( एतत् ) यह ( अमृतम् ) अमृत है ( अभयम् ) अभय है ( एतत् ) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) ऐसा है ( अथ ) अनन्तर ( भगवः ) भगवन् ( यः ) जो ( अयम् ) यह ( अप्सु ) जलमें ( परिख्यायते ) प्रतीत होता है ( च ) और ( यः ) जो (अयम् ) यह (आदर्शे ) दर्पणमें [परिख्यायते ] दीखता है ( एषः ) यह (कतमः) कानसा है (इति) ऐसा पूछने पर ( एषः, उ,एव) यह ही ( सर्वेषु,अन्तेषु ) सबों के भीतर ( परिख्यायते ) प्रतीत होता है ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह) कहा ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-इन दोनोंसे प्रजापतिने कहा, कि-आंखों में जो यह पुरुषरूप द्रष्टा अन्तर्मुख दृष्टिवाले पुरुषोंको दीखता है, यही पापरहितता आदि गुणोंवाला आत्मा है, जिसको मैंने पहले कहा था' जिसके' विज्ञानसे सब लोकोंकी और सकल भोगोंकी प्राप्ति होती है, यही अमृत है, अभय है और ब्रह्म है । प्रजापति की इस बात को सुनकर वे दोनों अपनी बुद्धि की अशुद्धि से नेत्रमें जो पुरुषका प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको ही आत्मरूपसे समझे तदनन्तर उसको दृढ़ करने के लिए प्रजापतिसे पूछने लगे कि--हे भगन ! यह जो जलमें पुरुषका प्रतिबिम्ब दीखता है और जो यह दर्पणमें शरीरका प्रति

बिम्बरूप आकार दीखता है इनमें आपका बताया हुआ आत्मा कौनसा है ? इस पर, जो मैंने चक्षुमें द्रष्टा कहा था वह यही है और यही सबके भीतर भी प्रतीत होता है, ऐसा प्रजापतिने कहा ॥ ४ ॥

अष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मानो न विजानीथस्तन्मे प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेऽवेक्षाञ्चक्राते, तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तौ होचतुः सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आलोमभ्य आनखेभ्यः प्रति रूपमिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( उदशरावे ) जल के कुण्ड में ( आत्मानम् ) आत्माको ( अवेक्ष्य ) देख कर ( यदा ) जब ( आत्मनः ] आत्माको (न) नहीं (विजानीथः ) जाना (तत्) तब (मे) मुझसे ( प्रब्रूतम् ) कहना (इति )ऐसा कहनेपर (तौ,ह) वे दोनों ( उदशरावे) जलके कुण्डमें (अवेक्षाञ्चक्राते ) देखते हुए [ तौ, ह] उनके प्रति (प्रजापतिः) प्रजापति (उवाच) बोला (किम्) क्या (पश्यथ) देख रहे हो (इति) इस पर (तौ, ह) वे दोनों (इति) ऐसा ( ऊचतुः ) बोले ( भगवः ) हे भगवन् ! (आलोमभ्यः ) रोमोंपर्यन्तके ( आनखेभ्यः ) नखों पर्यन्तके ( प्रतिरूपम् ) प्रतिबिम्बरूप ( सर्वम्, एव ) सब ही ( इदम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्माको ( आवाम् ) हम दोनों ( पश्यावः) देखते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-प्रजापतिने कहा कि-जलसे भरे कुण्डमें आत्माको देखनेके अनन्तर आत्माको देखते हुए भी यदि तुम आत्माके स्वरूपको जानसको तो मुझसे कहो, ऐसा कहनेपर वे दोनो जलके कुण्डमें देखनेलगे, उन्होंने

प्रजापतिसे कुछ नहीं कहा, अतः प्रजापतिने पूछा कि-तुमने क्या देखा ? इस पर उन दोनोंने यह उत्तर दिया कि-हे भगवन् ! रोमोंपर्यन्तके और नखों पर्यन्तके प्रतिबिम्बरूप इस सब ही आत्माको हम देख रहे हैं ॥ १ ॥

तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षाञ्चक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति

अन्वय और पदार्थ—( प्रजापतिः ) प्रजापति ( तौ, ह ) उनके प्रति ( उवाच ) बोला ( साधु, अलंकृतौ ) उत्तम अलङ्कारोंवाले ( सुवसनौ ) सुन्दर वस्त्र पहने हुए ( परिष्कृतौ, भूत्वा ) लोम नखादिसे स्वच्छ होकर ( उदशरावे ) जलके कुण्डमें ( अवेक्षेथाम् ) देखो ( इति ) ऐसा कहने पर ( तौ,ह ) वे दोनो ( साध्वलंकृतौ ) अच्छे अलङ्कारोंसे युक्त (सुवनसौ ) सुन्दर वस्त्रों वाले ( परिष्कृतौ,भूत्वा ) स्वच्छ होकर ( उदशरावे) जलके कुण्ड में ( अवेक्षाञ्चक्राते ) देखते हुए ( प्रजापतिः ) प्रजापति (तौ,ह) उनके प्रति ( किम् ) क्या ( पश्यथः ) देखते हो ( इति ) ऐसा (उवाच) बोला ॥ २ ॥

( भावार्थ)-प्रतिबिम्ब और उसके कारण शरीरमें हुए आत्माके निश्चय को दूर करने के लिये भगवान् प्रजापति उन दोनोंसे कहनेलगे, कि-अच्छे अलङ्कार और सुन्दर वस्त्र पहर कर तथा रोम और नखों को कटवा कर फिर जलके कुण्डमें देखो। ऐसा कहनेमें भगवान् प्रजापतिका यह अभिप्राय था, कि-केश और नखोंकी समान शरीरको भी अनात्मा ही समझो, परन्तु अन्तःकरणकी मलिनताके कारण इन्द्र और विरोचन इस

बातको न समझसके और वे दोनो उत्तम वस्त्राभूषण पहर कर तथा नख लोम कटवा कर जलके कुण्डमें देखने लगे, तब उन दोनोंसे भगवान् प्रजापतिने कहा, कि—तुमको क्या दीख रहा है ? ॥ २ ॥

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तौ, ह ) वे दोनों ( इति ) ऐसा ( ऊचतुः ) बोले ( भगवः ) हे भगवन् ! ( यथैव ) जिस प्रकार ( इदम् ) यह ( आवाम् ) हम ( साध्वलंकृतौ) सुन्दर अलङ्कारों से युक्त (सुवसनौ ) अच्छे वस्त्र पहरे (परिष्कृतौ) लोमनखादिसे स्वच्छ ( स्वः ) हैं ( एवमेव ) इसीप्रकार ( भगवः ) हे भगवन् ( इमौ ) ये ( साध्वलंकृतौ ) उत्तम अलङ्कारों वाले ( सुवसनौ ) सुन्दर वस्त्रोंवाले (परिष्कृतौ) लोम नखादिसे रहित [ स्तः ] हैं ( इति ) ऐसा कहने पर ( एषः ) यह ( आत्मा ) आत्मा है ( एतत् ) यह ( अमृतम् ) अविनाशी है ( अभयम् ) निर्भय है ( एतत् ) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) ऐसा (उवाच,ह) प्रजापति ने कहा ( इति ) ऐसा कहने पर (तौ,ह ) वे दोनों (शान्तहृदयौ ) हृदयमें सन्तुष्ट होते हुए ( प्रवव्रजतुः) चलेगये ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-उन दोनोने उत्तर दिया, कि-हे भगवन्! जिसप्रकार हम उत्तम आभूषण, उत्तम वस्त्र पहरे और लोम नख कटाये हुये हैं, इसीप्रकार हे भगवन् ! ये हमारे प्रतिबिम्ब भी उत्तम वस्त्राभूषण पहरे और लोम नख कटाये हुये हैं। उनकी इस बातको सुनकर

प्रजापतिने विचारा कि-ये अपने मनकी मलिनता के कारण आत्माके वास्तविक स्वरूपको नहीं समझसके हैं, कदाचित् ये मेरी बातका मनन करेंगे और उससे इनके प्रतिबन्धक संस्कारोंका क्षय होजायगा तो आगे को समझजायँगे और मैं तो इनको आत्माके स्वरूपका ही उपदेश देना चाहता हूं, इस बातको मनमें रख कर भगवान् प्रजापति कहने लगे कि-यह आत्मा है, यह अविनाशी है और यही ब्रह्म है। भगवान् प्रजापति की इस बातको सुनकर वे इन्द्र और विरोचन हृदय में सन्तुष्ट होते हुए अपने २ स्थान को चले गये ॥३॥

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचानुपलभ्याऽऽत्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति ॥४॥

अन्वय और पदार्थ—( प्रजापतिः ) प्रजापति ( तौ, ह ) उनको ( अन्वीक्ष्य ) देख कर ( उवाच ) बोला ( आत्मानम् ) आत्माको ( अनुपलभ्य ) न जान कर ( अननुविद्य ) अनुभवमें न लाकर ( व्रजतः ) जाते हैं ( यतरे ) इन दोनोंमें से जो ( देवाः,वा ) या देवता (वा,असुराः) या असुर ( एतदुपनिषदः ) इस उपनिषद् विद्यावाले ( भविष्यन्ति ) होंगे ( ते ) वे ( पराभविष्यन्ति ) तिरस्कार को पावेंगे ( इति ) ऐसा विचारने पर ( सः,ह ) वह ( विरोचनः ) विरोचन ( शान्तहृदयः,एव )

अपने को कृतार्थ बुद्धिवाला मानता हुआ ही (असुरान्, जगाम) असुरोंके पास पहुंचा ( तेभ्यः ) उनके अर्थ ( एताम्, ह उपनिषदम् ) इस ही उपनिषद् को ( प्रोवाच ) कहता हुआ (आत्मा, एव ) आत्मा ही ( इह ) इस लोकमें ( महय्यः ) पूजने योग्य है ( आत्मा ) आत्मा ( परिचर्यः ) सेवा करने योग्य है ( इह ) इस लोकमें ( आत्मानम् ) आत्माको ( परिचरन् ) सेवता हुआ ( इमम् ) इस ( च ) और ( अमुम्, च ) उस भी ( उभौ ) दोनों ( लोकौ ) लोकोंको ( आप्नोति ) पाता है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )—भगवान् प्रजापति ने उनको दूर गये हुए देख कर "जो आत्मा पापरहित है" इत्यादि वचनकी समान यह वचन भी उन दोनोंके सुननेमें आजायगा, यह विचार कर इस प्रकार कहा, कि—आत्माको न जान कर और उसका अपरोक्ष अनुभव न करके तथा विपरीत निश्चयवाले होकर ये इन्द्र और विरोचन चले गए हैं, इस कारण देवता वा असुर इन दोनोंमें से जो कोई इस उपनिषद्वाले ( इस आत्मविद्यावाले ) होंगे वे तिरस्कार पावेंगे अर्थात् श्रेयोमार्गसे गिरजायँगे । उधर वह विरोचन अपने को कृतार्थ मान हृदय में बड़ा सन्तुष्ट होता हुआ असुरोंके पास जा पहुँचा और जाकर, 'प्रतिबिम्बका निमित्त कारण शरीर है इस कारण शरीर ही आत्मा है' ऐसा समझ कर उनको शरीरमें आत्मबुद्धिरूप उपनिषद्का उपदेश देने लगा, शरीरमात्र ही आत्मा है, ऐसा भगवान् प्रजापतिने कहा था, इसकारण वह, आत्मा ही इस लोकमें पूजने योग्य है तथा वह आत्मा ही सेवा करने योग्य है । इस लोकमें जो उस आत्माकी ही पूजा और सेवा करता है वह ही, इस लोक और परलोक दोनों को ही पा जाता है ॥ ४ ॥

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो वतेत्यसुराणाᳬं ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालङ्कारेणेति सᳬंस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तस्मात् ) तिससे ( अद्य, अपि ) आजकल भी ( इह ) इस लोकमें ( अददानम् ) दान न करने वाले ( अश्रद्दधानम् ) श्रद्धाहीन ( अयजमानम् ) यजन न करने वाले को ( वत ) बड़े खेदके साथ (आसुरः) असुर स्वभाववाला है ( इति ) ऐसा ( आहुः ) कहते हैं ( हि ) क्योंकि-( एषा ) यह ( असुराणाम् ) असुरोंकी ( उपनिषद् ) आत्मविद्या है ( इति ) इस प्रकार ( प्रेतस्य ) मृतकके ( शरीरम् ) शरीरको ( भिक्षया ) अन्नपानके द्वारा ( वसनेन ) वस्त्रके द्वारा ( अलङ्कारेण ) आभूषणके द्वारा ( इति ) इस प्रकार ( संस्कुर्वन्ति ) संस्कारयुक्त करते हैं ( हि ) क्योंकि--( एतेन ) इसके द्वारा ( अमुम्, लोकम् ) उस लोकको ( जेष्यन्तः) जीत लेंगे [ इति ] ऐसा ( मन्यन्ते ) मानते हैं ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—देहात्मवाद असुरोंका चलाया हुआ है इस कारणसे आजकल भी इस लोकमें पुण्यार्थ अपने धनको न देने वाले,सत्कर्मोंमें श्रद्धारहित और यथाशक्ति यजन करनेके स्वभावसे रहित पुरुषको देखकर खेद होता है, कि—यह आसुरी स्वभाववाला है, ऐसा शिष्ट पुरुष कहते हैं। क्योंकि-असुरोंकी श्रद्धारहित होना आदि लक्षणोंवाली यह उपनिषद्विद्या है इस कारण इस उपनिषद्के संस्कारवाले देहात्मवादी पुरुष मृतकके शरीर को सुगन्ध, पुष्पमाला, भोजन, वस्त्र और आभूषणोंसे सजाते हैं,और वे इस मृत शरीरकी सजावट करके यह

चक्षु नासिका यस्य सदा भवति सम्भ्रमः ॥



समझते हैं कि इस सजावटके द्वारा इस मृत प्राणीको स्वर्गलोक मिल जायगा ॥ ५ ॥

अष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाऽहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अथ ह ) इसके अनन्तर ( इन्द्रः ) इन्द्र ( देवान्, अप्राप्य, एव ) देवताओंके पास न पहुंचकर ही ( एतत् ) इस ( भयम् ) भयको ( ददर्श ) देखता हुआ (यथा) जिस प्रकार (अयम् ) यह (खलु) निःसन्देह (अस्मिन्, शरीरे ) इस शरीरके ( साधु, अलंकृते ) भले प्रकार भूषित होने पर ( साध्वलंकृतः ) भलेप्रकार भूषित ( सुवसने ) सुन्दर वस्त्रोंवाला होने पर ( सुवसनः ) सुन्दर वस्त्रोंवाला ( परिष्कृते ) साफ सुथरा होने पर ( परिष्कृतः ) साफ सुथरा ( भवति ) होता है ( एवमेव ) इसी प्रकार ( अयम् ) यह ( अस्मिन् अन्धे ) इसके नेत्रहीन होने पर ( अन्धः ) नेत्रहीन ( स्रामे ) चिपड़ा होने पर ( स्रामः ) चिपड़ा ( परिवृक्णे ) लूला होने पर ( परिवृक्णः ) लूला ( भवति ) होता है ( अस्य ) इस ( शरीरस्य ) शरीरके ( नाशम्, अनु, एव ) नाशके अनन्तर ही ( एषः ) यह (नश्यति) नष्ट होजाता है ( इति ) इससे ( अहम् ) मैं ( अत्र ) इसमें ( भोग्यम् ) फलको ( न ) नहीं ( पश्यामि ) देखता हूं ॥ १॥

भावार्थ-इधर वह इन्द्र देवताओंके पास पहुँचने भी

नहीं पाया था, कि—दैवी सम्पदासे युक्त होनेके कारण गुरुके वचनका वारंवार स्मरण करता हुआ चला जारहा था उस समय प्रतिबिम्बरूप आत्मामें उसको यह भय प्रतीत हुआ, कि—जिस प्रकार इस शरीरके उत्तमतासे भूषित होने पर यह प्रतिबिम्बरूप आत्मा भी उत्तम प्रकारसे भूषित होजाता है, अच्छे वस्त्र पहरे हुए होने पर अच्छे वस्त्रवाला दीखता है और साफ सुथरा होने पर साफ सुथरा दीखता है इस शरीरके अन्धा होने पर प्रतिबिम्बरूप आत्मा भी अन्धा होजाता है, चिपड़ा होनेपर चिपड़ा होजाता है तथा लूला होने पर लूला होजाता है और इस शरीरका नाश होने पर यह प्रतिबिम्बरूप आत्मा भी नष्ट होजाता है, इस लिये मैं इस प्रतिबिम्बरूप आत्माके ज्ञानमें वा शरीररूप आत्मा के ज्ञानमें इच्छित फल नहीं देखता हूँ ॥ १ ॥

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳह प्रजापतिरुवाच मघवन् यच्छान्तहृदयः प्राब्राजीः सार्धं विरोचनेन किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवाऽयमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृकणे परिवृकणोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति २

अन्वय और पदार्थ—( सः ) वह ( समित्पाणिः ) हाथमें समिधा लिये हुए ( पुनः ) फिर ( एयाय ) आया ( तम् ) उस के प्रति ( प्रजापतिः ) प्रजापति ( उवाच, ह ) बोला ( मघवन् )

हे इन्द्र ( यत् ) जो ( शान्तहृदयः ) कृतार्थबुद्धि होकर ( विरोचनेन,सार्धम् ) विरोचन के साथ ( प्राव्राजीः ) गया था ( पुनः ) फिर ( किम्,इच्छन् ) क्या चाहता हुआ ( आगमः ) लौट आया है ( इति ) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( उवाच, ह ) बोला ( भगवः ) हे भगवन् ( खलु ) निःसन्देह ( यथा ) जिस प्रकार (अयम्) यह (अस्मिन्, शरीरे) इस शरीरके (साधु, अलंकृते, एव ) भले प्रकार भूषित होने पर ही (साध्वलंकृतः ) भलेप्रकार भूषित(सुवसने) सुन्दर वस्त्रधारी होने पर ( सुवसनः) सुन्दर वस्त्रधारी ( परिष्कृते ) स्वच्छ होने पर ( परिष्कृतः ) स्वच्छ ( भवति ) होता है ( एवमेव ) इसी प्रकार ( अयम् ) यह ( अस्मिन्, अन्धे ) इस के अन्धा होने पर ( अन्धः ) अन्धा ( स्रामे ) चिपड़ा होने पर (स्रामः) चिपड़ा ( परिवृक्णे ) लूला होने पर ( परिवृक्णः ) लूला ( भवति ) होता है ( अस्य,एव) इस ही ( शरीरस्य ) शरीरके ( नाशम्, अनु ) नाशके अनन्तर ( एषः ) यह ( नश्यति ) नष्ट होजाता है ( इति ) इस कारण ( अहम् ) मैं ( अत्र ) इसमें (भोग्यम्) फल (न ) नहीं (पश्यामि) देखता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस प्रकार देह और प्रतिबिम्बरूप आत्मा के ज्ञानमें दोषका निश्चय करके वह इन्द्र हाथमें समिधा ले फिर भगवान् प्रजापतिके पास आया, यह देख प्रजापतिने उससे कहा, कि—हे इंद्र ! तू तो कृतार्थबुद्धि वाला होकर विरोचनके साथ चलागया था, फिर अब किस इच्छासे लौट आया ? इस पर इं ने अपना अभिप्राय प्रकट किया, कि—हे भगवन् ! यह शरीर गहनोंसे भूषित होय तो प्रतिबिम्बरूप आत्मा भी आभूषणोंसे भूषित होजाता है, सुन्दर वस्त्र पहरे तो सुन्दर वस्त्र पहर लेता है, बाल नख कटाडाले तो बाल-नख-रहित

होजाता है इसी प्रकार यह शरीर अंधा होय तो प्रतिबिम्बरूप आत्मा भी अन्धा होजाता है, चिपडा होय तो चिपडा होजाता है और लूला होय तो लूला होजाता है तथा इस ही शरीरका नाश होने पर नष्ट होजाता है इस कारण मैं इस प्रतिबिम्बरूप आत्माके ज्ञानमें वा शरीररूप आत्माके ज्ञानमें इच्छित फल नहीं देखता हूं २

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-( मघवन् ) हे इन्द्र ( एवमेव ) इस ही प्रकार ( एषः ) यह है ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) कहा ( एतम्, एव ) इसको ही ( ते ) तेरे अर्थ ( भूयः ) फिर (अनुव्याख्यास्यामि ) व्याख्या करके कहूंगा ( अपराणि ) और ( द्वात्रिं शतम्, वर्षाणि ) बत्तीस वर्ष ( वस ) निवासकर (इति) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( अपराणि ) और ( द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि ) बत्तीस वर्ष ( उवास, ह ) वसता हुआ ( तस्मै ) उसके अर्थ ( उवाच, ह ) कहता हुआ ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-इन्द्रकी इस बातको सुनकर भगवान् प्रजापतिने कहा कि-हे इन्द्र ! तू जो कहता है कि-प्रतिबिम्ब आत्मा नहीं है, यह तेरा कहना ठीक ही है, पहिले तुझे जिस आत्माका उपदेश दिया था, उसका व्याख्यान तुझे अब फिर सुनाऊँगा, त अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये मेरे यहाँ ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक बत्तीस वर्ष और निवास कर, भगवान् प्रजापति की यह आज्ञा पाकर इन्द्रने ऐसा ही किया तब प्रजापतिने उसको फिर उपदेश दिया ।३।

अष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

स एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवा-
चैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः
प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श त-
द्यद्यपीदᳫं शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति
यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ।१।

अन्वय और पदार्थ-( यः ) जो ( एषः ) यह ( स्वप्ने ) स्वप्नमें ( महीयमानः ) पूजित होता हुआ ( चरति ) विचरता है ( एषः ) यह ( आत्मा ) आत्मा है ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) कहते हुए ( एतत् ) यह अमृतम् ) अविनाशी है ( अभयम् ) निर्भय है ( एतत् ) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म है ( इति ) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( शांतहृदयः ) कृतार्थबुद्धि होकर ( प्रवव्राज ) चलागया ( सः ) वह ( देवान्, अप्राप्य, एव ) देवताओंके समीप तक न पहुंच कर ही ( एतत् ) इस ( भयम् ) भयको ( ददर्श ) देखता हुआ ( तत् ) वह ( इदम् ) यह ( शरीरम् ) शरीर ( यद्यपि ) जो कि ( अन्धम् ) अन्धा ( भवति ) होजाता है ( सः ) वह ( अनन्धः ) अन्धाभाव रहित ( यदि ) जो ( स्रामम् ) चिपड़ा हो ( अस्रामः ) चिपड़ेपनसे रहित ( भवति ) होता है ( एषः ) यह ( अस्य ) इसके ( दोषेण ) दोषसे ( नैव, दुष्यति ) दूषित नहीं होता है ॥ १ ॥

( भावार्थ )-जो यह स्वप्नमें स्त्री आदिसे पूजित होता हुआ विचरता है अर्थात् अनेकों प्रकारके स्वप्नके भोगों का अनुभव करता है ऐसा यह पापरहित आदि लक्षणों वाला और 'जो यह आंखमें पुरुष दीखता है' इत्यादि वचनोंसे उपदेश कियाहुआ आत्मा है, यह अविनाशी है अभय है और ब्रह्म है, भगवान् प्रजापतिके ऐसा कहने

पर इन्द्रने समझा कि—मैं इस ज्ञानको पाकर कृतार्थ होगया और वह अपने स्थानकी ओरको चलदिया, वह देवताओंके पास तक नहीं पहुँच पाया था, कि—गुरुके उपदेशका मनन करते २ चित्तमें कहने लगा, कि—इस स्वप्नके द्रष्टा आत्मामें तो दोष प्रतीत होता है, यद्यपि वह इस शरीरके अन्धा होने पर अन्धा नहीं होता है और चिपड़ा होने पर चिपड़ा नहीं होता है तथा इस शरीरके किसी भी दोषसे दूषित नहीं होता है ॥ १ ॥

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामिति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( अस्य ) इसके ( वधेन ) बधसे (न) नहीं ( हन्यते ) मारा जाता है ( अस्य ) इसके ( स्राम्येण ) चिपड़ेपनसे ( स्रामः ) स्राम ( न ) नहीं [ भवति ] होता है ( तु ) परन्तु ( एनम्, ) इसको ( घ्नन्ति, इव ) मारते हों ऐसा होता ही है ( विच्छादयन्ति, इव, ) कोई दौड़ाते हों ऐसा होता है ( अप्रियवेत्ता, इव भवति ) अप्रियको जाननेवाला होता है ( अपि ) और ( रोदति, इव ) रोता हुआसा होता है ( इति ) इसकारण ( अहम् ) मैं ( अत्र ) इसमें ( भोग्यम् ) फलको ( न ) नहीं ( पश्यामि ) देखता हूं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-इस शरीरके वधसे वह स्वप्नात्मा, प्रतिविम्बरूप आत्माकी समान हना नहीं जाता है और इसके कुरूपसे स्वप्नात्मा कुरूप नहीं होता है, परन्तु कोई इसको मानो वध करडालता है ऐसा प्रतीत होता है, कोई इसको दौड़ाता हो ऐसा प्रतीत होता है, यह पुत्रादिके मरण आदिके कारणसे अप्रियका अनुभव

करता हुआसा प्रतीत होता है और दुःखके अवसरोंमें रुदन करनेवालासा भी होजाता है, इस कारण मैं इस स्वप्नात्माके ज्ञानमें भी इच्छित फल नहीं देखता हूं २

स समित्पाणिः पुनरेयाय तँ्ह प्रजापतिरुवाच मघवन् यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( सः ) वह ( समित्पाणिः ) हाथ में समिधा लिये हुए ( पुनः ) फिर (एयाय) आया (प्रजापतिः) प्रजापति ( तम् ) उसके प्रति ( उवाच, ह ) बोला ( मघवन् ) हे इन्द्र ! ( यत् ) जो ( शांतहृदयः ) कृतार्थ बुद्धिवाला होकर ( प्राव्राजीः ) गया था ( किम् ) क्या ( इच्छन् ) इच्छा करता हुआ ( पुनः ) फिर ( आगमः ) आया है ( इति ) ऐसा कहने पर (सः) वह ( उवाच, ह ) बोला ( भगवः ) हे भगवन् (तत्) वह (इदम्) यह ( शरीरम् ) शरीर ( यद्यपि ) जो कि (अन्धम्) अन्धा ( भवति ) होता है ( सः ) वह ( अनन्धः, भवति ) अंधा नहीं होता है ( यदि ) जो ( स्रामम् ) चिपड़ा होता है (अस्रामः) चिपड़ेपनसे रहित [ भवति ] होता है ( अस्य ) इसके ( दोषेण ) दोषसे ( एषः ) यह ( नैव, दुष्यति ) दूषित नहीं होता है ॥३॥

( भावार्थ )—इस प्रकार स्वप्नात्माके ज्ञानमें दोषका निश्चय करके वह इन्द्र हाथमें समिधा ले फिर प्रजापतिके पास आया, तब उससे प्रजापतिने कहा, कि—हे इन्द्र ! तू अपनेको कृतार्थ मानकर गया था, अब फिर किस इच्छासे लौट आया ? इस पर इन्द्रने अपना अभिप्राय कहा, कि—हे भगवन् ! यद्यपि यह शरीर अंधा

होजाय तो भी स्वआत्मा अन्धा नहीं होता है, यह शरीर स्राम होजाय तो भी यह स्राम नहीं होता है, यह स्वआत्मा शरीरके दोषसे कदापि दूषित नहीं होता है ३

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिँ शतं वर्षाणीति सहापराणि द्वात्रिँशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्य) इसके ( वधेन ) वधसे (न) नहीं ( हन्यते ) हना जाता है ( अस्य ) इस के ( स्राम्येण ) चिपड़ेपनसे ( स्रामः ) चिपड़ा ( न ) नहीं [ भवति ] होता है ( तु ) परन्तु ( एनम् ) इसको ( घ्नन्ति एव ) मारते हों ऐसा होता ही है ( विच्छादयन्ति, इव ) कोई दौड़ाते हों ऐसा होता है (अप्रियवेत्ता, इव, भवति) अप्रियको जाननेवालासा होता है ( अपि ) और ( रोदिति, इव ) रोरहा है ऐसा होता है ( इति ) इसकारण ( अहम् ) मैं ( अत्र ) इसमें भोग्यम् ) फलको ( न ) नहीं ( पश्यामि ) देखता हूं ( मघवन् ) हे इन्द्र ( एवमेव ) इस ही प्रकार ( एषः ) यह है ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) बोला ( एतम्, एव ) इसको ही ( ते ) तेरे अर्थ (भूयः ) फिर (अनुव्याख्यास्यामि ) व्याख्या करके कहूंगा ( अपराणि ) और ( द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि ) बत्तीस वर्ष ( वस ) निवास कर (इति) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( अपराणि ) और ( द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि ) बत्तीस वर्ष ( उवास, ह ) बसता हुआ ( तस्मै ) उसके अर्थ ( उवाच,ह ) कहता हुआ ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-इस शरीर के वधसे उस स्वप्नात्मा का हनन नहीं होता है और इसके कुरूप होनेसे वह कुरूप नहीं होता है, परन्तु कोई इस का वध करे डालता हो ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई इसको दौड़ा रहा है ऐसा प्रतीत होता है, यह पुत्रादि के मरण आदि के कारणसे दुःखका अनुभव करता हो ऐसा भी प्रतीत होता है और दुःखके अवसरों पर कुछ एक रोता हुआ सा भी प्रतीत होता है' इस कारण मैं इस स्वप्नात्मा के ज्ञानमें इच्छित फल नहीं देखता हूं। इन्द्रकी इस बातको सुन कर भगवान् प्रजापति ने कहा, कि—हे इन्द्र ! तू जो कहता है, कि—स्वप्नात्मा आत्मा नहीं है यह तेरा कहना ठीक ही है, पहले तुझे जिस आत्मा का उपदेश दिया था उसका व्याख्यान अब तुझे फिर सुनाऊँगा, तू अन्तःकरण की शुद्धिके लिये मेरे यहां ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक बत्तीस वर्ष और निवास कर, भगवान् प्रजापति की आज्ञा पाकर इन्द्र ने ऐसा ही किया, तब प्रजापतिने उसको फिर उपदेश दिया, ॥ ४ ॥

अष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाह खल्वयमेवꣳ सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—( तत् ) तहां ( यत्र ) जिस समय ( एतत् ) यह ( समस्तः ) सब ( सुप्तः ) सोया हुआ ( संप्रसन्नः ) उत्तम प्रकारसे निर्मल हुआ ( स्वप्नम् ) स्वप्नको ( न ) नहीं ( विजानाति ) अनुभव करता है ( एषः ) यह ( आत्मा ) आत्मा है ( इति ) ऐसा ( उवाच,ह ) बोले ( एतत् ) यह ( अमृतम् ) अविनाशी है ( अभयम् ) अभय है ( एतत् ) यह ( ब्रह्म ) ब्रह्म हैं ( इति ) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( शान्तहृदयः ) कृतार्थ-बुद्धि होकर ( प्रवव्राज, ह ) चला गया ( सः ) वह ( देवान्,-अप्राप्य, एव ) देवताओं के पास तक न पहुँच कर ही ( एतत् ) इस ( भयम् ) भयको ( ददर्श ) देखता हुआ ( अयम् )यह ( खलु ) निश्चय ( एवम् ) ऐसे ही ( संप्रति ) इस समय ( अयम् ) यह ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हूं ( इति ) ऐसा ( आत्मानम् ) अपने को ( ना ) नहीं ( जानाति ) जानता है ( इमानि ) इन ( भूतानि ) भूतों को ( नो, एव ) नहीं ही [ जानाति ] जानता है ( विना-शनम्, एव ) विनाशको ही ( अपीतः ) प्राप्त हुआ ( भवति ) होता है ( इति ) इसकारण ( अहम् ) मैं ( अत्र ) इसमें भोग्यम् ) फलको ( न ) नहीं ( पश्यामि ) देखता हूं ॥ १ ॥

(भावार्थ)-जिस समय यह सकल किरणोंका विलय होजानेके कारण सोया हुआ होता है, बाहरी विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाली मलिनता न होने के कारण उत्तम प्रकारसे निर्मल होता है और स्वप्नका अनुभव नहीं करता है, यह ही आत्मा है, यह अविनाशी है, अभय है और ब्रह्म है, भगवान प्रजापतिके ऐसा कहने पर वह इन्द्र अपनेको कृतार्थ मानता हुआ चलागया, परन्तु वह देवताओंके समीप तक पहुँचने भी नहीं पाया, मार्गमें ही सुषुप्तिकालके ज्ञानमें यह दोष देखने लगा, कि-सुषुप्ति में स्थित हुआ यह आत्मा निःसंदेह जिसप्रकार जाग्रत्

और स्वप्नमें अपनेको जानता है तिसप्रकार इस सुषुप्ति में 'यह मैं हूं' इस रूपमें नहीं जानता, इन भूतोंको नहीं जानता और ज्ञानके अभावसे विनाशको प्राप्तहुआसा होजाता है, इसकारण मैं इस सुषुप्तिको प्राप्त हुए ज्ञान में भी इच्छित फल नहीं देखता हूँ ॥ १ ॥

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन् यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच नाहं खल्वयं भगव एवꣳ सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवमोनि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ –( सः ) वह ( समित्पाणिः ) हाथमें कुशा लिये ( पुनः ) फिर ( एयाय ) आया ( प्रजापतिः ) प्रजापति ( तम् ) उसके प्रति ( उवाच, ह ) बोला ( मघवन् ) हे इन्द्र ( यत् ) जो ( शान्तहृदयः ) कृतार्थ बुद्धिवाला होकर ( प्राव्राजीः ) गया था ( किम् ) क्या ( इच्छन् ) चाहता हुआ ( पुनः ) फिर ( आगमः ) आया है ( इति ) ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( उवाच, ह ) बोला (भगवः ) हे भगवन् ( खलु ) निश्चय ( अयम् ) यह आत्मा ( एवम् ) इसप्रकार ( सम्प्रति ) इस समय ( अयम् ) यह ( अहम् ) मैं (अस्मि) हूं (इति) इसप्रकार (आत्मानम् ) अपनेको (न) नहीं (जानाति) जानता है (इमानि) इन ( भूतानि, एव ) भूतोंको भी ( नो ) नहीं [ जानाति ] जानता है ( विनाशम्, अपीतः, एव) विनाश को प्राप्त हुआ ही ( भवति ) होता है ( इति ) इसकारण ( अहम् ) मैं (अत्र) इसमें ( फलम् ) फलको ( न ) नहीं ( पश्यामि ) देखता हूं ॥ २ ॥

( भावार्थ )-इसप्रकार सुषुप्तिको प्राप्त हुए आत्मामें दोषका निश्चय करके वह इन्द्र हाथमें समिधा लेकर फिर भगवान् प्रजापतिके पास आया, इन्द्रको लौट कर आया देख कर उन्होंने कहा, कि-हे इन्द्र ! तू तो अपने को कृतार्थ मानकर चलागया था, फिर क्यों लौट आया? इस पर इन्द्रने अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा, कि-हे भगवन् ! सुषुप्ति में स्थित यह आत्मा, निश्चय जिस प्रकार जाग्रत् और स्वप्न में अपने को जानता है तिस प्रकार 'यह मैं हूं' इस रूपसे सुषुप्तिमें अपने को नहीं जानता और इन भूतों को भी नहीं जानता तथा ज्ञान के अभावसे विनाशको प्राप्त हुआसा होता है, इसकारण मैं इस सुषुप्तिको प्राप्त हुए ज्ञानमें अपनी इच्छानुसार फल नहीं देखता हूं ॥ २ ॥

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतꣳ सम्पेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतं ह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—( मघवन् ) हे इन्द्र ( एषः ) यह ( एवमेव ) ऐसा ही है ( इति ) ऐसा ( उवाच, ह ) बोले ( तु ) परन्तु ( एतम्, एव ) इस ही आत्माको ( ते ) तेरे अर्थ ( भूयः ) फिर ( अनुव्याख्यास्यामि ) व्याख्या करके कहूंगा ( एतस्मात् ) इससे ( अन्यत्र ) भिन्नका (नो, एव) कदापि नहीं ( अपराणि ) और ( पञ्च ) पांच ( वर्षाणि ) वर्ष ( वस ) निवास कर (इति)

ऐसा कहने पर ( सः ) वह ( अपराणि ) और ( पञ्च, वर्षाणि ) पांच वर्ष उवास ) रहा ( तानि ) वे ( एकशतम् ) एकसौ एक सम्पेदुः ) हुए ( आहुः ) कहते हैं ( यत् ) जो ) एतत् ) यह वै ) निश्चय ( एकशतम्, वर्षाणि ) एकसौ एक वर्ष ( मघवान् ) इन्द्र ( प्रजापतौ ) प्रजापतिके पास ब्रह्मचर्यम्, उवास ) ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक रहा ( तस्मै ) उस इन्द्रके अर्थ ( तत् ) उस आत्मतत्त्वको ( उवाच, ह ) कहता हुआ ॥ ३ ॥

( भावार्थ )-इन्द्रकी इस बातको सुनकर भगवान् प्रजापतिने कहा, कि-हे इन्द्र ! यह तेरा कहना ठीक है कि-सुषुप्तिको प्राप्त हुआ आत्मा वास्तविक आत्मा नहीं है, अब मैं पहले तीन बार जिस आत्माका उपदेश किया था, उस ही आत्माका व्याख्यान तुझे फिर सुनाता हूँ, उससे भिन्न आत्माकी बात नहीं कहता हूं, तेरे अन्तःकरणमें थोड़ासा दोष शेष रहगया है, उसको दूर करनेके लिये तू मेरे यहां ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक पांच वर्ष और निवास कर, इन्द्रने उनकी आज्ञानुसार पांच वर्ष और निवास किया, इस प्रकार उसको रहतेहुए एकसौ एक वर्ष पूरे होगये,ऐसा शिष्ट पुरुष कहते हैं और यह बात पिछले वचनोंसे भी सिद्ध है,उस इन्द्रको तीन अवस्थाओंके दोषोंके सम्बन्धसे रहित और पापरहितता आदि लक्षणोंवाले आत्माका स्वरूप भगवान् प्रजापतिने कहा,इसप्रकार जिसको इन्द्रने भी बड़े यत्नसे एकसौएक वर्ष पर्यन्त तपस्या करके पाया था वह आत्मज्ञान इस त्रिलोकीके राज्यसे भी बढ़कर है, इसकारण आत्मासे बढ़कर और कोई पुरुषार्थ नहीं है ॥ ३ ॥

अष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः ।

मघवन्मर्त्यम्वा इद्ःशरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( मघवन् ) हे इन्द्र ( इदम् ) यह ( शरीरम् ) शरीर ( वै ) निश्चय ( मर्त्यम् ) मरणधर्मी (मृत्युना) मृत्यु करके ( आत्तम् ) घेरा हुआ [ अस्ति ] है ( तत् ) सो ( अस्य ) इस ( अमृतस्य ) अविनाशी ( अशरीरस्य ) शरीर रहित ( आत्मनः ) आत्माका (अधिष्ठानम्) स्थान है (सशरीरः) शरीरसे युक्त हुआ (वै) निश्चय (प्रियाप्रियाभ्याम्) सुख दुःखसे ( आत्तः ) घेराहुआ [ भवति ] होता है ( सशरीरस्य, सतः ) सशरीर होनेकी दशामें ( वै ) निश्चय ( प्रियाप्रिययोः ) सुख दुःखका ( अपहतिः ) उच्छेद ( न ) नहीं (अस्ति) है (अशरीरम्, सन्तम्, वाव ) अशरीर होते ही इसको ( प्रियाप्रिये ) सुख दुःख ( न ) नहीं ( स्पृशतः ) स्पर्श करते हैं ॥ १ ॥

( भावार्थ )-हे इन्द्र ! यह प्रसिद्ध स्थूल शरीर मरणधर्मी है और मृत्यु इसको सर्वदा घेरे रहता है। यह शरीर इस अविनाशी कहिये देह इन्द्रियें और मनके मरण आदि धर्मोंसे रहित तथा शरीर इन्द्रियें एवं मन रहित आत्माके भोगका स्थान है। अशरीर स्वभाववाले आत्माके अविवेकसे शरीरमें जो आत्मभाव है वह ही सशरीरपना है, इसकारण यह सशरीर होकर अवश्य ही सुख दुःखसे घिराहुआसा रहता है। मुझे बाहरी विषयोंका संयोग और वियोग होता है, ऐसा माननेवालेको सशरीरके सद्भावमें बाहरी विषयोंके संयोग

वियोगसे उत्पन्न होनेवाले सुख दुःख के प्रवाहका उच्छेद नहीं होता है और अशरीरस्वरूपके विज्ञानसे देहाभिमानको दूर करके अशरीर हुएको निःसन्देह सुख और दुःख दोनों स्पर्श नहीं करते हैं। प्रिय तथा अप्रिय ये दोनों धर्म तथा अधर्मके कार्य हैं और अशरीरता तो स्वरूप है, अतः तहां धर्माधर्मका संभव न होनेसे उनका कार्य भी नहीं होता, इससे अशरीरको सुख दुःख स्पर्श नहीं करते, अशरीररूप आत्मतत्त्वको जानना बड़ा कठिन है ॥ १ ॥

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुप सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-( वायुः ) वायु ( अशरीरः ) शरीररहित है ( अभ्रम् ) बादल ( विद्युत ) बिजली ( स्तनयित्नुः ) मेघकी गर्जना ( एतानि ) ये ( अशरीराणि ) शरीररहित हैं ( तत् ) सो ( यथा ) जैसे ( एतानि ) ये ( अमुष्मात् ) उस ( आकाशात् ) आकाशसे ( समुत्थाय ) उठकर ( परम्, ज्योतिः ) उत्तम उष्णभावको ( उपसम्पद्य ) प्राप्त होकर ( स्वेन, रूपेण ) अपने रूपसे ( अभिनिष्पद्यन्ते ) सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ-वायु, शिर-कर-चरण-आदि रूप शरीरसे रहित है, बादल बिजली और मेघकी गर्जना ये भी शरीरसे रहित ही हैं। जिस प्रकार जीव अज्ञानावस्था में शरीरमें आत्मभावको पाजाता है इसीप्रकार ये वायु आदि वृष्टि आदि प्रयोजनके अन्तमें आकाशके स्वरूप पाजाते हैं, फिर वर्षा करना आदि प्रयोजनकी सिद्धिके लिये आकाशमेंसे उत्तम प्रकारसे उठकर सूर्यके उत्तम

उष्णभावको वा पृथग्भावको प्राप्त होकर अपने २ ( चौमासेके आरम्भमें प्रतीत होनेवाले ) रूपसे सिद्ध होजाते हैं ॥ २ ॥

एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत् क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳ स्मरन्निदꣳ शरीरꣳ स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-( एवमेव ) इसी प्रकार (एषः ) यह (संप्रसादः) जीव ( अस्मात्, शरीरात्) इस शरीरसे ( समुत्थाय ) उत्तम प्रकारसे उठकर ( परम्, ज्योतिः ) परम ज्योतिको (उपसम्पद्य ) पाकर ( स्वेन, रूपेण ) अपने रूपसे (अभिनिष्पद्यते सिद्ध होता है ( सः ) वह ( उत्तमपुरुषः ) उत्तम पुरुष है (सः ) वह ( तत्र ) उसमें ( पर्येति ) सब ओरसे जाता है ( जक्षत् ) हँसता हुआ वा भक्षण करता हुआ ( वा ) अथवा ( स्त्रीभिः ) स्त्रियोंके साथ ( वा ) या ( यानैः ) वाहनोंके साथ ( वा ) या ( ज्ञातिभिः ) जातिवालोंके साथ ( क्रीडन् ) क्रीड़ा करता हुआ ( रममाणः ) रमण करता हुआ ( उपजनम् ) समागमसे उत्पन्न हुए ( इदम् ) इस ( शरीरम् ) शरीरको ( न ) नहीं (स्मरन्) स्मरण करता हुआ [ विचरति ] विचरता है ( सः ) वह (यथा) जिस प्रकार ( प्रयोग्यः ) घोड़ा ( आचरणे ) रथमें ( युक्तः ) जोड़ा हुआ [भवति] होता है ( एवमेव ) इस ही प्रकार (अयम्) यह ( प्राणः ) प्राण ( अस्मिन् ) इस ( शरीरे ) शरीरमें ( युक्तः ) योजना किया गया है ॥ ३ ॥

( भावार्थ )--आकाशसे वायु आदिकी समान ही

ज्ञान प्राप्त हुआ यह जीव इस शरीरमेंसे उठकर अर्थात् शरीरमेंसे आत्मभावको त्याग परम ज्योति ब्रह्मको पाकर अपने स्वरूपसे सिद्ध होजाता है। यह माया और मायाके कार्यकी अपेक्षा उत्तम पुरुष है, यह जीव उस स्वात्मामें स्वस्थतापूर्वक सबके आत्मपनेसे रहता हुआ सब ओरसे प्रवेश करता है। स्वर्गमें इन्द्रादि रूपसे हँसता हुआ वा इच्छित पदार्थोंका भक्षण करता हुआ अथवा ब्रह्मलोकमें सङ्कल्पसे उत्पन्न हुई स्त्रियोंके साथ या वाहनोंके साथ या ज्ञानियोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ तथा मनसे ही स्मरण करता हुआ, स्त्री पुरुषके समागमसे उत्पन्न होनेवाले इस शरीरका स्मरण भी न करता हुआ सर्वत्र विचरता है। जिसप्रकार घोड़ा रथमें उसको खेंचनेके लिये जोड़ाजाता है, इस प्रकार ही इस शरीरमें यह प्राण अपने कर्मफलको भोगनेके लिये योजित किया गया है ॥ ३ ॥

अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ यो वेदेदमभिव्याहराणीति स आत्माऽभिव्याहाराय वागथ यो वेदेद ँ शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--( अथ ) अब ( यत्र ) जहाँ ( एतत् ) यह ( आकाशम्, अनुविषण्णम् ) छिद्रमें को प्रवेश पाया हुआ ( चक्षुः ) चक्षु है ( सः ) वह ( चाक्षुषः, पुरुषः ) चक्षुष पुरुष है ( दर्शनाय ) दर्शनके लिये ( चक्षुः ) नेत्र

हैं ( अथ ) और ( यः ) जो ( इदम् ) इसको ( जिघ्राणि ) सूंघूं ( इति ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है। ( गन्धाय ) गन्धके लिये ( घ्राणम् ) नासिका है ( अथ ) अब ( यः ) जो ( इदम् ) इसका ( अभिव्याहराणि ) उच्चारण करूँ ( इति ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( अभिव्याहाराय ) उच्चारणके लिये ( वाक् ) वाणी है ( अथ ) अब ( यः ) जो ( इदम् ) इसको ( शृणवानि ) सुनूँ ( इति ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( श्रवणाय ) श्रवणके लिये ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र है ॥ ४ ॥

( भावार्थ )-अब जिस संसारदशामें यह आँखमेंके कृष्ण तारासे उपलक्षित शरीरमेंके छिद्रमेंको प्रवेश किया हुआ चक्षु है उसमें वह अशरीर आत्मा चाक्षुष पुरुष है, उसको रूपके ज्ञानके लिये नेत्र है और जो यह 'सुगन्धिको मैं सूंघूं' ऐसा जानता है वह आत्मा है। उसको गन्धके ज्ञानके लिये नासिका है, और जो 'इस वचनका मैं उच्चारण करूँ' ऐसा जानता है वह आत्मा है, उसके उच्चारणके लिये वाणी है और जो 'इसको मैं सुनूं' ऐसा जानता है वह आत्मा है उसके श्रवणके लिये श्रोत्र है ॥ ४ ॥

अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—( अथ ) और ( यः ) जो ( इदम् ) इसको ( मन्वानि ) मनन करूँ ( इति ) ऐसा ( वेद ) जानता है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( मनः ) मन ( अस्य )

एतं वा एतं ॥



इसका ( दैवम् ) अप्राकृत ( चक्षुः ) चक्षु है ( सः ) वह ( वै ) प्रसिद्ध ( एषः ) यह ( एतेन ) इस ( दैवेन ) अप्राकृत ( मनसा ) मनोरूप ( चक्षुषा ) चक्षुके द्वारा ( एतान् ) इन ( कामान् ) भोगोंको ( पश्यन् ) देखता हुआ ( रमते ) रमण करता है ॥ ५ ॥

( भावार्थ )—जो यह जानता है, कि—मैं इसका मनन करूँ वह आत्मा है, उसके मननके लिये मन है मन आत्माका दैव कहिये दूसरी इन्द्रियों की अपेक्षा असाधारण नेत्र है, वह प्रसिद्ध मुक्तात्मा मनोरूप दैव नेत्रके द्वारा इन भोगोंको सूर्यके प्रकाशकी समान नित्य अभिव्यक्तज्ञानके द्वारा देखता हुआ रमण करता है ।५।

य एते ब्रह्मलोके तं एवं वा देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाꣳ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—( ये ) जो ( एते ) ये [ कामाः ] भोग ( ब्रह्मलोके ) ब्रह्मलोकमें हैं ( देवाः ) देवता ( तम् ) उस ( वै ) प्रसिद्ध ( एतम् ) इस ( आत्मानम् ) आत्माको ( उपासते ) उपासना करते हैं ( तस्मात् ) तिस उपासनासे ( तेषाम् ) उनके ( सर्वे ) सब ( लोकाः ) लोक ( च ) और ( सर्वे ) सब ( कामाः ) भोग ( आत्ताः ) वशमें रहते हैं ( यः ) जो ( तम् ) उस ( आत्मानम् ) आत्माको ( अनुविद्य ) जानकर ( विजानाति ) अनुभव करता है ( सः ) वह ( सर्वान् ) सब ( लोकान् ) लोकोंको ( च ) और ( सर्वान् ) सब ( कामान्, च ) भोगोंको भी ( आप्नोति ) पाता है ( इति ) ऐसा ( प्रजापतिः ) प्रजापति ( उवाच, ह ) कहता हुआ ॥ ६ ॥

( भावार्थ )—जो ये ब्रह्मलोकमें सङ्कल्पमात्रसे प्राप्त होने वाले भोग हैं, इनको देखता हुआ वह रमण करता है, इस बातको इन्द्रसे सुनकर देवता उस प्रसिद्ध आत्मा की आज भी उपासना करते हैं और इस उपासनाके प्रभावसे उनको सब लोक और सब भोग प्राप्त हो रहे हैं, आजकल भी इन्द्रादिकी समान जो पुरुष गुरु तथा शास्त्रसे आत्माको जानकर उसका अनुभव करता है वह सब लोकोंको और सब भोगोंको पाता है, ऐसा उस प्रसिद्ध प्रजापति ने कहा ( मूलमें 'प्रजापतिरुवाच' का दो बार पाठ प्रकरणकी समाप्ति सूचित करनेके लिये है)।६।

अष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः

**श्यामाच्छवलं प्रपद्ये शवलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसम्भवामीत्यभिसम्भवामीति ॥ १ ॥**

अन्वय और पदार्थ—( श्यामात् ) श्यामसे शवलम् ) शवलको ( प्रपद्ये ) प्राप्त होता हूं ( शवलात् ) शवलसे (श्यामम्) श्यामको ( प्रपद्ये ) प्राप्त होता हूं ( अश्वः ) घोड़ा ( रोमाणि, इव ) रोमोंको जैसे ( पापम् ) पापको ( विधूय ) दूर करके (चन्द्रः) चन्द्रमा ( राहोः ) राहुके ( मुखात् ) मुखसे ( प्रमुच्य, इव ) छूट कर जैसे ( शरीरम् ) शरीरको ( धूत्वा ) त्यागकर ( कृतात्मा ) कृतार्थ होता हुआ ( इति ) इसप्रकार ( अकृतम् ) नित्य (ब्रह्मलोकम् ) ब्रह्मलोकको ( अभिसम्भवामि ) प्राप्त होता हूं ॥ १ ॥

( भावार्थ )—श्याम कहिये हृदयगत गंभीर ब्रह्मसे,

शरीरपातके अनन्तर मनके द्वारा शवल कहिये अर तथा रूप आदि अनेकों भोगोंसे मिश्रित ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूं ब्रह्मलोक से नाम रूपका स्पष्टीकरण करनेके लिये हृदयगत ब्रह्मभाव को प्राप्त होता हूं, जिस प्रकार घोड़ा रोमों में की धूलि आदि को कम्पनके द्वारा दूर करके निर्मल होजाता है इसी प्रकार हृदयगत ब्रह्मके ज्ञानसे धर्माधर्मरूप पापको दूर करके और राहुसे ग्रसाहुआ चन्द्रमा जिस प्रकार राहु के मुखसे छूट कर प्रकाशवान् होता है, इस प्रकार ही सब अनर्थोंके आश्रयरूप शरीरको त्याग कर ध्यान से कृतार्थ होता हुआ नित्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता हूं ('अभिसंभवामीति' का मूल में दो वार पाठ मंत्र की समाप्ति के लिये है और इति शब्द ध्यान की समाप्तके लिये है ) ॥ १ ॥

अष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ।

आकाशो वै नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म तदमृतꣳ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोऽहमनु प्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्कꣳ श्येतं लिन्दु माभिगाम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-( आकाशः ) आकाश ( वै ) प्रसिद्ध (नामरूपयोः) नाम रूपका (निर्वहिता) स्पष्ट करने वाला है (ते) वे ( यदन्तरा) जिसके भीतर हैं ( तत् ) वह ( ब्रह्म ) ब्रह्म है (तत्)

वह ( अमृतम् ) अविनाशी है ( सः ) वह ( आत्मा ) आत्मा है ( प्रजापतेः ) प्रजापतिके ( सभाम्, वेश्म ) सभारूप स्थानको ( प्रपद्ये ) पाऊं ( अहम् ) मैं ( ब्राह्मणानाम् ) ब्राह्मणोंका ( यशः ) यश ( राज्ञाम् ) क्षत्रियोंका ( यशः ) यश ( विशाम् ) वैश्योंका (यशः) यश (भवामि ) होऊं (यशः) यशको (अहम्) मैं (अनुप्रापत्सि) प्राप्त होना चाहता हूं (सः, ह) वह ही (अहम्) मैं ( यशसाम् ) यशोंका ( यशः ) यश हूं ( श्येतम् ) लाल (अदत्कम् ) दांत रहित ( अदात्कम् ) भक्षण करने वाली ( श्येतम् ) लाल ( लिन्दु ) चिकनीको ( माऽभिगाम् ) न प्राप्त होऊं ॥१॥

भावार्थ—आकाश कहिये श्रुतिप्रसिद्ध आत्मा ही प्रसिद्ध नाम रूपको स्पष्ट करने वाला है, वे नाम रूप जिसके भीतर प्रतीत होते हैं वह ब्रह्म नाम रूपसे विलक्षण और नाम रूपसे अस्पष्ट है, वह अविनाशी है और वह आत्मा है। प्रजापतिकी सभामें जो ब्रह्माका रचा हुआ स्थान है उस घरकी ओरको मैं जाऊं। मैं ब्राह्मणों का आत्मा होऊं, क्षत्रियोंका आत्मा होऊं, वैश्योंका आत्मा होऊं, मैं आत्माको प्राप्त करना चाहता हूँ, वही मैं शरीर इन्द्रियें मन और बुद्धिरूप आत्माओंका आत्मा हूं, लाल और दन्तहीन होने पर भी, अपना सेवन करने वालोंके तेज, बल, वीर्य, विज्ञान और धर्म का नाश करने वाली जो स्त्रीकी योनि है उस लाल तथा चिकनी योनिको न प्राप्त होऊं, चिकनी मलिन योनिमें न पड़ूँ अर्थात् गर्भवासका दुःख मुझे न सहना पड़े ( अन्तिम वाक्यका दो वार कथन गर्भवासके अत्यन्त अनर्थकारी होनेको सूचित करनेके लिये है ) ॥ १ ॥

अष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः

तीर्थं नाम शास्त्राज्ञाविषयः ॥



तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथा विधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटु-म्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्त्त-यन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-( तत् ) वह ( एतत् ) यह ( ह ) प्रसिद्ध ( ब्रह्मा ) कश्यप (प्रजापतये ) प्रजापतिके अर्थ ( प्रजा-पतिः ) प्रजापति ( मनवे ) मनुके अर्थ ( मनुः ) मनु (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के अर्थ ( उवाच ) कहता हुआ ( यथाविधानम् ) विधि के अनुसार ( आचार्यकुलात् ) आचार्यकुलसे ( गुरोः ) गुरुके ( कर्म ) काम को [कुर्वन्] करता हुआ ( अतिशेषेण ) शेष रहे समय के द्वारा वेदम् ) वेदको ( अधीत्य ) पढ़कर ( अभिस-मावृत्य अध्ययन् का समाप्ति के अनन्तर लौट कर ( कुटुम्बे) कुटम्बमें शुचौ, देशे ) पवित्र स्थानमें (स्वाध्यायम् स्वाध्या-यको अधीयानः ) अध्ययन करता हुआ (धार्मिकान् ) धार्मिकों को ( विदधत् ) रचता हुआ आत्मनि आत्मामें ( सर्वेन्द्रि-याणि ) सब इन्द्रियों को संप्रतिष्ठाप्य ) सम्यक् प्रकार से स्थापित करके ( तीर्थेभ्यः ) तीर्थों से ( अन्यत्र ) अन्यत्र (सर्व-भूतानि सकल प्राणियों को अहिंसन् ) पीड़ा न देताहुआ ( सः ) वह खलु ) निश्चय ( यावत्— आयुषम् जीवन भर

( एवम् ) इसप्रकार ( वर्त्तयन् ) वर्त्तताहुआ ( ब्रह्मलोकम् ) ब्रह्मलोक को ( अभिसंपद्यते ) प्राप्त होता है ( च ) और ( पुनः ) फिर ( न, आवर्त्तते ) लौटकर नहीं आता है ॥ १ ॥

भावार्थ--यह प्रसिद्ध उपदेश, शम दम आदि साधन और उपासना सहित कश्यपने प्रजापतिको, प्रजापतिने मनुको और मनुने प्रजाओंको दिया था। परम्परासे आया हुआ यह उपनिषदोंका विज्ञान आज भी विद्वानोंमें देखनेमें आता है। धर्मशास्त्रमें कहे नियमों के अनुसार वर्त्ताव करता हुआ आचार्यके कुलसे गुरुका सेवा कर्म करते हुए जो समय बचे उसमें अर्थसहित वेदको पढ़े और उसको नियमित समयमें समाप्त कर गुरुकी आज्ञा ले अपने घरको लौट आवे, तहां योग्य स्त्रीको ग्रहण करके कुटुम्बमें रहता हुआ पवित्र देशमें अपने पढ़े हुए वेदादि शास्त्रका पारायण किया करे और अध्यापन उपदेश आदिके द्वारा पुत्र पौत्र आदि और शिष्यमण्डलीको धार्मिक बनावे, तीर्थोंमें तो नियमों का पालन होता ही है परन्तु तीर्थोंसे अन्यत्र भी किसी प्राणीको पीड़ा न देय, यह अधिकारी पुरुष इस प्रकार अपने जीवन भर वर्त्ताव करता रहे तो देहान्त होनेपर निःसन्देह ब्रह्मलोकको पाता है और तहांसे फिर शरीर धारण करनेके लिये लौटकर नहीं आता है लौट कर नहीं आता है ( दो बार कथन उपनिषद्की समाप्ति सूचित करनेके लिये है ) ॥ १ ॥ —

अष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः।

—०—

## शान्ति पाठ ।

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्मनिराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

इति श्रीछान्दोपनिषदः युक्तप्रान्तान्तर्गत—मुरादाबादनगरनिवासिना—काशीस्थसंस्कृतमहाविद्यालये, षड्दर्शनाध्यापक-
महामहोपाध्यायनिखिलतंत्रस्वतन्त्रस्वर्गीयस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योऽधिगतविद्येन-भारद्वाजगोत्र-
गौडवंश्यपंडित-भोलानाथात्मजेन-सनातनधर्मपताकासम्पादकेन ऋषिकुमारोपनामधारिणा-रामस्वरूप-
शर्मणा विरचितान्वय-
पदार्थ भावार्थ
समाप्तः ।



